प्रश्न- सोहं को अजपा कहते हैं परन्तु स्वर्वेद में अक्षर को अजपा कहा गया है, इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर- ब्रह्माण्डी पंच शब्दों में सोहं है। सोहं शब्द प्राकृतिक है। जो प्रकृति प्रदेश में अक्षर सन्निधि से मन, प्राण के मण्डल में नीचे ब्रह्माण्ड में होता है। आज के साधक श्वाँसा में सोहं शब्द की कल्पना करते हैं। परन्तु उनको पता नहीं कि सोहं का आदि और मूल स्थान कहाँ है और सोहं शब्द ब्रह्माण्ड में कैसे और कहाँ होता है? जब अजपा है, तब श्वाँसा के साथ जपने की क्या आवश्यकता है। गुरुविहीन साधक बाहरी सोहं की कल्पना को ही अजपा मानते हैं। किन्तु ब्रह्माण्डी सोहं ही अजपा है। प्राकृतिक वाह्य भूमि से सोहं को अजपा कहा गया है और सभी ब्रह्माण्डी शब्द अपने प्रदेश में साधकों को गुरुगम्य में अनुभव होते हैं, किन्तु फिर भी जो प्राकृतिक है और दूसरे सम्बन्ध और प्रयोग से जिसका आरम्भ होता है वह अजपा कैसे हो सकता है? जो सहज या स्वाभाविक है वही अजपा है, जहाँ वाणी और मन से सुमिरन करने की आवश्यकता नहीं। अतः अक्षर इन पञ्च शब्दों का भी आदि कारण और मूलाधार है। इस तथ्य पर प्राकृतिक सोहं को भी चेतना देने वाला और प्रकाशक होने से एक प्रदेशव्यापी सहज शब्द को स्वर्वेद में अजपा कहा गया है। जो जपा नहीं जा सके, जहाँ वाणी नहीं पहुँच सके, जो स्वाभाविक और सत्य अनुभव है वही अजपा है। ब्रह्माण्डी अजपा को सोहं कहते हैं। परन्तु यह अजपा जिसे अक्षर कहते हैं। सोहं का भी कारण और आदि है। इसी के सुमिरन से आत्मा में आन्तरिक शक्ति का जागरण और ऊर्ध्व में उद्गम होता है। इसी को योगिजन प्राप्त कर निःशब्द परम पद में तल्लीन हो परमानन्द, विमुक्ति के महासुख को

प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते हैं। जो संयोग और बाहरी धारणा से मन के मण्डल में प्रकट होता है। वह शब्द अजपा नहीं बल्कि जो सहज स्वाभाविक गति में प्रकट हो रहा है वही अजपा है। इसी आशय पर स्वर्वेद में अक्षर को अजपा कहा गया है।

ऐसे आत्म ब्रह्म बिचारै । एकजानि करि द्वैत निवारै ।।
ज्यों सागर में बूँद समावै । त्यों अत्म में मन लगावे ।।१३।।
ऐसी भांति विचारहि करते । निसदिनब्रह्ममांहि चित्तधरते ।।
त्रिगुणाकार सकल भ्रम भागे । होए ब्रह्म सोवत सों जागे ।।१४।।
द्वै ब्रह्म ब्रह्म मिलि जावै । जहाँहुते वहस्यों नहिं आवै ।।
ऐसी बिध ऊव दुख न दहै । हरि को निजानंद पद लहै ।।१५।।

दोहा ।

आत्म ज्ञान निश्चे करे, बिधि सों रोके प्रान ।
सोहं हंस को जप करे, तो लहै मोक्ष निर्बान ।।
यह समझि तोसौं कही, साधनते सिद्धहोए ।
जीव समावे ब्रह्म में बहुरि न बिसरे कोए ।।

चौपाई।।

आसन मुद्रा कुंभक साधै । बार बार पूरक कों साधै ।।
प्राण अपान एक ह्वै जाई । थिर कै स्वासन बिसरे काई ।।१६।।
नाद बिन्द कों एक करावै । मनपवना घटमांहिसमावै ।।
आत्म तत्व में होवे लीन । जैसे जल में विचरे मीन ।।१७।।
जैसे पानी लून समावै । ऐसे मिल्या फेर न आवै ।।
ज्यों जीवात्म परमात्म मांही । होवे लीन देह सुध नांही ।।१८।।
सीत उष्ण को गम नहिं काई । बन बस्ती जाके सम भाई ।।
निजानंद पद मांहि समावै । याको नाम समाधि कहावै ।।१९।।

दोहा।

हद छाड़े बेहद भए, भूल गए गुन तीन ।
सकल मिटाई वासना, भए ज्योति में लीन ।।

17:50

AI Mode All Products Homework Visual matches

१. सोहं साधना पर दोहे (भाव सहित)

> **दोहा:**
> **सोहं सोहं जप करै, मन ही मन में लीन।**
> **करणी कहे उस घाट पर, सुरत होवै परबीन ॥**

- **अर्थ:** बाबा कहते हैं कि जो साधक निरंतर 'सोहं-सोहं' का जाप अपने भीतर (साँसों में) करता है और उसमें पूरी तरह लीन हो जाता है, उसकी चेतना (सुरत) उस ऊँचे घाट (ब्रह्मरंध्र) पर पहुँचकर अत्यंत प्रवीण और दिव्य हो जाती है।

> **दोहा:**
> **स्वास-स्वास में सोहं सुमिरो, व्यर्थ स्वास मत खोय।**
> **करणी किरपा गुरु की, अलख लखावै सोय ॥**

- **अर्थ:** हर आती-जाती साँस के साथ 'सोहं' का स्मरण करो, एक भी साँस बिना सुमिरन के खाली न जाए। बाबा कहते हैं कि जब गुरु की कृपा होती है, तभी उस 'अलख' (अदृश्य परमात्मा) का साक्षात्कार संभव होता है।

---

२. सोहं साधना पर छंद/पद (अमृत अनुराग के आधार पर)

बाबा करणी नाथ जी अक्सर सोहं साधना को **'अजपा गायत्री'** के रूप में

Ask anything

17:50

AI Mode All Products Homework Visual matches

२. सोहं साधना पर छंद/पद (अमृत अनुराग के आधार पर)

बाबा करणी नाथ जी अक्सर सोहं साधना को **'अजपा गायत्री'** के रूप में समझाते थे, जिसके मुख्य सूत्र इस छंद में समाहित हैं:

> **छंद:**
> **हंकारे बहिराया, सकारे पैठिया।**
> **सोहं पद के मध्य में, ज्योति को देखिया ॥**
> **अजपा को जपते रहे, करणी सिद्ध भये।**
> **भवसागर से तरि गये, आवागमन गये ॥**

- **व्याख्या:**
  - जब हम साँस बाहर छोड़ते हैं, तो ध्वनि **'हं'** (Hām) होती है और जब साँस भीतर लेते हैं, तो **'स'** (Sām) की ध्वनि होती है। इन दोनों के मिलन से **'सोहं'** बनता है।
  - इन दोनों साँसों के संधि स्थल (मध्य) में ध्यान लगाने पर 'दिव्य ज्योति' के दर्शन होते हैं।
  - इस 'अजपा जाप' (जो बिना बोले निरंतर चलता है) को सिद्ध करके ही बाबा करणी नाथ जी ने मुक्ति पाई और जन्म-मरण के चक्कर से छूट गए।

Ask anything

भजन: स्वाँसा-स्वाँस में सोहं सुमिरो

मुखड़ा:
स्वाँसा-स्वाँस में सोहं सुमिरो, व्यर्थ स्वाँस मत खोवो रे।
करणी कृपा गुरु की पाकर, सोवत मन ने जगावो रे ॥

- **भावार्थ:** बाबा कहते हैं कि अपनी हर आती-जाती साँस के साथ 'सोहं' का स्मरण करो। एक भी साँस बिना सुमिरन के खाली न जाए, क्योंकि हर साँस कीमती है। गुरु की कृपा लेकर अपने सोए हुए मन (अज्ञान) को जगाओ।

अंतरा १:
नाभि कमल से उठी हंकारा, कंठ सकारे जावे रे।
उलटि सुरत जब भृकुटी आवे, अनहद नाद सुणावे रे ॥

- **भावार्थ:** जब हम साँस छोड़ते हैं (हं) और लेते हैं (स), तो यह ध्वनि नाभि से उठकर कंठ तक आती है। जब साधक अपनी एकाग्रता (सुरत) को संसार से उलटकर दोनों भौहों के बीच (भृकुटी) ले आता है, तो उसे भीतर का दिव्य संगीत (अनहद नाद) सुनाई देने लगता है।

२. अजपा गायत्री (Ajapa Gayatri) - बिना जपा जाने वाला मंत्र

छवि में 'सोहं-हंस' के जिस जाप का वर्णन है, उसे ही **'अजपा गायत्री'** कहते हैं।

- **प्राकृतिक जाप:** हर मनुष्य दिन भर में लगभग २१,६०० बार साँस लेता है। साँस बाहर निकालते समय **'हं'** और भीतर लेते समय **'स'** की ध्वनि होती है। यह 'सोहं' का जाप अपने आप (अजपा) निरंतर चल रहा है।
- **साधना:** जब साधक सचेत होकर अपनी **'सुरति'** (ध्यान) को इस स्वाँस-प्रस्वाँस की गति से जोड़ देता है, तो उसे 'अजपा गायत्री' सिद्ध हो जाती है।
- **फल:** जैसा कि आपकी छवि के दोहे में लिखा है— *"सोहं हंस को जप करे, तो लहै मोक्ष निर्बान।"* यानी इस प्राकृतिक जाप को पहचान लेने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति सरल हो जाती है।

---

३. 'नाद-बिंदु' और 'अजपा' का मिलन

जब खेचरी मुद्रा और अजपा गायत्री एक साथ सधती हैं, तब:

1. **मनपवना (Mind and Breath):** मन और प्राण वायु एक हो जाते हैं।
2. **ज्योति (Divine Light):** साधक को भीतर 'ज्योति' (प्रकाश) के दर्शन होते हैं।
3. **अनहद (Inner Sound):** कानों में दिव्य संगीत गूँजने लगता है।

मुञ्चेद्वायुं[3] ततस्तूर्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित् । उच्छ्वासयोगयुक्तश्च वायुमूर्ध्वं विरेचयेत् ।।२३।।
उच्चरति स्वयं यस्मात्स्वदेहावस्थितः शिवः । तस्मात्तत्त्वविदां चैव स एव जप उच्यते ।।२४।।
अयुते द्वे सहस्रैकं षट्शतानि तथैव च । अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसंख्यां करोति सः ।।२५।।
अजपा नाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी । अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते ।।२६।।
चन्द्राग्निरविसंयुक्ता आद्या कुण्डलिनी मता । हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अङ्कुराकारसंस्थिता ।।२७।।
सृष्टिन्यासो भवेत्तत्र स वै सर्गावलम्बनात् । स्रवन्तं चिन्तयेत्तस्मिन्नमृतं सात्त्विकोत्तमः ।।२८।।
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्कलो देहवर्जितः । हंस हंसेति यो ब्रूयाद्धंसो नाम सदाशिवः ।।२९।।
तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्धः समाश्रितः । पुरुषस्य तथा देहे सबाह्याभ्यन्तरं स्थितः ।।३०।।
ब्रह्मणो हृदये स्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः । तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ।।३१।।
प्राणाग्रं तु शिवं विद्यात्तस्यान्ते तु परापरम् । पञ्चधा सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फ(ष्क)लः ।।३२।।
प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद्यदि । षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ।।३३।।
गमागमस्य ज्ञानेन सर्वपापक्षयो भवेत् । अणिमादिगुणैश्वर्यं षड्भिर्मासैरवाप्नुयात् ।।३४।।
स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया । ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादं लक्षयेत्त्रिधा ।।३५।।

की क्रिया से शून्य हो परिपूर्ण कुम्भ की भाँति स्थित हो जाय–इसे 'कुम्भक' कहते हैं। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता साधक ऊपर की ओर एक ही नासारन्ध्र से वायु को निकाले। इस प्रकार उच्छ्वास योग से युक्त हो वायु का ऊपर की ओर विरेचन (निःसारण) करे (यह 'रेचक' प्राणायाम है) ।।२१-२३।। (मनुष्यों के) शरीर में रहनेवाला शिव ही (हृदय स्पन्दन के समय हंसः-हंसः के रूप में) उच्चारण किया करता है, इसीलिए तत्त्ववेत्ता (योगी) लोग उसे जप कहते हैं। उच्चकोटि के योगीगण एक रात-दिन में इक्कीस हजार छह सौ बार उसका जप करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश से सम्बद्ध गायत्री का नाम अजपा है। जो इस अजपा का जप करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है ।।२४-२६।। चन्द्रमा, अग्नि तथा सूर्य से संयुक्त आद्या शक्ति कुण्डलिनी कहलाती है। वह अंकुर रूप हृदय-देश में रहा करती है। सम्पूर्ण सृष्टि का न्यास सृजन अवलम्ब है। श्रेष्ठ सात्त्विक साधक को सदैव यह चिन्ता करते रहना चाहिए कि उस कुण्डलिनी से अमृत टपक रहा है। जो देह में रहता है, वह सकल (पूर्ण) है और जो उससे अलग है वह निष्कल (अपूर्ण) है। जो हंसः-हंसः कहा जाता है, वह हंसः सदाशिव का ही है ।।२७-२९।। जैसे तिल में तेल और पुष्प में गन्ध व्याप्त है, उसी तरह पुरुष के शरीर में बाहर-भीतर सर्वत्र वह हंसः व्याप्त रहता है। ब्रह्मा का स्थान हृदय में है तथा विष्णु कण्ठ में हैं, रुद्र तालु में और महेश्वर ललाट में निवास किया करते हैं। प्राणाग्र में शिव और उसके भी अन्त में परापर (ब्रह्म) का स्थान है। सकल पाँच प्रकार का है और निष्कल उसका विपरीत होता है ।।३०-३२।। जो व्यक्ति छह मास तक योगयुक्त होकर प्रासाद नामक नाद को उठाकर शततन्तु का नित्य जप करता है, उसे निःसन्देह सिद्धि प्राप्त हो जाती है। गमनागमन (आने-जानेवाले) वायु का ज्ञान प्राप्त होने से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को छह मास के भीतर अणिमा आदि ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं ।।३३-३४।। स्थूल, सूक्ष्म तथा पर नामक प्रासाद (ध्वनियों) को तो मैं बता चुका हूँ। इसके तीन

---

३ क. ङ. "ञ्चेच्छ्वासं त"।

से घृणा हो जाती है, समाज विनिर्मित नियमो की वह परवाह नही करता है, ससार उसे प्रतिकूल मार्ग पर अग्रसर दीख पडने लगता है। इसीलिए वह अपने ससार मे विचरण करता रहता है। उसके ससार में न दुख हैं, न सुख है, न हर्ष है, न विषाद है, न प्रलोभन हे, न पुरस्कार है, न उच्च है, न नीच है। उसके ससार मे केवल वही है, वह विश्वात्मा के रूप मे अपने को कण-कण मे व्याप्त देखता है। माया उसका स्पर्श तक नही कर पाती है। शाति, सरलता, निष्पक्षता, और निर्लिप्तता उसकी प्रकृति के विशेष गुण बन जाते हैं। वह मानव-मानव मे भेद की भावना विसर जाता है। इसी स्तर पर पहुँचकर ईसा ने कहा था "I and my Father are one"

ईसा की उपर्युक्त उक्ति से स्पष्ट है कि 'सोऽह' की अनुभूति के अनन्तर मानव अन्य मनुष्यो से अपना भेद नही समझता अथवा कहिये कि उसकी समस्त भेद-बुद्धि विलीन हो जाती है और उसके हृदय एव मस्तिष्क मे 'सोऽह' भावना विद्यमान होने के कारण समता एव अभिन्नता की भावना अकुरित एव पुष्पित हो उठती है। मानव-मानव मे अभिन्नता है, मानव 'वही ब्रह्म' स्वय है। 'सोऽह' की यह भावना हिन्दी के सन्त कवियों मे अत्यधिक उपलब्ध होती है। कबीर दास, सुन्दरदास, पलटू साहब, गुलाल साहब, गरीबदास, दयाबाई, बुल्लेशाह, मलूकदास आदि के साहित्य मे उनकी 'सोऽह' की अनुभूति समान रूप से अभिव्यक्त मिलती है।

सत कवि भीखा 'सोऽह' को 'आत्मा' देखने का एक बहुमूल्य साधन मानते हैं जिसकी अनुभूति युक्तिपूर्वक योगाभ्यास से ही सम्भव है।[1] दयाबाई के अनुसार 'सोऽह' वह अजपाजप है जिसकी साधना के द्वारा मनुष्य पाताल से आकाश मे गति प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि 'सोऽह' की साधना मे मानव ब्रह्ममय हो जाता है।[2] सन्त कवि मलूकदास ने बारम्बार 'सोऽह' साधना का उपदेश दिया है, कारण कि 'सोऽह' साधना मात्र से जीव ब्रह्ममय हो जाता है और भव-बाधाओ से ऊपर हो जाता है। ससार के त्रय तापों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है।[3] गुलाल साहब[4] और कबीरदास[5] ने 'सोऽह' को

[1]जोग जुक्ति अभ्यास करि सोह सबद समाय।
भीखा गुरु परताप ते निज आतम दरसाय॥
स० वा० सा० भाग १, पृ० २१०

[2]अजपा सोह जाप है परम गम्य निज सार। स० वा० स० भाग १ पृ० १६६

[3]सन्तो सोहं साधन कीजै।
सोह साधन ते ताप मिटत है, जीव ब्रह्म होइ जाये।
शब्द सग्रह (अप्रकाशित)

[4]स० वा० स० भाग २, पृ० २०५

[5] ,, ,, पृ० ७

ब्रह्म तक पहुँचने की डोरी माना है। इसी प्रकार बुल्ला साहब की निम्नलिखित पंक्तियाँ बड़ी रोचक प्रतीत होती हैं—

हो हं हंसा लागलि डोर
सुरति निरति चढ़ु मनवाँ मोर ॥१॥
झिलिमिलि झिलिमिलि त्रिकुटी ध्यान
जगमग जगमग गगन तान ॥२॥
गह गह गह अनहद निसान।
प्रान-पुरुष तहँ रहत जान ॥३॥
लहरि लहरि उठि पछिव घाट
फहरि फहरि चल उरार वाट ॥४॥
सेत बरन तह आवै आप
कह बुल्ला सोइ माइ बाप ॥५॥[१]

गरीबदास जी ने 'सोऽहं' को ही ब्रह्म माना है—

तुमही सोहं सुरत हौ तुमही मन अरु पौन।
इसमें दूसर कौन है आवै जाय सो कौन ॥
स० बा० स० भाग १ पृ० १६२

इन सन्तों की तुलना में से सुन्दरदास के काव्य में 'सोऽहं' का भाव बड़े ही स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत कथन की समर्थक हैं—

सब संसार आप मैं दिषै। पूरण आपु जगत महिं पैषै।
आपुहि करता आपुहि हरता। आपुहि दाता आपुहि भरता ॥
आप ब्रह्म कुछ भेद न आनैं। अहं ब्रह्म ऐसै करि जानैं।
अहं परात्पर अहं अखंडा। व्यापक अहं सकल ब्रह्मंडा ॥
अहं निरंजन अहं अपारा। अहं निरामय अरु निरकारा।
अहं निलेप अहं निज रूपं। निर्गुण अहं अहं सु अनूपं।
अहं सुख रूप अहं सुख राशी। अहं सु अजर अमर अविनाशी।
अहं अनन्त अहं अद्वीता। अहं सु अज अव्ययं अमीता।
अहं अभेद्य अछेद्य अलेषा। अहं अगाध सु अकल अदेषा।
अहं सदोदित सदा प्रकाशा। साक्षी अहं सर्व महिं बासा।
अहं शुद्ध साक्षात सुन्यारा। कर्ता अहं सकल संसारा।
अहं सीव सूक्षम सब सृष्टा। अहं सर्वज्ञ अहं सब दृष्टा।

---

[१]स० बा० स० भाग २, पृ० १७१

अहं जगन्नाथ अहं जगदीशा। अहं जगपति अहं जगईशा।
अहं गोविंद अहं गोपालं। अहं ज्ञान धन अहं निरालं॥
(सु० ग्र० भाग १, पृ० ११२-११३)

तथा :

सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो।
स्वासो स्वासं सोहं जापं। सोहं सोहं आपै आपं॥
(सु० ग्र० भाग १, पृ० ४७)

इन पंक्तियाँ से कवि की 'सोऽहं' विषयक धारणा स्पष्ट हो जाती है। "अहं जगन्नाथ अहं जगदीशा।" "अहं जगपति अहं जगईशा।" "अहं गोविंद अहं गोपालं।" आदि पंक्तियों से 'सोऽहं' की भावना स्पष्ट रूप में प्रकट होती है।

स्फुट काव्य में एक स्थान पर कवि ने 'सोऽहं' को अद्वितीय जाप माना है। कवि के शब्दों में ही—

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और,
चित्त सों न चन्दन सनेह सों न सेहरा॥
हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन,
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा॥
सील सों न स्नान अरु ध्यान सों न धूप और,
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा॥
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और,
आतम सों देव नाहि देहं सों न देहरा॥
(स० वा० स० २, पृ० १२५)

रेखांकित पंक्ति में कवि ने 'सोऽहं' को जप, ध्यान और साधना का श्रेष्ठ साधन माना है।

बहुरि विपर्यय ऐसे धारै। पूरि पिंगला इड़ा निकारै।
कुम्भक राखि प्राण को जीतै। चतुर्वार अभ्यास व्यतीतै ॥

ऋषियों द्वारा उपदेशित प्राणायाम की इस पद्धति का उल्लेख कर चुकने के पश्चात् लेखक ने पाठकों के समक्ष मतमतांतर प्रस्तुत करने के हेतु 'गोरक्ष पद्धति' के आधार पर भ प्राणायाम के सिद्धांतों का वर्णन किया है।[1] गोरक्ष पद्धति में "हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंस हसेत्युमुंमंत्रं जीवो जपति सर्वदा" मंत्र है। यह हंस नाम का अजपा गायत्री मंत्र है। योगचिन्तामणि ग्रंथ में भी इसका वर्णन है। कवि ने गोरक्षोक्त सिद्धांत का वर्णन इन छन्दों में किया है :

सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो।
स्वासो स्वासं सोहं जापं। सोहं सोहं आपै आपं ॥
द्वादश मात्रा पूरक करणं। द्वादश मात्रा कुंभक धरणं ॥
द्वादश मात्रा रेचक जाणं। पूरबवत सु विपर्यय ठाणं ॥
अधमे द्वादश मात्रा उक्तं। मध्यम मात्रा द्विगुणा मुक्तं ॥
उत्तम मात्रा त्रिगुणा कहिये। प्राणायाम सुनिर्णय कहिये ॥

गोरक्ष पद्धति में भी यही सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है। कवि ने पूर्ण रूप से गोरक्ष पद्धति मत को अपने शब्दों में व्यक्त कर दिया है—

प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः ॥
। श० २। श्लोक ५।

अर्थात् समस्त प्राणायाम में मात्राओं का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है।

	पूरक की मात्रा	कुंभक की मात्रा	रेचक की मात्रा	मात्रा के काल का निर्णय ॐ अथवा गणना द्वारा किया जा सकता है।
निकृष्ट प्राणायाम में	४	१६	८	
मध्य प्राणायाम में	८	३२	१६	
उत्तम प्राणायाम में	१६	६४	३२	

[1]यह ऋषिनि उक्त सुनाइहों इहिं भाँति प्राणायाम।
सद्गुरु कृपातें पाइये मन होइ अति विश्राम ॥
अब मत मतांतर कहत हौं सुनि शिष्य अरु प्रभाव।
गोरक्ष उक्त बखानि हौं तिहि सुनत उपजय चाव ॥

सन्त कवियों ने नाम को संसार में सारवस्तु माना है। नाम ही मानव को कल्याण दिलाने वाला है इसीलिये उन्होंने बारम्बार निःसार वस्तु को छोड़ कर सारवस्तु ग्रहण करने का उपदेश दिया है। सुन्दरदास ने नाम को तक्र (मठा) से निकले हुए घी के समान माना है जिसको सन्तों ने संसार से खोज निकाला है।[1] दरिया साहब (बिहार वाले) के शब्दों में—

संत नाम निजु सार है, अमर लोक के जाय।
कह दरिया सतगुरु मिलै संसय सकॅल मिटाय ॥[2]

और दयाबाई के अनुसार इस जग में सारवस्तु नाम ही है जिसके भजन से मनुष्य स्वयं ही हरि के समान हो जाता है—

दया दास हरि नाम लै या जग में यह सार।
हरि भजते हरि ही भये पायो भेद अपार ॥[3]

गरीबदास के शब्दों में—

नाम सरोवर सार है, सोहं सुरत लगाय।
ज्ञान गलीचे बैठ करि सुन्न सरोवर न्हाय ॥[4]

सन्तों ने नाम को पारस की संज्ञा भी दी है। पारस वह पदार्थ है जिसके स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है। यहाँ पर नाम पारस और मानव को साधारण तत्व होने की कल्पना की गई है। कबीर[5], दरिया साहव (मारवाड़ वाले)[6] दूलनदास[7] सहजोबाई[8]

[1]स० वा० १, १०८।६
[2]स० वा० १, १२१।१
[3] ... ... १६८।२
[4] ... ... १८६।२३

[5]आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भयो छूटा बन्धन मोह ॥

[6]लोह पलट कंचन भया करि पारस का संग।
दरिया परसै नाम को सहजहि पलटै अंग ॥
दरिया सुमिरै नाम को आतम को आधार।
काया काची काँच सी कंचन होत न बार ॥

[7]दूलन नाम पारस परसि भयो लोह से सोन।
कुन्दन होइ कि रेशम बहुरि न लोहा होन ॥

[8]पारस नाम अमोल है धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल के सहजो डारै खोय ॥

अथवा मृत्यु एवं पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।[1] जिस प्रकार से चातक बारम्बार पीव-पीव का उच्चारण करके प्रियतम की खोज में व्याकुल फिरता है उसी प्रकार साधक को परब्रह्म का स्मरण अपेक्षित है। जिस प्रकार कुंजी एवं कूर्म बड़े ध्यान से अपने अंडों को सेते हैं उसी प्रकार यदि साधक ध्यान से परब्रह्म का स्मरण करे तो वह जरा और मृत्यु आदि से मुक्त हो जाय। सुन्दर गीत वा कहानी सुन कर जिस प्रकार बालक आनन्द-विभोर हो जाते हैं सर्प पूंगी के मधुर रव को सुन कर आत्मविस्मृत हो जाता है और हिरण बाँसुरी की मोहक तान सुनकर ध्यानस्थ हो जाता है उसी लय से यदि मानव ब्रह्म का स्मरण करे तो समस्त भवताप विनष्ट हो जायँ। जिस प्रकार जलते हुए बाँस पर नटनी चढ़कर अपनी कला का प्रदर्शन करती हुई भी अपनी रक्षा रखती है और जैसे पनिहारी घड़े को सर पर रख कर भाँति-भाँति से अभिनय करती हुई भी घड़े का ध्यान नहीं विसराती है उसी प्रकार ब्रह्म का ध्यान रखनेवाला लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार जंगल की चरनेवाली गाय का ध्यान घर पर छूटे हुए बछड़े और गृहकार्य में संलग्न माता का ध्यान बच्चे पर रहता है उसी प्रकार हरिदास को ब्रह्म में लय रखना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्म में सतत ध्यान रखने वाले व्यक्ति ही अभावों से ग्रस्त संकटों से आवृत इस संसार से मुक्ति ग्रहण कर सकता है।[2]

---

[1]निशिवासर ऐसै लै लागै। आवागमन सकल भ्रम भागै॥

[2]जैसे चातक करै पुकारा। पीवपीव करि बारम्बारा।
ऐसी विधि लय लावै कोई। परम स्थान समावै कोई॥
जैसे कुंजी अंड समारै। पुनि सो कूर्म दृष्टि नहि टारै।
जो कोऊ लै लावै ऐसीं। ताकौ जरा मृत्यु कहुँ कैसी।
जैसे बालक सर्प कुरंगा। थकित सु होइ नाद कै संगा।
ऐसी लय जो कोई लावै। जोनि संकट बहुरि न आवै॥
जैसे बरत बांस चढ़ि नटनी। बारंबार करै तहाँ अटनी।
इत उत कहूँ नैक नहि हेरै। ऐसी लय जन हरि तन फेरै।
जैसे कुम्भ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हंसै देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यौं जन लय लावै दिन मंझा॥
जैसे गाइ जंगल कौ धावै। पानी पिवै घास चरि आवै।
चित्त रहै बछरा कै पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा॥

उसका बारम्बार अभ्यास करना ही सुन्दरदास के अनुसार 'मंत्रयोग' है। सन्तों ने अपने साहित्य की रचना और उपदेशों का प्रसार साधारण जनता के लिए किया था। सम्भवतः इसी कारण सुन्दरदास ने भी मंत्रयोग विषयक विचारों को सुगम और सरल बनाये रखने के लिए ही उसके शास्त्रीय पक्ष को अपनी विचार-धारा में स्थान नहीं दिया।

सुन्दरदास के शब्दों में सतगुरु 'मंत्रयोग' का मूल उद्गम है। उसकी कृपा के विना, उसके पथ-प्रदर्शन के अभाव में वह बोधगम्य नहीं है।[1] समस्त सन्तों ने परस्पर विचार विनिमय किया कि उस परब्रह्म के प्रति भक्ति किस प्रकार की जाय जिसकी न रेखा है, न रूप है, न आकार है, न प्रकार है, सर्वत्र वर्तमान रहता हुआ भी वह अदृष्ट है। अनन्त होता हुआ भी स्थूल, दृष्टि से दूर एवं ऊपर है। गुणातीत होते हुए भी वह संसार की प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। जिस परब्रह्म को मानव ने देखा नहीं, सुना नहीं, उससे भक्ति किस प्रकार की जाय[2] विचार विमर्श के अनन्तर सन्तों ने अपनी सुविधा और सुगमता के लिए निराकार परब्रह्म की उपासना का साधन 'राम' मंत्र निर्धारित किया।[3] कारण कि राम नाम का जप समस्त मंत्रों और साधनाओं में श्रेष्ठ है। उसके समान और कोई उपासना नहीं है। यह मंत्र समस्त मंत्रों में श्रेष्ठ है।[4]

---

[1] मंत्रयोग अब सुनियहु भाई।
सतगुरु बिना न जान्यो जाई॥
(स० यो० प्र० द्वितोयोपदेशः)

[2] जाकै कछू रूप नहि रेषा।
कौन प्रकार जाइ सो देषा॥
कहूँ न दीसै ठौर न ठाऊँ।
ताकौ धरहिं कवन विधि नाऊँ॥
(स० यो० प्र० द्वितीयोपदेशः)

[3] अपने सुख के कारन दासा।
काढ्यौ सोधि सुपरम प्रकासा॥
ताकौ नाम राम तब राष्यौ।
पीछे विविधि भाँति बहु भाष्यौ॥ (वही)

[4] राम मंत्र सबके सिरमौरा।
ताहि न कोई पूजत औरा॥
राम मंत्र सब महिं ततसारा।
और आहि जग के व्यौहारा॥
(स० यो० प्र० द्वितीयोपदेशः)

'राम मंत्र' का बड़ा माहात्मा और महत्ता है। पत्थर पर राम नाम अंकित होने के कारण जल में भी पत्थर तैरता रहा (कहा जाता है कि सेतु बाँधते समय नल, नील आदि ने सागर के जल में शिलाओं पर राम मंत्र लिख कर रखा। नाम के प्रताप से वे सभी शिलाएँ पानी पर आज तक तैरती रहीं, डूबी नहीं)। पत्ते पर राम मंत्र लिख देने से इच्छानुसार वह इतना अधिक भारी हो गया कि उठाये नहीं उठ सका। राम मंत्र को शिव ने सती, नारद ने ध्रुव को सुनाया। प्रह्लाद ने इसी मंत्र का जप करते हुए समस्त कष्टों को सहन कर डाला।[1]

इस मंत्र को सद्गुरु से सुनने के अनन्तर साधक इसका अभ्यास करे। इसके अभ्यास के पश्चात् इसे हृदयंगम करके अजपाजप करे। दिन-रात साधक का मन इसी मंत्र में लगा रहे। जप का धागा कभी भी टूटने न पाये। इसी अवस्था पर साधक के मन में इस मंत्र की अखंडित ध्वनि गुंजरित होने लगेगी। जिस प्रकार पानी में लवण मिलकर एक रूप हो जाता है ठीक उसी प्रकार साधक को सुरति और नाम को एक रूप कर देना चाहिए। सुन्दरदास के शब्दों में—

प्रथम श्रवन सुनि गुरु कै पासा। पुनि सो रसना करे अभ्यासा॥
ता पीछे हिरदै में धारे। जिह्वा रहित मंत्र उच्चारे॥
निशि दिन मन तासौं रह लागौ। कबहूँ नेक न टूटे धागौ॥
पुनि तहँ प्रकट होइ रंकारा। आपुहि आपु अखंडित धारा॥
तन मन बिसरि जाइ तहाँ सोई। रोमहि रोम राम धुनि होई॥
जैसे पानी लौन मिलावै। ऐसे ध्वनि महिं सुरति समावै॥[2]

---

[1]राम मंत्र ते शिला तिरानी।
पाथर कहा तिरै कहु पानी॥
राम मंत्र के ऐसे कामा।
पत्र न उठ्यौ लिखे जब नामा॥
राम मंत्र शिव गौरि सुनायौ।
सोई नारद ध्रुवहि पढ़ायौ॥
पुनि प्रह्लाद गह्यौ सो मंत्रा।
सही कसौटी काढ़े जंत्रा॥
जरे न मरे षड्ग की धारा।
राम मंत्र के ये उपकारा॥
(स० यो० प्र० द्वितीयोपदेशः)

[2]स० यो० प्र०, द्वितीयोपदेशः

ताकौ नाम राम तब राख्यौ। पीछैं विविधि भांति बहु भाष्यौ ॥ १८ ॥
सहस्र नाम की कौंन चलावै। नाम अनन्त पार कौ पावै।
राम मन्त्र सबकै सिरमौरा। ताहि न कोई पूजत औरा ॥ १९ ॥
राम मन्त्र सब मंहि तत सारा। और आहि जग के व्यौहारा।
राम मन्त्र ते शिला तिरानी। पाथर कहा तिरै कहुं पांनी ॥ २० ॥
राम मन्त्र के ऐसै कामा। पत्र न उठ्यौ लिषै जब नामा।
राम मन्त्र शिव गौरि सुनायौ। सोई नारद ध्रुवहिं पढायौ ॥ २१ ॥
पुनि प्रह्लाद गह्यौ सो मंत्रा। सही कसौटी काढे जंत्रा।
जरे न मरे षड्ग की धारा। राम मन्त्र के ये उपकारा ॥ २२ ॥
सुगम उपाइ और सदरोजी। राम मन्त्र कौं जौ ले षोजी।
प्रथम श्रवन सुनि गुरु कै पासा। पुनि सो रसना करै अभ्यासा ॥ २३ ॥
ता पीछै हिरदै मैं धारै। जिह्वा रहित मंत्र उच्चारै।
निश दिन मन तासौं रह लागौ। कबहूं नैंक न टूटै धागौ ॥ २४ ॥
पुनि तहां प्रगट होइ रंकारा। आपु हि आपु अखण्डित धारा।
तन मन विसरि जाइ तहां सोई। रोमहि रोम राम धुनि होई ॥ २५ ॥
जैसैं पांनी लौंन मिलावै। ऐसैं ध्वनि मांहि सुरति समावै।
राम मन्त्र का इहै प्रकारा। करै आपु से लगै न वारा ॥ २६ ॥

---

(१८) नाम राम=राम नाम ही को मुख्य मन्त्र ईश्वर प्राप्ति के लिये कहा है।

(२०) शिला तिरानी=सेतु बांधने मे राम नाम लिख कर नल नील आदि ने शिला पानी पर रक्खी सो डूबी नहीं। पत्र न उठ्यो=पत्ते पर नाम लिख देने से इच्छानुसार वह इतना भारी हो गया कि उठाये न उठा।

(२२) सही कसौटी=जो जो कष्ट हिरण्याक्ष ने दिये सो सब राम भजन से सह गये। काढे जत्रा=यत्र में होकर मानों निकले, अर्थात् पूर्ण कष्ट भोगे और बाल बांका न हुआ।

(२३) सदरोजी—सच्च कमाई।

(२५) रकारा="राम राम राम राम" की लगातार अखण्डित धुनि गुजारते

अथ लययोग

चौपई

अब लययोग कहूं बहु भांती। लय बिन भय व्यापै दिन राती।
लय बिनु जन्म मरन नहिं छूटै। लय बिनु काल आइ कैं कूटै॥ २८॥
लय समान नहिं और उपाई। जो जन रहै राम लय लाई।
निशि वासर ऐसैं लै लागै। आवागमन सकल भ्रम भागै॥ २९॥
जैसैं चातक करैं पुकारा। पीव पीव करि वारंवारा।
ऐसी विधि लय लावै कोई। परम स्थान समावै सोई॥ ३०॥
जैसैं कुञ्जी अंड सभारै। पुनि सो कूर्म दृष्टि नहिं टारै।
जो कोऊ टै लावै ऐसी। ताकौ जरा मृत्यु कहु कैसी॥ ३१॥
जैसैं बालक सर्प कुरंगा। थकित सु होइ नाद कै संगा।
ऐसी लय जो कोई लावै। जोनी संकट बहुरि न आवै॥ ३२॥
जैसैं वरत वांस चढि नटनी। वारंवार करै तहां अटनी।
इत उत कहूं नैंक नहिं हेरै। ऐसी लय जन हरि तन फेरै॥ ३३॥

रहने से—"रां रां रां रां" ऐसी संक्षिप्त आवाज निकलने लगती है जो शनैः शनैः "रं-रं-रं-रं" हो जाती है। इस ही को रंकार कहा है।

(३१) कुञ्जी—कुञ्ज पक्षी की मादिन। जो अपने ध्यान से अण्डे को सेती है। कूर्म=कछुआ और मगर ध्यान से अण्डे को सेते हैं।

(३२) बालक, सर्प, कुरङ्ग=बालक सुन्दर गीत वा कहानी सुन मग्न हो जाता है। सांप सपेरे की पूंगी पर प्रसन्न हो जाता है। कुरङ्ग, हिरण, नाद, बांसुरी आदि में रत हो जाता है। जोनी संकट (योनि+संकट) आवागमन।

(३३) अटनी=अटन, चलना फिरना, चक्कर देना।

जैसैं कुम्भ लेह पनिहारी। सिरि धरि हंसै देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यौं जन लय लावै दिन संझा॥ ३४॥
जैसैं गाइ जगल कौं धावै। पानी पिवै घास चरि आवै।
चित्त रहै वछरा कै पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा॥ ३५॥
ज्यौं जननी गृह काज कराई। पुत्र पिघूरै पौढत भाई।
उर अपनै तैं छिन न विसारै। ऐसी लय जन कौं निस्तारै॥ ३६॥
जैसैं कीट भृङ्ग की त्रासा। पलटि जाइ यहु बड़ा तमासा।
ऐसी विधि लय लागै जाकी। वारवार बलिहारी ताकी॥ ३७॥
सब प्रकार हरि सौं टै लावै। होइ विदेह परम पद पावै।
छिन छिन सदा करै रस पाना। लय ते होइ ब्रह्म समाना॥ ३८॥

दोहा

यह लय योग अनूप है करै ब्रह्म सामान।
भाग्य विना नहिं पाइये सतगुरु कहै सुजान॥ ३९॥

अथ चर्चायोग

चौपई

अब यह चर्चायोग वषानौं। मति अनुमान कछू जो जानौं।
निराकार है नित्य स्वरूपं। अचल अभेद्य छांह नहिं धूपं॥ ४०॥

---

(३४) मंझा=मांझ, मध्य। संझा=रात्रि।

एवमपमार्गनिरोधात् मध्यधामनि एव प्ररोहं प्राप्तः प्राणः संविद्रूपोद्रेकात् विश्वात्मकतामेव यायात्। तदाह

स आत्मा मातृका देवी शिवो देहव्यवस्थितः ।

स देहव्यवस्थितोऽपि हंसः प्राप्तमन्त्रदेवतैकात्म्यः सन् आत्मा सङ्कुचिताणुरूपः।

शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।'

इत्याद्युक्त्या मातृका देवी पारमेश्वरी शक्तिः शिवश्च नरशक्तिशिवात्मतया स एव परिस्फुरेदित्यर्थः॥८९॥

अत एव मन्त्रस्य प्राप्ततदैकात्म्यस्य प्राणस्य आत्मनश्च मन्त्रयितुर्न न कश्चिदपि भेदमनुसन्दध्यादित्याह

अन्यः सोऽन्योऽहमित्येवं विकल्पं नाचरेद्यतः।।९०।।

"प्राण के साथ ही जप करना चाहिये । इससे वह सिद्धि के योग्य हो जाता है ।"

इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये १ से १६ लाख तक के जप का निर्देश योग सञ्चार नामक शास्त्र में किया गया है । अधिक और कम जप का निर्देश योगियों की स्तरीयता के ही अनुकूल है । जप की इस चित्रात्मकता में भी रहस्य भरा हुआ है ॥८९॥

अपमार्ग का निरोध हो जाना अपने में एक बड़ी सिद्धि है । मध्यधाम में प्ररोह प्राप्त कर लेना साधक की एक बड़ी उपलब्धि है । इससे संविद्रूप का उद्रेक हो जाता है और वैश्वात्म्य का विकास होता है । यही कह रहे हैं—

प्राणापानवाह जीवन का वरदान है ।.यही हंस है । देह में व्यवस्थित आत्मा है । प्राणापान के गमागम से मन्त्र का ऐकात्म्य सिद्ध हो जाने पर जो योगी का स्वरूप निर्मित होता है, वह शक्ति से ओतप्रोत होता है ।

1. सोहं और अजपा जाप के दोहे

ये दोहे बताते हैं कि सोहं का जाप केवल मुख से नहीं बल्कि सांसों (श्वास-उच्छवास) की गति में समाहित होना चाहिए।

- **दोहा**: *"अजपा जाप अगाध है, सोहं शब्द सनेह। बिन जिभ्या सुमरण करो, तब पावे निज देह।।"*
(अर्थ: अजपा जाप अत्यंत गहरा है जिसे सोहं शब्द के प्रेम के साथ किया जाता है। बिना जीभ हिलाए सुमरण करने से ही वास्तविक आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होती है।)

- **दोहा**: *"स्वासा ही में सार पद, पद पद में श्वासा सार। दमदेही का खोज कर, आवागमन निवार।।"* [1.4.1]
(अर्थ: प्रत्येक सांस में ही वह परम पद (सार शब्द) छुपा है। अपनी हर सांस में उस परमात्मा को खोजो ताकि जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो सके।)

- **दोहा**: *"सोहं शब्द सुमिर ले, यहि विधि उतरे पार। गरीब दास सतगुरु बिना, अंधा है संसार।।"*
(अर्थ: सोहं शब्द का सुमिरन ही इस भवसागर से पार उतरने का तरीका है, लेकिन बिना पूर्ण गुरु के संसार अज्ञान के अंधेरे में ही रहता है।)

2. सोहं साधना पर छंद/पद (अमृतवाणी से)

गरीबदास जी की वाणियों में 'सुरति-निरति' और 'गगन मंडल' का वर्णन अक्सर सोहं साधना के संदर्भ में आता है:

- **छंद**: *"रटो राम रमता रखो, शील समता करे तो ही अजर रे। अलख नूर मेला गुरु कौन चेला, बजर काल डरे रे।। शब्द में समाना अमान अजोखम, चलो क्यों नगर रे।।"* [1.5.1]

से किया जाता है। यह मन को शांत करता है और दिव्य लोकों के द्वार खोलता है।

- *वाणी: "सोहं सोहं जप जपे, मिटे न मन की प्यास। सार शब्द पावे बिना, होवे न सत्य निवास।।"* (अर्थ: केवल सोहं के जाप से मन की प्यास पूरी तरह नहीं बुझती, जब तक 'सार शब्द' न मिल जाए, तब तक सत्यलोक में निवास नहीं मिलता।)

- **सार शब्द (Saar Shabd):** यह वह गुप्त 'आदि नाम' है जो लिखत-पढ़त में नहीं आता। यह गुरु द्वारा शिष्य को तब दिया जाता है जब उसकी 'सुरति' सोहं साधना से परिपक्व हो जाती है। यह जीव को सीधे **सतलोक** (अविनाशी लोक) ले जाता है।

2. त्रिकुटी का रहस्य (Mystery of Trikuti)

साधना के दौरान जब प्राण और मन स्थिर होते हैं, तो साधक की सुरति **'त्रिकुटी'** (दोनों भौंहों के बीच का स्थान) पर पहुँचती है।

- **संगम स्थल:** त्रिकुटी को तीन धाराओं (इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना) का संगम माना जाता है। यहाँ पहुँचने पर साधक को 'अनहद नाद' (आंतरिक दिव्य ध्वनियाँ) सुनाई देने लगती हैं।
- **प्रकाश का अनुभव:** यहाँ 'लाल' और 'सफेद' रंग के प्रकाश के दर्शन होते हैं। गरीबदास जी कहते हैं कि त्रिकुटी के पार जाने के लिए सोहं मंत्र एक 'पासपोर्ट' की तरह काम करता है।
  - *वाणी: "त्रिकुटी महल में पैठि कर, अनहद शब्द सुनाय। गरीब दास सोहं रटे, काल जाल कट जाय।।"*

3. साधना का अंतिम लक्ष्य: सतलोक (Satlok)

कश्मीर के संतों का योगदान

कश्मीर की 'ऋषि परंपरा' ने इस साधना को आम लोगों के लिए सरल बनाया:

1. **लल्लेश्वरी (लल द्यद)**: उन्होंने अपनी 'वाख' में श्वास की गति (प्राण-साधना) को केंद्र में रखा। उनकी साधना का सार था कि श्वास के माध्यम से ही 'शिव' और 'शक्ति' का मिलन संभव है।
2. **नुन्द ऋषि (शेख नूरुद्दीन वली)**: उन्होंने सूफी चिंतन और योग साधना को मिलाकर सोऽहम् का अभ्यास किया। उनके अनुसार, श्वास ही वह सूत्र है जो बंदे को खुदा (या जीव को शिव) से जोड़ता है।
3. **अभिनवगुप्त**: इन्होंने अपनी रचनाओं में स्पष्ट किया कि सोऽहम् साधना 'प्रत्यभिज्ञा' (स्वयं को पहचानने) का सबसे सुलभ मार्ग है, जहाँ साधक अंततः अनुभव करता है कि "मैं वही (शिव) हूँ"। YouTube +3

साधना के लाभ

- **भावनात्मक स्थिरता**: यह मन को शांत कर आंतरिक स्थिरता प्रदान करती है।
- **आत्म-साक्षात्कार**: इसका अंतिम लक्ष्य यह अनुभव करना है कि आत्मा और परमात्मा अलग नहीं हैं।
- **वर्तमान में उपस्थिति**: निरंतर श्वास पर ध्यान देने से जागरूकता (Awareness) बढ़ती है। YouTube +2

कश्मीर के संतों के लिए सोऽहम् केवल एक तकनीक नहीं, बल्कि **अद्वैत** (Non-duality) का जीवंत अनुभव था, जो कश्मीर की साझा संस्कृति (Composite Culture) का आधार बना। YouTube +1

07:45

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

यहाँ **सोऽहम् साधना** और **शेख नूरुद्दीन वली (नंद ऋषि)** के आध्यात्मिक दर्शन पर आधारित कुछ और प्रभावी **दोहा छंद** प्रस्तुत हैं:

सोऽहम् साधना (Soham Sadhna) पर विशेष दोहे:

श्वास खींचत 'सो' कहे, छोड़त 'हम्' उच्चार।
अजपा जप निशदिन चले, भव सागर के पार ॥
(अर्थ: श्वास लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हम्' का उच्चारण स्वाभाविक रूप से होता है। यह बिना जपे जाने वाला मंत्र ही संसार रूपी सागर से पार लगाता है।)

सोऽहम् की लय पकड़ ले, मन को कर ले मौन।
भीतर झाँक कर देख ले, तू है आखिर कौन ॥
(अर्थ: सोऽहम् की लय में खोकर जब मन शांत होता है, तब आत्म-साक्षात्कार होता है कि वास्तव में 'मैं वही (ईश्वर) हूँ'।)

हंस रूप में प्राण हैं, सोऽहम् ब्रह्म का रूप।
मिट जाए सब द्वैत भाव, खिले ज्ञान का धूप ॥
(अर्थ: प्राण ही 'हंस' और 'सोऽहम्' बनकर शरीर में व्यापत हैं। इस साधना से भेद मिट जाता है और ज्ञान का प्रकाश फैलता है।)

शेख नूरुद्दीन वली (नंद ऋषि) की साधना पर दोहे:

नंद ऋषि की सादगी, प्रेम का पावन पंथ।
श्वासों की इस डोर में, लिखा मुक्ति का ग्रंथ ॥
(अर्थ: शेख नूरुद्दीन वली का मार्ग प्रेम और सादगी का है। उन्होंने श्वासों की साधना (प्राणायाम/सोऽहम्) को ही मोक्ष का मार्ग बताया।)

Ask anything

07:45

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

शेख नूरुद्दीन वली (नंद ऋषि) की साधना पर दोहे:

नंद ऋषि की सादगी, प्रेम का पावन पंथ।
श्वासों की इस डोर में, लिखा मुक्ति का ग्रंथ ॥
(अर्थ: शेख नूरुद्दीन वली का मार्ग प्रेम और सादगी का है। उन्होंने श्वासों की साधना (प्राणायाम/सोऽहम्) को ही मोक्ष का मार्ग बताया।)

नूरी किरणें फूटतीं, जब हृदय खुले कपाट।
सोऽहम् सुमिरन से मिले, अलख निरंजन घाट ॥
(अर्थ: जब हृदय का द्वार खुलता है, तो ईश्वरीय प्रकाश (नूर) का अनुभव होता है। सोऽहम् के सुमिरन से उस अदृश्य परमात्मा का मिलन होता है।)

बाहर खोजे बावरा, भीतर भरा भंडार।
नंद कहे निज को परख, मिटे भरम का भार ॥
(अर्थ: अज्ञानी मनुष्य ईश्वर को बाहर खोजता है, जबकि खजाना भीतर है। नंद ऋषि कहते हैं कि स्वयं को पहचानने से ही सारे भ्रम दूर होते हैं।)

क्या आप इन दोहों के आधार पर **शेख नूरुद्दीन वली के किसी कश्मीरी 'श्रुख' (उपदेश)** का विस्तृत हिंदी काव्यात्मक अनुवाद देखना चाहेंगे?

Ask anything

तंत्रालोक में आचार्य बताते हैं कि हमारी श्वास केवल हवा का आना-जाना नहीं है, बल्कि यह **शक्ति** का स्पंदन है।

1. **मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) का द्वार**:
   जब हम सजग होकर 'सो' (श्वास अंदर) और 'हम्' (श्वास बाहर) का अनुभव करते हैं, तो प्राण और अपान संतुलित होने लगते हैं। अभिनवगुप्त के अनुसार, इस संतुलन से **मध्य धाम** (सुषुम्ना नाड़ी) का द्वार खुलता है।
2. **प्राण-कुंडलिनी का उत्थान**:
   जैसे ही श्वास 'सोऽहम्' की लय में स्थिर होती है, सोई हुई **कुंडलिनी शक्ति** जागृत होकर ऊपर की ओर उठती है। तंत्रालोक में इसे **'प्राण-कुण्डलिनी'** कहा गया है, जहाँ श्वास ही शक्ति का वाहन बन जाती है।
3. **द्वादशान्त का अनुभव**:
   अभिनवगुप्त कहते हैं कि श्वास जब हृदय से उठकर नासिका के बाहर 12 अंगुल की दूरी (**द्वादशान्त**) पर विश्राम लेती है, तो उस शून्य क्षण में 'शिव' का साक्षात्कार होता है। 'सोऽहम्' साधना इसी शून्य (Pause) को पकड़ने की कला है।
4. **अजपा-जाप से समाधि**:
   तंत्रालोक के अनुसार, जब साधक इस 'सोऽहम्' के प्रति पूरी तरह जागरूक हो जाता है, तो उसे प्रयास नहीं करना पड़ता। यह मंत्र अपने आप (अजपा) चलने लगता है, जिससे चित्त **'भैरव भाव'** (परम चेतना) में विलीन हो जाता है।

संक्षेप में: 'सोऽहम्' वह चाबी है जिससे प्राणों को बांधकर कुंडलिनी को शिव (सहस्रार) तक पहुँचाया जाता है।

2. गुरु जाम्भोजी की शिक्षा और सोहं भाव पर:

"जाम्भ देव की सीख यह, सोहं जप चित लाय।
घट-घट माहीं ब्रह्म है, दूजा और न कोय॥"
(अर्थ: गुरु जाम्भोजी सिखाते हैं कि मन लगाकर सोहं का जाप करो। हर हृदय में वही ब्रह्म व्याप्त है, उसके अलावा और कोई सत्य नहीं है।)

3. जीव-ब्रह्म की एकता पर:

"सोहं सोहं रटत रह, मिटै द्वैत का रोग।
बिश्नोई सिद्ध होत है, पाय ब्रह्म का योग॥"
(अर्थ: निरंतर सोहं का ध्यान करने से भेद-भाव (द्वैत) समाप्त हो जाता है और साधक ईश्वर से एकाकार हो जाता है।)

छंद (Chhand - चौपाई शैली)

छंद (Chhand - चौपाई शैली)

> **"सोहं मंत्र अनूपम सारा, स्वास-स्वास में नाम उचारा।**
> **घट के भीतर अलख जगावै, भव-बाधा सब दूर नसावै॥**
> **बिष्णु बिष्णु तू भण रे प्राणी, जाम्भोजी की अमृत वाणी।**
> **सोहं धुन जब हिरदे बाजे, सकल भरम पाखंड सब भाजै॥"**

(अर्थ: सोहं मंत्र सबसे श्रेष्ठ है जिसे हर श्वास में जपना चाहिए। यह हृदय के भीतर दिव्य ज्योति जगाता है और सांसारिक कष्टों को दूर करता है। गुरु जाम्भोजी की अमृत वाणी 'विष्णु-विष्णु' भजने और सोहं की ध्वनि सुनने की प्रेरणा देती है, जिससे सारे भ्रम और पाखंड मिट जाते हैं।)

साधना का सार:

बिश्नोई संप्रदाय में गुरु जाम्भोजी द्वारा बताए गए 29 नियमों में से **विष्णु का स्मरण** और **अजपा जाप** सोहं साधना के ही अंग हैं। इसमें 'सो' (वह/ब्रह्म) सांस लेते समय और 'हं' (मैं/आत्मा) सांस छोड़ते समय अनुभव किया जाता है। YouTube +3

क्या आप इन पदों का **राजस्थानी या डिंगल शैली** में अनुवाद देखना चाहेंगे, जो बिश्नोई साहित्य की पारंपरिक भाषा है?

छंद (Chhand - डिंगल/राजस्थानी पुट के साथ)

> "गगन मण्डल में ज्योति जगाई, सोऽहं की अनहद बजवाई।
> कण-कण में बिष्णु को देखौ, जीवन सफल अपणो करि लेखौ॥
> नित नियम उन्नतीस ध्यावौ, पाखंड सकल दूर भगावौ।
> दया धर्म हिरदे में राखौ, मुक्ति का रस अमृत चाखौ॥"

(अर्थ: आकाश मंडल (शून्य) में दिव्य ज्योति जगी है और सोहं की अनहद ध्वनि गूँज रही है। हर कण में विष्णु को देखो और अपना जीवन सफल बनाओ। 29 नियमों का पालन करो, पाखंड दूर करो और हृदय में दया-धर्म रखकर मुक्ति का आनंद लो।)

साधना का एक विशेष पद (Sadhna Pad):

> "हं" छोड़े "सो" को गहे, सोहं साधना सार।
> बिश्नोई पंथ निराला, उतरे भवजल पार॥

"बाहर खोजत क्या फिरे, भीतर देख विचार।
सोऽहं धुन में रमि रहा, जग का सिरजनहार॥"
(अर्थ: बाहर खोजने से क्या मिलेगा, अपने भीतर विचार करो। सृष्टि का रचयिता तुम्हारी अपनी 'सोहं' की ध्वनि में ही समाया हुआ है।)

2. मौन साधना और श्वास पर:

"वाणी तज के मौन गहु, स्वास न खाली जाय।
अजपा जप बिश्नोई करे, ब्रह्म में चित्त लगाय॥"
(अर्थ: व्यर्थ की बातों को छोड़कर मौन धारण करो और एक भी सांस खाली न जाने दो। सच्चा बिश्नोई वही है जो अजपा जाप (सोहं) के जरिए ब्रह्म से जुड़ा रहे।)

3. जीव-परमात्मा की एकता पर:

"सोहं शब्द अनूप है, जो समझे सो सिद्ध।
जाम्भोजी की कृपा से, मिलै सकल नौ निद्धि॥"
(अर्थ: सोहं शब्द अद्वितीय है, जो इसे समझ लेता है वह सिद्ध हो जाता है। गुरु जाम्भोजी की कृपा से उसे संसार की सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।)

- **शून्य की अवस्था:** वे कहती हैं कि जब 'सोहं' हृदय में स्थिर हो जाता है, तो मनुष्य 'शून्य' (विचारहीन अवस्था) में पहुँच जाता है, जहाँ केवल परमानंद शेष रहता है।

निष्कर्ष पद:

> **"सोहं की डोरी पकड़, लल्ला पहुँची पार।**
> **भीतर शिव को पा लिया, तज कर सब संसार॥"**

लल द्यद की यह साधना सरल होते हुए भी अत्यंत गहरी है, क्योंकि यह सीधे **आत्म-साक्षात्कार** (Self-realization) की बात करती है।

क्या आप लल्लेश्वरी के **शैव दर्शन (Kashmiri Shaivism)** और सोहं के गहरे संबंध पर और जानकारी चाहते हैं?

लल्ला का मानना था कि ईश्वर को बाहर खोजने के बजाय अपनी श्वासों में खोजना चाहिए।

> **"कुसुय अर्चुन, कसुय पूजन, कसुय मन्त्र जपुन सोहं।**
> **प्रानन रटिथ, मनस धरिथ, तसुय सोहं जप मुन॥"**

व्याख्या (भेद):
लल्ला पूछती हैं—कौन सा अर्चन है? किसकी पूजा है? और कौन सा मंत्र है? फिर स्वयं उत्तर देती हैं कि **'सोहं'** (वही मैं हूँ) का जाप ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है। जब साधक **प्राणों (श्वास)** को रोककर (प्राणायाम द्वारा) मन में 'सोहं' को धारण करता है, तब उसे किसी बाहरी कर्मकांड की आवश्यकता नहीं रहती।

---

2. द्वैत का अंत (End of Duality)

लल्ला की सोहं साधना का लक्ष्य 'मैं' और 'वह' के अंतर को मिटाना था।

> **"लल बह द्रायस लोल्लरे, छ़ान्डान लुम्यम पानस मनज़।**
> **सोहं सोहं रटिथ र्वदुन, तवय मे मिल्यव अमृत पान॥"**

> **"अमी पना सो रस खींचम, क्या ज़ाना करय्यम पार।
> ग़रज़ गरज़ त सुहं सुहं, कछुम न मंज़िल परवार॥"**

भावार्थ:
लल्ला कहती हैं कि मैं कच्ची रस्सी (साँसों) से अपनी जीवन-रूपी नाव खींच रही हूँ, न जाने प्रभु मुझे कब पार लगायेंगे। मेरी साधना में केवल **'सोहं-सोहं'** (वही मैं हूँ) की गूँज है, और अब मुझे किसी और मंजिल की परवाह नहीं है क्योंकि मैंने स्वयं को जान लिया है।

---

2. 'सोहं' और श्वास साधना पर (Soham Sadhna)

लल द्यद ने श्वास के नियंत्रण (प्राणायाम) को ही असली 'शुभम साधना' माना है:

> **"यमि प्रान रटिथ थवुन, तसुई सोहं जप मुन।
> सोहं सोहं जपते जाय, आत्म ज्ञान सो पावै॥"**

भावार्थ:

2. श्वास और चित्त की एकाग्रता (Breath and Mind)

रूप भवानी ने सिखाया कि मन को वश में करने के लिए श्वासों पर 'सोहं' का पहरा जरूरी है।

> **"हंस-हंस जपन्ते सोहं भाव,**
> **मिट जावे सब जग का चाव॥"**

व्याख्या:
जब साधक 'हंस' (प्राण) के साथ 'सोहं' का जाप करता है, तो संसार की नश्वर इच्छाएँ (चाव) स्वतः समाप्त हो जाती हैं। माता के अनुसार, 'हं' श्वास बाहर छोड़ना है और 'स' (सो) श्वास अंदर लेना है। इसी चक्र में पूरा ब्रह्मांड समाया है।

---

3. 'सोहं' साधना के मुख्य रहस्य (The Secrets of Her Sadhna)

रूप भवानी के 'रहस्यवाणी' ग्रंथों के अनुसार साधना के तीन मुख्य स्तंभ हैं:

- **शून्य अवस्था:** माता कहती थीं कि 'सोहं' का निरंतर अभ्यास साधक को उस 'शून्य' (Void) में ले जाता है जहाँ विचार शांत हो जाते हैं और केवल आत्म-ज्योति शेष रहती है।

रूप भवानी का एक प्रसिद्ध कश्मीरी पद (हिन्दी अनुवाद सहित):

> **"स्व-स्वरूपं जानिथ, सोऽहं रटिथ।**
> **अलक-निरंजन पाविथ, मुक्ति लभिथ॥"**

(अर्थ: अपने वास्तविक स्वरूप को जानकर और 'सोहं' का निरंतर स्मरण करके, उस अलख-निरंजन (परमात्मा) को प्राप्त किया जा सकता है और तभी सच्ची मुक्ति संभव है।)

साधना का निचोड़:

माता रूप भवानी की साधना **'ज्ञान'** और **'योग'** का मिश्रण है। उनके लिए सोहं का अर्थ था— **पूर्ण मौन** में रहकर अपने भीतर की दिव्य ध्वनि को सुनना।

क्या आप माता रूप भवानी और **लल द्यद** की साधना के बीच के **समान अंतर और रहस्यों** के बारे में और अधिक जानना चाहेंगे?

2. साधना के रहस्यों में सूक्ष्म अंतर (Subtle Differences)

हालाँकि दोनों का लक्ष्य एक था, लेकिन उनके बताने के ढंग (अभिव्यक्ति) में थोड़ा अंतर था:

विषय	**लल द्यद (Lalleshwari)**	**माता रूप भवानी (Roop Bhawani)**
अभिव्यक्ति	इनके पद **'वाख'** (Vakhs) कहलाते हैं, जो सरल कश्मीरी में हैं।	इनके पद **'रहस्यवाणी'** कहलाते हैं, जिनमें संस्कृत का प्रभाव अधिक है।
दृष्टिकोण	लल्ला ने 'वैराग्य' और 'तड़प' (विराह) के माध्यम से शिव को पाया।	रूप भवानी ने 'योग' और 'कठोर तपस्या' (Tapasya) पर अधिक बल दिया।
सोहं का प्रयोग	लल्ला 'सोहं' को श्वास की गति के साथ 'लय' (Rhythm) बनाने के लिए उपयोग करती थीं।	रूप भवानी 'सोहं' को 'ब्रह्म-ज्ञान' (Self-Knowledge) के एक वैज्ञानिक सूत्र की तरह देखती थीं।

---

3. साधना के गहरे वाक्य और पद (Deeper Verses)

2. माता रूप भवानी (Roop Bhawani) की रहस्यवाणी

माता रूप भवानी का पद 'चित्त' (Mind) को स्थिर करने के गुप्त भेद बताता है।

> **"सोऽहं शब्दं अनहद नादं,**
> **भ्रूमध्य ज्योति प्रकाशम्।**
> **अहंकारं त्यक्त्वा निर्वाणं,**
> **परम-पदं रूपं भवानी लब्धम्॥"**

योगिक अर्थ (Yogic Meaning):

- **भ्रूमध्य (Third Eye):** माता कहती हैं कि अपनी दृष्टि को दोनों भौहों के बीच (आज्ञा चक्र) एकाग्र करो। वहाँ 'सोहं' की ध्वनि एक अनहद नाद (बिना बजाए संगीत) की तरह सुनाई देगी।
- **अहंकार का त्याग:** जब तक 'मैं' (Ego) है, तब तक निर्वाण संभव नहीं। 'सोहं' का अर्थ ही है 'मैं' को 'वह' (परमात्मा) में विलीन कर देना।
- **भेद:** इस पद में वे **'ज्योति ध्यान'** की बात कर रही हैं, जहाँ शब्द (सोहं) और प्रकाश (ज्योति) एक हो जाते हैं।

1. लल द्यद (Lalleshwari) का योगिक वाख

लल्ला श्वास और मन के मिलन को ही असली योग मानती थीं।

> **"नाभि-स्थानस कय्यम अभ्यास,**
> **कन्ठस मंज़ करयम च़ास।**
> **मूर्ध-स्थानस रठयम प्रान,**
> **तवय मे मिल्यव सोहं ज्ञान॥"**

योगिक अर्थ (Yogic Meaning):

- **नाभि-स्थान (Navel):** लल्ला कहती हैं कि मैंने अपनी साधना 'नाभि' (मणिपुर चक्र) से शुरू की, जहाँ से प्राण ऊर्जा उठती है।
- **कण्ठ (Throat):** फिर उस ऊर्जा को कण्ठ (विशुद्धि चक्र) तक लाई।
- **मूर्ध-स्थान (Crown):** अंत में प्राणों को 'सहस्रार' (मूर्ध) में स्थिर किया।
- **भेद:** जब प्राण ऊर्जा मूलाधार से सहस्रार तक पहुँचती है, तब **'सोहं'** का वास्तविक ज्ञान प्रकट होता है। यह कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया का संकेत है।

प्रान हृदय अपान गुद रहै कंठ उदान सदा[२६०] सुख लहे ।
नाभि समान अरु व्यान सरीर ये पंच वाय[२६१] प्रधान सुधीर ॥८१९ ॥
कूर्म चखि उनमीलन करे नाग वाय उदगारही टरे ।
कृकरा छीक लेहि यों जानो देवदत्त सु जंभाई मानो ॥८२० ॥

दोहा— वाय धनंजय देह मै रहे मृत्यु लो जान ।
जयतराम या वाय करि फूले देह निदान ॥८२१ ॥

चौपाई— दस नाडी करिके यह जीव भ्रमत देहमै रहै सदीव
ज्यों कोउ गेंद करसे पटके उपर नीचे फीर फीर भटके ॥ ८२२ ॥
अैसै नारिन जीव फिरावौ रैन दिना यों रहे भ्रमायो ।
प्रान अपान वसि रहे सदाई उपर नीचै आवै जाई ॥८२३ ॥
बायें दाहने बिचि ले [२६२]जावै इकठा कबहू नाही रहावै ।
जैसे सिकरा डोरी बांध्यौ खेंचौ आवै जहा सु साध्यो ॥८२४ ॥
गुणसो बंध्यौ जीव इमि जान [२६३]अग्यान साथ सो बंध्यउ मान ।
अपान वाय प्रानको खेचै प्रान वाय अपानहि अैचै ॥८२५ ॥
उचै नीचै अैसै लहिये जो जाने सो जोगी कहिये ।
ताकौ यह उपचार सुनाउं जयतराम गुरुकृपा बताऊं ॥८२६ ॥
[२६४]सकार सबद सो बाहर जावै हकार [२६५] सबदसो भीतर आवै ।
सोहं [२६६]सोहं मंत्र सुजान है न दिन इहि जाप सु ठान ॥८२७ ॥
हजार इकीस अरु [२६७]षटसत और जाप जपे यह रैनि सु भोर ।
अजपानाम गायत्री जानों जयतराम गुरुक्रिपासे[२६८] मानो ॥८२८ ॥

दोहा— दस नाडी दस वाय को भिन भिन करि भेद ।
जयतराम वरन्यो सकल लखै सुमेटै खेद ॥८२८ ॥
॥इति नाडीवाय[२६९] वरनन ॥

२६०. व्यान (भां)
२६१. नारि (भां) २
२६२. चंचल (भां)
२६३. रेन दिना भरमें यो मान (भां)
२६४. हकार (भां)
२६५. सकार (भां)
२६६. हंस हंस ये (भां)
२६७. सत छह (ना.)
२६८. गुरुक्रिपासु
२६९. दस नाडी दस पवन को भेद (भां)

सोरठा ॥

यहि विध लीजे दीप तेज राशि विज्ञान भव ॥
जातहि तासु समीप जरहि मदादिक शलभ सब ॥

चौपाई ॥

सोइ मस्मि इति धृति अखण्डा ॥ दीपशिखा सोइ परम प्रचण्डा
आतम अनुभव सुखसुप्रकासा ॥ तवभवमूलभेद भ्रमनासा ३८१
प्रवल अविद्या कर परि वारा ॥ मोह आदि तम मिटे अपारा ॥
तव सोइ बुद्धि पाय उजयारा ॥ उरग्रहवैठी ग्रन्थनिवारा ३८२ ॥
छोरत ग्रन्थि पाव जो कोई ॥ तव यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रन्थि जानि गुरु दाया ॥ विघ्न अनेक टरे तवमाया ३८३

ऋद्धि सिद्धि प्रेरे वहु भाई ॥ चम्पा मन को देइ भ्रमाई ॥
कल वल छल कर जाइ समीपा ॥ चंचल वात वुझावे दीपा ॥
चम्पा यो जन गुरु के प्यारे ॥ इनको मनसेदेइ विसारे [३८४]
इन सिद्धिनमें भ्रमे जो कोई ॥ ताको मोक्ष कभीनाहोई ३८५

अथ अष्ट सिद्धी ॥

दोहा ॥

अणिमम हिमा लघिमा प्राप्ति प्रकासक जान ॥
इशता वाशिता अवसिता अष्ट सिद्धि परमान ॥

चौपाई ॥

जाते देह रूप अणु होई ॥ कितहूं आवरे नहि कोई ॥
अणिमा सिद्धि नाम यह जानो ॥ महां मोहनीमायामानो ३८६

जिसकालमें ध्येयवस्तु के स्वरूपका परित्याग करके और सर्व
 प्रकारके संकल्प विकल्पों से रहित हो करके ध्येय वस्तुके स्वरू
 पसेहि स्थितहोवेहै। तिसको महात्मालोग योगका अष्टम अंग
समाधि कहतेहैं । धारणा ध्यान समाधि रूप योगके अंगहैं ।
पूर्वोक्त यमनियमादि संप्रज्ञात समाधिका अन्तरंग मुख्य साधन
है । अथ अजपागायत्री ॥ यह अजपागायत्री योगी जनोंको
मोक्ष दाताहै । हकार से यह श्वास वाहिर निर्गमन करताहै ।
सकार से फेर अभ्यन्तर प्रवेश करताहै । इस प्रकार हंस हंस
का सदाहि जीव जप करे । सो जब गुरु मुखद्वारा विधि पूर्व
क जाननेसे सुषुम्णानाडी से हंस हंस उलटानेसे हंसो हं जब

होवेहै । इसका नाम अजपा मंत्रहोवेहै । सो अष्ट पहरमें एक
 विंशति सहस्र और छे सौ२१६००हंस मंत्रका जप नित्यं प्रति
 सब प्राणी करतेहैं जानता कोई नहि ॥ एकाग्र चित्तहो करके
हंस मंत्रका एक कोटि जप करनेसे दश विध नादका अनुभव
होवेगा । चिंचणी ॥ १ घंटानाद २ शंखनाद ३ तंत्रीनाद ४
तालनाद ५ वेणुनाद ६ मृदंगनाद ७ भेरीनाद ८ मेघनाद
९ नव प्रकार के नादका परि त्याग कर ब्रह्मकी प्राप्ति का
साधन जो दशम मेघनाद तिसका अभ्यासकरे । अथ दशमुद्रा
महामुद्रा १ महाबंध २ महावेध ३ खेचरी ४ उडियान ५ मूल
बंध ६ जालन्धर वन्ध ७ विपरीत करणी ८ वज्रोली ९ शक्ति

चौपाई ॥

सब नाडी में सुषमन एक ॥ अष्ट कुंभक मे केवल एक ॥
खेचरी समान मुद्रानाहीं ॥ केवल कुंभसम कुंभक जांहीं ६४ ॥

यूंलय योग में कहिये नाद ॥ धुनि में विसरे आपा वाद ॥
मंत्रयोग में एक रंकार ॥ जानों सोहं ज्ञान को सार ॥ ६५ ॥

ब्रहम चरित ब्रत को गहे ॥ निस दिन आत्मा ध्यानमें रहे ॥
मन ते इस्त्री संग मटावे ॥ ऐसे द्वादश वर्ष गवावे ॥ ६६ ॥

सिद्धासन सों बैठा रहे ॥ मन पवनां को गाढा गहे ॥
सूर्यंके घर पथ भोजन करे ॥ चन्द्र सूर्य्य जल पीबो करे ६७

चौपाई ॥

योगि साधे अल्प अहरा ॥ निस दिन राखे तत्व विचारा ॥
श्रवण न सुने न वके वहु भाई ॥ दुर्जन संग करे ना काई ६८
देही मंजन करे सिंगारा ॥ जाते उपजे ज्ञान बिचारा ॥
एकाकी रहे निराशा ॥ शरीर जीत गहे विश्वासा ॥ ६९ ॥
अति उत्साह धरे मन मांहीं ॥ आशा तृष्णा व्यापे नाहीं ॥
योग पंथ मे निश्चा राखे ॥ धीर्य गहे कल्पना नाशे ॥ ७० ॥

जैजै साधुन के सुखदाई। चरणदास तुम्हरी शरणाई ॥
आरति आदि पुरुषकी कीजे। साधौअगमअपारअचलमनदीजै ॥
अद्भुत आरती ॐ कारा। त्रिदेवा होय जगत पसारा ॥
पहिले मच्छरूप हरि धारो। वेदलाय शंखासुर मारो ॥
रई मन्द्राचल बासुकि नेती। चौदहरतन मथन दधि सेती ॥
रूप बराह धारि हरि धाये। हिरण्याक्षहि हनि धरतीलाये ॥
खम्भ फारि हिरणाकुश मारो। नरसिंहह्वै प्रहलाद उबारो ॥
बामनह्वै करि बलि छलि लीन्हे। तीनि लोक तीनों डगकीन्हे ॥
परशुराम ह्वै शरतर धारे। क्षत्री सबै निकछ करि डारे ॥
रामरूप रावण दलमलिया। लंकाराज बिभीषण मिलिया ॥
कृष्णरूप ह्वै कंस पछारो। दर्शनदे ब्रज सकल उधारो ॥
बोधरूप अचरज गति तेरी। कौतुक देखि थकी बुधि मेरी ॥
निष्कलंकै निर्लिप्त निरासा। संभल सुरतलियो जहाँबासा ॥
हरि हैं एकरूप बहुधारे। निराकार आकार नियारे ॥
दश अवतार आरती गाऊँ। निरभै होय अभैपद पाऊं ॥
चरणदास शुकदेव बतायो। निरगुणहरिसरगुणह्वै आयो ॥
आरति रमता राम कि कीजे। अन्तर्द्धान निरखि सुखलीजै ॥
चेतन चौकी सतको आसन। मगनरूप तकिया धरि दीजै ॥
सोहंथाल खैंचि मन धरिया। सुरतिनिरतदोउबाती बरिया ॥
योगयुगति सूं आरतिसाजी। अनहद घंट आपसूं बाजी ॥
सुमति सांझकी बिरियाआई। पांचपचीसमिलि आरतिगाई ॥
चरणदास शुकदेव को चेरो। घटघट दर्शै साहब मेरो ॥
आरति करत हँसै मनमेरो। वार पार कछु दिखै न तेरो ॥

अमर अडोल निरीच्छन भेखा । त्रिगुण रहत रूप नहिं रेखा ॥
चेतन आनँद नित निराधारा । निराकार निर्लिप्त निराशा ॥
निराकार आकार बिवरजाति । निरगुण अरुसरगुणतेरीगति ॥
हाथ पाँव अरु शीश घनेरे । कैसे आरती करूं प्रभु मेरे ॥
सोहं बाती घीव अखण्डा । एकहि ज्योति बलै ब्रह्मण्डा ॥
तुही थाल तुहि आरति साजैं । तुहि घंटा तुहि झांझरिबाजै ॥
चरणदास शुकदेव लखायो । सुरति थकी पै पार न पायो ॥
गगन मँडल में आरति कीजै । उत्तम सौंज सकल सजिलीजै ॥
सुखमन अमृत कुम्भ धरावै । मनसा मालिनि फूल चढ़ावै ॥
घीव अखण्डा सोहंबाती । त्रिकुटी ज्योति बलै दिनराती ॥
पवन साधना थाल करीजै । तामें चौमुख मन धारदीजै ॥
रबिशशि हाथगहो तिहिमाहीं । खिन दहिनो खिन बायें लाई ॥
सहसकमऊ सिंहासन राजैं । अनहदझालरि नितही बाजैं ॥
इहिबिधि आरति सांचीसेवा । परम पुरुष देवन को देवा ॥
चरणदास शुकदेव बतावैं । ऐसी आरति पार लगावैं ॥
ऐसें आरति करि हुलसावै । दै परिक्रमा शीश नवावै ॥
तनकोथालअरुमनको चौमुख । ज्ञान ध्यान की बाती लावै ॥
भक्तिभावको घी भरि तामें जगमग जगमग ज्योति जगावै ॥
अर्ध ऊर्ध हितसूं करि फेरै रचना रचै ल बर्षावै ॥
सुरति मृदंग अरु निरति तँबूरा झेंगड़ झेंगड़ झांझ बजावै ॥
ताल बीण मुरचंग शंखध्वनि प्रेम मगन ह्वै हरिगुण गावै ॥
सोरन कलशा जलको राखै धूपरु अगर सुगन्धि धरावै ॥
या बिधि सों शुकदेव श्यामकी गाय आरतीको फलपावै ॥
युगलकिशोर निरखि नैननसों चरणदासि सखिबलि बलिजावै ॥

दोउ खड़े गावैं हँसैं री अरीहेली अरु डारे गलवाहिं ॥
मोर मुकुट माथे दिपैरी अरी हेली सुन्दर नैन विशाल ।
पीताम्बर पट सोहनो कर मुरली उरमाल ॥
वाके विराजैं चन्द्रिकारीअरीहेली लीलवसन जरतार ।
नखशिख भूषण सोहने अरु फूलनके हार ॥
गुरु शुकदेव बताइयारी अरीहेलीजवहमलिये पिछान ।
चरणदासी तिनकी भई लगोरहै वहि ध्यान ॥

अथ सन्त शूरका अंग ॥

दो० सन्त समान न शूरिमा, कहैं रणजीत विचार ।
टेक गहैं सम्मुख चलैं, बांधि प्रेम हथियार ॥

राग सोरठ ॥

सन्त समान नहीं कोई शूरा ।
मोह सहित सब सेना मारी ऐसो साँवत पूरा ॥
क्षमा कि ढाल गही कर अपने बांधे सत तरवारा ।
कर्म भर्म के दलको पेलै पल पल वारंवारा ॥
सुरत को तीर हृदय को तरकस ध्यान कमान बनावै ।
प्रेमहाथ सूं खैंचनलागे चोट निशाने लावै ॥
बुद्धि विवेक कटारी बांधै वचन विलास की बरछी ॥
सतपुरुषों के हियरे बेधै कहि कहि बतियां तिरछी ॥
चितमें चाव चौगुनो उनके सुन सुन अनहद तूरा ।
अगम पंथसों पग न डिगावै होयजाय चकचूरा ॥
मन हुलास आसधर पीकी सुन्न खेत में धावैं ।
चरणदास शुकदेव कहतहैं अमर लोक पद पावैं ॥

राग सोरठ वा आसावरी ॥

साधू पैज गहै सोइ शूरा ।

मतवारे ज्यों शब्द समायो अन्तर भीज कनी ।
भर्म्म कर्म्म के बन्धन छूटैं दुबिधा बिपति हनी ॥
आपा बिसरि जक्त को बिसरो कितरहिं पांच जनी ।
लोक भोग सुधि रही न कोई भूलो ज्ञान गुनी ॥
हो तहाँ लीन चरणहिंदासा कहैं शुकदेव मुनी ।
ऐसो ध्यान भाग्य सों पइये चढ़ि रहै शिखर अनी ॥

राग बिलावल ॥

घट में खेलि ले मन खेला ।
सकल पदारथ घटही माहीं हरिसों होय जुमेला ॥
घट में देवल घट में जाती घट में तीरथ सारे ।
वेगहि आव उलटि घटमाहीं बीतैं परबीन्हारे ॥
घट में मानसरोवर सू भर मोती और मराला ।
घट में ऊंचा ध्यान शब्द का सोहं सोहं माला ॥
घट में बिन सूरज उजियारा राति दिना नहिं सूझै ।
अमृत भोजन भोग लगंत है बिरलाजन कोइ बूझै ॥
घठ में पापी घट में धर्म्मी घट में तपसी योगी ।
गुण अवगुण सब घटही माहीं घटमें वैद्य अरु रोगी ॥
रामभक्ति घटही में उपजै घट में प्रेम प्रकासा ।
शुकदेव कहैं चौथापद घट में पहुँचै चरणहिंदासा ॥

राग बिलास ॥

घट में तीरथ क्यों न नहावो ।
इतउंत डोलो पथिक बनेही भरमि भरमि क्यों जन्म गवांवो ॥
गोमती कर्म सुकारथ कीजै अधरम मैल छुटावो ।
शील सरोवर हितकरि न्हइये काम अग्निकी तपनि बुझावो ॥
रेवा सोई क्षमा को जानौ तामें गोता लीजै ।

जैसे कछुवा सिमिटिकै, आपहि माहिं समाय ।
तैसे ज्ञानी श्वासमें, रहै सुरति लवलाय ॥
सबघट रमो सो राम है, आदि पुरुष निर्गम्य ।
लखचौरासी योनिमें, एक समानो सम्य ॥
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, रूप न देखो जाय ।
बिन सूरति बिननामको, घट घट रहो समाय ॥

छप्पय ॥

इच्छा दुइकर दूर आप तू ब्रह्म ह्वै जावै ।
और सो द्वितिया कौन तासुको शीश नवावै ॥
माला तिलक बनाय पूर्व अरु पश्चिम दौरा ।
नाभि कमल कस्तूरि हिरण जंगल भो बौरा ॥
चरणदास लखि दृष्टि भरि एक शब्द भरपूरहै ।
निरखि परखिले निकटहीं कहन सुननकोदूरहै ॥
झूठी सी यह दृष्टि जगत सब झूठो दरशै ।
मूरुख जानै सत्य तासुसों फिर फिर परशै ॥
चंद सूर थिर नहीं नहीं थिर पौन न पानी ।
त्रैदेवा[1] थिर नहीं नहीं थिर मायारानी ॥
नवनाथचौरासीसिद्धजोचरणदास थिर ना रहै ।
ब्रह्म सत्य सर्वज्ञहै आत्म विचार क्यों ना गहै ॥
दो० जो मुख सेती बोलिये, अरु सुनियत है कान ।
जो आंखिन सों देखिये, सबही माया जान ॥
एकै सबतन रमि रह्यो, चेतन जड़के माहिं ।
मायादर्शत है सभी, ब्रह्म लखतहै नाहिं ॥
जैसे तिलमें तेलहै, फूल मध्य ज्यों बास ।

[1] ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥

भर्मभूल सांची लगै, समझै सांच न होय ॥
सोने को गहनो गढ़ै, कहन सुननको दोय।
गहनो ना सोनो सबै, नेक जुदो नहिं होय ॥
झूठ सांच दो नावहै, झूठ मिटै इक सांच।
नाम मिटै सूरत मिटै, भूषण को लग आंच ॥
जाको माया कहतहैं, सो तू नेक निकास।
जैसे हींग कपूरकी, नेक जुदी कर बास ॥
जल समान तो ब्रह्महै, माया लहर समान।
लहर सबै वह नीरहै, लहर कहै अज्ञान ॥
खेल खिलौना खांड़के, कीजै लाख पचास।
सकल खिलौना खांड़है, ऐसे गहि विश्वास ॥
चरणदास खिलौना खांड़के, भाजन राखे खांड़।
बिन विनशेभी खांड़है, विनशिजाय तौ खांड़ ॥
माटी के भांड़े भवैं, सूरति अरु बहुनाम।
बिगसिफूटि माटी भई, बासन कहुकेहि ठाम ॥
ऐसेहो माया नहीं, समझि देखु मनमाहिं।
जो दीखै सो ब्रह्महै, रंचक माया नाहिं ॥
इच्छा मेटै दुइ तजै, एकै मन विश्राम।
ब्रह्मज्ञान विज्ञान है, समझ परमपद धाम ॥

सवैया ॥

श्वास उसास चलै जप आपहि है जु अखण्ड टरै नहिं टारो।
भीतर वाहर है भरिपूर सों ढूंढ़ौं कहां नहिं नाहिंन न्यारो ॥
चरणदास कहैं गुरुभेद दियो भ्रम दूरि भयो जुहुतो अतिभारो।
दृष्टि अदृष्टि जु रामको देखत राम भयो पुनि देखनहारो ॥
दो० आप आपमें आपहै, खेलौ बहु विस्तार।

10. केवली कुंभक :–

केवली 'केवल' शब्द से सम्पादित हुआ है जिसका अर्थ होता है 'सिर्फ'। अर्थात् इसमें कुंभक की कोई सीमित मात्रा नहीं होती है या यूं कहें कि समाधि अवस्था में प्रवेश व समाधि में रहना केवल कुंभक की प्रवीणता को दर्शती है। घेरण्डसंहिता में इसके आध्यात्मिमक पक्ष पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। यथा–

हंकारेण बहिर्याति सःकारेण विशेत्पुनः।
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्त्राण्येकविंशतिः।
अजपां नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।।[1]

———————————————————

1. घे.सं. 5.83.

श्वास निकलने पर 'हं' और प्रविष्ट होने पर 'सं' का इक्कीस हजार छः सौ की संख्या में जप होता है। यह संख्या दिन रात की है। इसे 'हंस' अथवा विलोम से 'सोऽहं' अजपा गायत्री छन्द कहते हैं। हर व्यक्ति परोक्ष रूप में इसे जपता रहता है लेकिन अज्ञानवश वह इसका अनुभव नहीं कर संकता है। मूलाधार, हृदयकमल व नासा पुटों में निरत्तर प्राण का प्रवाह होता रहता है। स्थूल शरीर छियानवे अंगुल परिमाण का है और स्वभाविक बहिर्गत वायु की गति द्वादस अंगुल होती है।

घेरण्डसंहिता का विचार है कि यही गति गायन में सोलह अंगुल, भोजन में बीस अंगुल, मांर्ग चलने मे चौबीस अंगुल, निद्रा में तीस अंगुल, व मैथुन में छत्तीस अंगुल और व्यायाम में और भी अधिक होती है। इस परिमाण का अर्थ यह भी है कि किस प्रकार श्वास द्वारा प्राण में उतार चढ़ाव होता रहता है।

इक्कीस हजार छः सौ की संख्या के जाप को यही समझना चाहिए कि व्यक्ति चौबीस घण्टे में इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेता है। इस गति को शास्त्र अधिक मानता है व इसे कम करने का आदेश देता है।

यावज्जीवो जपेन्मत्रमजपासंख्यकेवलम्।
अद्यावधिधृतं संख्याविभ्रमं केवलीकृते।।
अत एव हि कर्त्तव्या केबलीकुंभको नरैः।
केवली चाजपासंख्या द्विगुणा च मनोन्मनी।।[2]

प्राण की स्वभाविक गति बारह अंगुल है। अगर इसमें न्यूनता आ जाए तो आयु वृद्धि

भक्तिसागर के हंसनाद उपनिषद् में कहा गया है कि अजपा–जाप के अभ्यास से ही सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा जान लेना चाहिए। तब साधक को दिव्य गुणों की खान मिल जाती है व दूसरा कोई ध्यान नहीं रहता–

अजपाही के जापके, सिद्धि भयो जब जान।
पहुँचे या अस्थान ही, रहै न दूजा ज्ञान।।[3]

---

1. भ. सा. 5.124–125.
2. भ. सा. 4.123.
3. वही 8.20 (हंसोपनिषद)

गोरक्षसंहिता में प्राण व अपान वायु को हंसरूप कहा गया है व प्राणायाम रूप हंस वाम और दक्षिण मार्ग से छत्तीस अंगुल बाहर निकलता है इसलिए वायु को ही प्राण कहा गया है। अगर प्राण इससे दूर चला जाए तो उसका लौटना कठिन है। भाव स्पष्ट है प्राण की गति का आधिक्य मृत्यु ही तो है।

षट्त्रिंशदंगुलो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः।
वाम दक्षिणमार्गेण ततः प्राणोऽभिधीयते।।[1]

प्राण को हंस कहना आत्मा को सम्बोधित करता है। जब आत्मा शरीर छोड़ता है तो प्राण को भी शरीर छोड़ना होता है इसी लिए विद्वानों ने प्राण व हंस को एक ही माना है। जाग्रत, सुषुप्ति व तुरीयादि अवस्थाएं प्राण की ही हैं।

हंसोपनिषद् में हंस की आठ प्रकार की वृत्ति होती है। पूर्व दिशा के पत्र पर जब यह रहता है तब मति पुण्य होती है। आग्नेयी दिशा के पत्र पर निद्रा व आलस्य रहता है, दक्षिण दिशा के पत्र पर क्रूर कर्मो में बुद्धि रहती है। नैर्ऋत दिशा के पत्र में पाप कर्म में मन लगता है। पश्चिम दिशा वाले पत्र में क्रीडा में और वायव्य दिशा के पत्र में चलने फिरने को दिल करता है, उत्तर दिशा के पत्र में रति क्रिया में प्रीति होती है। ईशान दिशा के पत्र पर द्रव्य लेने की वृत्ति होती है और जब यह मध्य स्थान में बैठता है तो संसार से वैराग्यभाव उत्पन्न होता है। जब हृदय के कमल केसर पर आसीन होता है तो जाग्रत अवस्था, कर्णिका पर स्वप्नावस्था और जब हृदय कमल छोड़ देता है तो तुरीयावस्था का आभास हो जाता है और नाद में लीन हो जाता है। नीचे के आधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जो नाद होता है, वह शुद्ध स्फटिक के समान परब्रह्म परमात्मा कहलाता है।

6.9. भक्तिसागर के हसोपनिषद् में वर्णित प्राणायाम महत्त्व :–

भक्तिसागर में कहा गया है कि प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है और प्राणायाम से बढ़कर कोई बल नहीं है। इससे प्राणवायु वश में होती है तथा मन की चंचलता समाप्त होकर शान्त होती है।

साचा शिष्य सत सुधरे, तन मन भेंट कर जास ।
मोक्ष निजानन्द फल लहै, साचा करे हुलास ॥ ४ ॥

सतगुरू सा नहिं जगत में, दृश्य माया विलास ।
'लाधूराम' गुरू महरते, आप लख्या अविनाश ॥ ५ ॥

भजन संख्या (११) राग राजेश्वरी हेली पद ।

हेली ए ! स्मरण कर सुख पाविया,
गुरू चरणे चित लाया ॥ टेर ॥

शब्द नगारा ज्ञान का, हरदम संत बजाय ।
साचा जिज्ञासु नित सुने, मन तन भेंट चढाया ॥ १ ॥

ज्ञान ध्यान गति लायके, हरदम साधन पाय ।
पांचूं वश कर पद लहे, परमानन्द अधिकाय ॥ २ ॥

योग गति चीन्ही सभी, प्राणायाम करवाय ।
त्रिकुटी तख्त में सुणत नित, अनहद राग घुराय ॥ ३ ॥

सोहं रति गति ज्ञान की, गुरू कृपा उरलाय ।
गुरू "गणपति" साचा मिला, लाधूराम यश गाय ॥ ४ ॥

स्वास उस्वास सहजकास्मरण, चरण कमल चितलाई हो॥१॥
चेतन होय दशोदिश देखा, निशि दिन कला सुहाई हो।
निरख्या नाथ अलख अविनाशी,
अटल जागीरी थाई हो ॥ २ ॥
अटल पुरूष का मार्ग बंका, दृष्ट मुष्ट नहिं काई हो।
आश्रमवर्णनहिंकोई फन्दा, सहज स्वरूप रहाई हो ॥ ३ ॥
श्याम मनोहर समरथ पाया, क्रिया सर्व विलाई हो।
"लाधूराम" सहज घर पाया,
रमझ लखी घट मांई हो ॥ ४ ॥

भजन संख्या (२३) राग बरहंस ताल धमाल पद।

गुरूजी मैं शरण तुमरे आयो,लेवो वेगशुद्धि सायो ॥टेर॥
अनंत जन्म मैं बहुत दुःख भोग्यो, डरकर शीश नमायो।
दीनानाथ दया कर मोपर, भव से पार पठायो ॥ १ ॥
सतगुरू स्वामी अन्तर्यामी, शब्द प्यालो भर पायो।
अनादी रोग कर्मन को सो, क्षण में मूल मिटायो ॥ २ ॥
संचित कर्म जल्या विरह अग्नि, भ्रांति भेद विलायो।
पुण्य तिव्र संग प्रारब्ध प्रगट्या, देवदीदार दिखायो ॥३॥

ॐ

❀ श्री हरि परमात्मनै नमः ❀

श्री स्वामी लाधूरामजी महाराज के परम शिष्य

साधु खेतारामजी महाराज कृत वाणी प्रारंभ।

भजन संख्या (१) राग कल्याण पद।

आरती ! दीनानाथ की कीजे, जासे पाय परमानन्द पीजे ॥ टेर ॥

मैं हूँ अनाथ अरज सुण लीजे, शब्दसुणाय शांति उर दीजे ॥१॥
कृपा करो मोही दर्शन दीजे, अनन्त जनम का पाप कटीजे ॥२॥
महर मया मय हाथ धरीजे, अवगुण मेरा माफ करीजे ॥३॥
"लाधूराम" सतगुरु परसीजे, खेताराम को मुक्ति चहीजे ॥४॥

भजन संख्या (२) राग कल्याण पद।

आरती ! सतगुरु सन्त समाई, करो कृपा नित आप सुहाई ॥टेर॥

सतगुरू वचन हृदय धरवाई, दर्शण देकर पार पठाई ॥ १ ॥
ज्ञान ध्यान गम गुरू से पाई, शरणे जाय भया सुखदाई ॥ २ ॥
हरदम स्मरण हरि को गाई, स्वासो स्वास निजानंद थाई ॥ ३ ॥
"लाधूराम" गुरू कृपा दाई, खेताराम निज आप अचाई ॥ ४ ॥

भजन संख्या (३) राग नट कल्याण पद संगीत।

मैं हूँ सतगुरु चरण की चेरी, मिट गई मनकी भव सेफेरी ॥ टेर ॥

सकल जगत से वृति तोड़ी, भ्रम ठीकरा निर्भय फोड़ी।
सत गुरु स्वामी दासी तेरी ॥ १ ॥

3. अजपा जाप की विधि:

> *बिन जिभ्या जो जाप है, सोहं सोहं होय।*
> *लादूराम वा घर मिले, विरला बूझे कोय ॥*
> **(अर्थ:** बिना जीभ हिलाए जो सोहं का जाप (अजपा) भीतर चलता है, उसी से उस अविनाशी पद की प्राप्ति होती है, जिसे कोई विरला ही समझ पाता है।)

सोहं साधना पर छंद (मारवाड़ी शैली)

पोखरण के संतों की वाणी में अक्सर इस तरह के छंद गाए जाते हैं:

> **छंद:**
> *काया नगर में देव बिराजे, सोहं शब्द सुनावे रे।*
> *इंगा पिंगला सुखमन नाड़ी, सुरता डोरी लगावे रे ॥*
> *आवत 'सो' और जावत 'हं' है, अजपा जाप जगावे रे।*
> *गणेश राम गुरु चरणों में, सोहं पद समझावे रे ॥*

छंद का भावार्थ:

- **काया नगर:** हमारा शरीर एक नगर है जिसमें स्वयं परमात्मा (देव) विराजमान हैं और सोहं का शब्द सुना रहे हैं।

- **गुरु महिमा अंग:** इसमें गुरु को ईश्वर का मार्ग दिखाने वाला बताया गया है।
- **सुमिरन अंग:** इसमें 'सोहं' और 'राम' नाम जपने की सूक्ष्म विधियों और श्वास साधना का वर्णन है।
- **चेतावनी अंग:** यह अध्याय संसार की नश्वरता के बारे में है, जिसमें संत लादूराम जी के प्रसिद्ध चेतावनी भजन (जैसे- "चेत सको तो चेत ले") शामिल हैं।
- **काया भेद अंग:** इसमें शरीर के भीतर स्थित चक्रों (मूलाधार, आज्ञा चक्र आदि) और 'सोहं' ध्वनि के संचार को समझाया गया है।

साधना का एक विशेष पद (देशी राग में प्रचलित)

> *"सुरता ने बाँधो शब्द सूँ, काया ने करो साफ ।*
> *सोहं-सोहं सुमिरता, मिट जावे सब पाप ॥"*

पोखरण में इन वाणियों का पाठ **'अनुभव प्रकाश'** नामक संकलन के आधार पर किया जाता है।

क्या आप संत लादूराम जी द्वारा रचित किसी **विशिष्ट ग्रंथ** का नाम या उनके **चमत्कारों (पर्चा)** से जुड़ी लोक कथाएँ सुनना चाहेंगे?

विशिष्ट छंद: "सुरता शब्द रो खेल"

यह छंद अक्सर पोखरण के रामद्वारा में **देशी भजन** शैली में गाया जाता है: YouTube +1

छंद:
"धन धन सतगुरु साहिबा, सोहं भेद बताया ।
श्वासा के सुमिरन से म्हारा, जम का फंदा काट्या ॥"

"इड़ा पिंगला छोड़ के, सुखमन घर में जाई ।
अजपा जाप अखंड चले, अनहद गूँज सुनाई ॥"

"लादूराम गुरु ज्ञान सूँ, सोहं साचा जान्या ।
राम नाम रे सुमिरन सूँ, आपा माँही राम पिछान्या ॥"

छंद का भावार्थ:

- **सतगुरु की धन्यता:** गुरु की कृपा से ही 'सोहं' का रहस्य समझ आया और मृत्यु (जम) का भय समाप्त हुआ।
- **योगिक क्रिया:** इड़ा और पिंगला नाड़ियों को संतुलित कर जब ध्यान सुषुम्ना (सुखमन) में जाता है, तब भीतर अखंड ध्वनि (अनहद) सुनाई देती है।
- **स्व-पहचान:** संत लादूराम जी कहते हैं कि गुरु के ज्ञान से ही यह सत्य जाना कि अपने भीतर का 'आपा' ही वास्तव में राम है।

3. भीतर के राम पर:

> *"सोहं सोहं सब कहे, सोहं को जाने न कोय ।*
> *जब सोहं से सुरता मिले, तब राम नाम फल होय ॥"*
> (अर्थ: सोहं शब्द तो सब बोलते हैं, लेकिन इसके मर्म को कम ही लोग जानते हैं। जब हमारी चेतना (सुरता) इस शब्द में विलीन हो जाती है, तभी राम नाम का असली फल मिलता है।)

विशेष छंद: "अजपा की महिमा" (पोखरण शैली)

यह छंद रामद्वारा में विशेष 'देशी ढाळ' (लय) में गाया जाता है:

> **छंद:**
> *"अजपा जाप जपो रे भाई, जिभ्या हालण नाहीं ।*
> *बिना बजाया बाजा बाजे, थारे घट के माँही ॥"*
>
> *"सोहं शब्द री माला फेरो, कर की माला छोड़ो ।*
> *बाहर की सब आशा तज के, अंतर सूँ मन जोड़ो ॥"*
>
> *"लादूराम कहवे सुण भाई, यो ही मारग साचो ।*
> *राम नाम बिन जग अंधियारो, सगलो खेल ही काचो ॥"*

- **सत्य मार्ग:** संत लादूराम जी कहते हैं कि यही सच्चा मार्ग है। राम नाम के बिना यह पूरी दुनिया अंधकारमय है और सारा संसार एक कच्चे खेल जैसा है।

साधना के गुप्त संकेत (साखियाँ)

पोखरण के संत अपनी वाणी में अक्सर यह भी कहते थे:

> *"सोहं की रेणी गहे, सो ही साधु सुजाण ।*
> *पाँचों इन्द्री वश करे, सो पावे पद निर्वाण ॥"*

मुख्य उपदेश:

- **रेणी (आचरण):** केवल शब्द बोलना काफी नहीं, सोहं के भाव को अपने आचरण (रेणी) में उतारना ज़रूरी है।
- **इंद्रिय निग्रह:** सोहं साधना तभी फल देती है जब साधक अपनी पाँचों इंद्रियों पर नियंत्रण रखे।

क्या आप इन वाणियों का **मारवाड़ी से हिंदी सरलार्थ** विस्तार में समझना चाहते हैं, या इनके **गायन का तरीका (लय)** जानना चाहेंगे?

2. अजपा जाप और श्वास साधना (Breath Yoga)

पोखरण के संतों की साधना का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा 'श्वास' है।

- **प्राण-अपान का संतुलन:** श्वास के आने (सो) और जाने (हं) की क्रिया को नियंत्रित कर उसे सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित करना।
- **दोहा:**

> *"षट चक्र की कोठड़ी, जूँ जूँ सुरता जाय ।*
> *तूँ तूँ सोहं शब्द का, ताला खुलता जाय ॥"*
> *(जैसे-जैसे ध्यान छह चक्रों से ऊपर बढ़ता है, सोहं साधना के माध्यम से मोक्ष के द्वार खुलते जाते हैं।)*

3. त्रिकुटी ध्यान (Third Eye Meditation)

साधना के दौरान दोनों भौहों के मध्य (त्रिकुटी या आज्ञा चक्र) पर ध्यान एकाग्र करने की शिक्षा दी जाती है।

- इसे **'गगन मण्डल'** की साधना भी कहा गया है, जहाँ साधक को दिव्य प्रकाश के दर्शन होते हैं।

5. अनहद नाद (Mystic Sound)

योग साधना की परिपक्व अवस्था में साधक को भीतर दस प्रकार के नाद (ध्वनियाँ) सुनाई देते हैं, जैसे शंख, घंटा या वीणा की आवाज। पोखरण के संतों के भजनों में इन ध्वनियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

एक विशिष्ट योग पद (छंद)

> *"पिण्ड ब्रह्माण्ड की सन्धि मिलै, जहाँ जोत अखंड जगावे ।*
> *पाँचों तत्व को वश में कर, मन सोहं में मिल जावे ॥*
> *नाड़ी बहत्तर शोध कर, सुखमन मारग पावे ।*
> *पोखरण रा संत कहे, यो ही जुगत मुक्ति दिलावे ॥"*

क्या आप इन योग क्रियाओं के 'षट चक्र' (6 Chakras) के मारवाड़ी नामों और उनके प्रभावों के बारे में विस्तार से जानना चाहेंगे?

4. 'सुरता' की मुद्रा (The Final Connection)

संत गणेश राम जी महाराज अक्सर कहते थे कि असली मुद्रा शरीर की नहीं, **'चित्त'** की है:

> *"आसन मारे क्या भया, जो मन की मुद्रा नाहिं ।*
> *सुरता बाँधो शब्द सूँ, राम विराजे माहिं ॥"*

(अर्थ: केवल शरीर से आसन लगाने से कुछ नहीं होगा जब तक मन स्थिर न हो। अपने ध्यान (सुरता) को सोहं शब्द से बांध लो, तभी भीतर राम मिलेंगे।)

साधना का अभ्यास सूत्र:

- **स्थिरता:** कम से कम 45 मिनट एक ही आसन में बैठने का अभ्यास।
- **मौन:** वाणी का संयम (मौन व्रत) साधना में बहुत सहायक माना जाता है।

क्या आप इन मुद्राओं के साथ होने वाले **'आंतरिक प्रकाश'** या **'दिव्य दर्शन'** के अनुभवों के बारे में जानना चाहेंगे, जिनका वर्णन इन संतों ने अपनी वाणियों में किया है?

07:16

AI Mode All Images Videos News Maps Shopp

"गगन मण्डल में सोहं गूँजे, अनहद की झणकार ।
खेताराम गुरु कृपा सूँ, खुल गया मोक्ष का द्वार ॥"
(अर्थ: जब मस्तिष्क के उच्च केंद्र (गगन मण्डल) में सोहं की ध्वनि गूँजती है, तो गुरु की कृपा से मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं।)

विशेष छंद: "सोहं पद निर्वाण"

यह छंद राजस्थानी आध्यात्मिक शैलियों में संत खेताराम जी की महिमा में गाया जाता है:

छंद:
"सोहं सोहं जाप जपो रे, यह जुगत मुक्ति री भारी ।
श्वास-प्रश्वास में ब्रह्म विराजे, देखौ नज़र उघारी ॥"

"इड़ा पिंगला सुखमन साधी, त्रिकुटी ध्यान लगाया ।
खेताराम गुरु ज्ञान की जोति, घट में ब्रह्म दिखाया ॥"

"अजपा जाप अखंडित चाले, मन भयो शीतल शांत ।
सोहं शब्द सूँ कट गई सगली, जन्म मरण री भ्रांत ॥"

Ask anything

3. गुरु और शब्द का मेल:

> *"सतगुरु शब्द सुनाइया, सोहं पद की सार ।*
> *खेताराम भवसिन्धु सूँ, हो गयो बेड़ा पार ॥"*
> (अर्थ: जब सतगुरु ने सोहं पद का सार समझाया, तब खेताराम जी कहते हैं कि इस संसार रूपी सागर से बेड़ा पार हो गया।)

विशेष छंद: "ब्रह्म ज्ञान रो प्रकाश"

यह छंद आसोतरा और मारवाड़ के सत्संगों में बड़े चाव से गाया जाता है:

> **छंद:**
> *"धन्य-धन्य वो सतगुरु देवा, सोहं मंत्र बताया रे ।*
> *भटका खावे जग अंधियारे, मारग साचो दिखाया रे ॥"*
>
> *"नाभि कमल सूँ सुरता जागी, गगन मण्डल में आई रे ।*
> *सोहं शब्द री अखंड ज्योति, घट के माँही दिखाई रे ॥"*
>
> *"खेताराम कहे सुण भाई साधु, यो ही ब्रह्म रो ज्ञान ।*
> *आपा माँही आपा चीन्हो, पावो पद निर्वाण ॥"*

> *"बिन गुरु दीक्षा मुक्ति नहीं, भटकत फिरे जहान ।*
> *खेताराम गुरु शरण में, पायो पद निर्वाण ॥"*

4. वर्तमान उत्तराधिकारी (Legacy)

खेताराम जी ने ब्रह्मलीन होने से पहले अपनी आध्यात्मिक शक्ति और गद्दी अपने प्रिय शिष्य **संत तुलछाराम जी महाराज** को सौंपी। आज तुलछाराम जी महाराज आसोतरा (ब्रह्मधाम) से खेताराम जी के बताए 'सोहं' मार्ग और सेवा कार्यों को आगे बढ़ा रहे हैं।

साधना का एक विशेष पद:

> *"गुरु चरणन में शीश झुकाओ, सोहं शब्द को मन में लाओ ।*
> *खेताराम कहे मुक्ति पायो, फेर न जग में वापस आयो ॥"*

क्या आप **संत तुलछाराम जी** द्वारा संचालित वर्तमान **ब्रह्मधाम** की गतिविधियों या खेताराम जी के **'पर्चा' (चमत्कारों)** के बारे में जानना चाहेंगे?

रागमंगल ।

प्यारी ये सतगुरू शब्द पिछाण ॥ ढील मत लाइये ॥
यह निश्चय उरधार ॥ कर्म कट जाइये ॥ १ ॥
सतगुरू शब्द अगाध ॥ गाध नहिं आइये ॥
नित चेतन सुखरूप ॥ गुरू परसाइये ॥ २ ॥
निश्चल अति अडोल ॥ अपरमें थाइये ॥
सबमे रह अखेल ॥ सदा निरदाइये ॥ ३ ॥
सब सन्ता कह्या अपार ॥ वेद यूं गाइये ॥
लख्या जिनीकूं ठाय ॥ कह्या नहिं जाइये ॥ ४ ॥
बनानाथ गुरू देव ॥ विगत समझाइये ॥
उमाराम लीवी जाण ॥ भर्म नहिं काइये ॥ ५॥१४ ॥

राग कानडा ।

आद्र राय जोगका योई॥अगम अरु निगम साख कह दोई॥ टेर॥
सतगुरू मोपर कृपा कीजे ॥ पारब्रह्मकी सोजी दीजे ॥
भूला बहुत जुगनका प्यासा ॥ दया करे पूरो गुरू आशा॥१ ॥
सतगुरू दया करी अब ऐसी ॥ शब्द साधना कहिंहै जैसी ॥
सोहं शब्द दिया तत सारा ॥ सो निश्चै हम उरमें धारा ॥२॥
ज्यामे सुरत धरी एक सारा ॥ हरदम सास उस्वास संभारा ॥
मन पवनाका बेला बाधा ॥अरध उरध जुगती कर साधा॥३॥
द्वादश खोज सरोधे लाया ॥ इडा पिंगला दोनूं धाया ॥
चन्द सूर एकण घर लाया ॥ सुषमणके घर हंस मिलाया ॥४॥

सोहं शब्द दिया तत् सारा ॥ सो निश्चै हम उरमें धारा ॥२॥
ज्यामे सुरत धरी एक सारा ॥ हरदम सास उस्वास संभारा ॥
मन पवनाका बेला बाधा ॥अरध उरध जुगती कर साधा॥३॥
द्वादश खोज सरोधे लाया ॥ इडा पिंगला दोनूं धाया ॥
चन्द सूर एकण घर लाया ॥ सुषमणके घर हंस मिलाया ॥४॥

'सोहं' का अर्थ।

सोऽहं शब्द जो है, इसकी अध्यात्मी लोग रटना करते हैं। 'सः' जो परमात्मा, 'ऽहं' वही मैं हूं। इस कथनसे परमात्माका अभेद-रूप ध्यान करके परमात्मा होता है, क्योंकि हकार करके भीतरको घुसा, और सकार करके समा गया। इस रीतिसे इस 'सोऽहं' शब्दकी महिमा अध्यात्मी लोग गाते हैं, शास्त्रोंमें इसको बताते हैं, इसके ध्यानसे

परमात्मपद पाते हैं, हकारको सकार में लय करनेसे, समाधि मे समाते हैं।

'राम' शब्दका अर्थ।

यह शब्द क्रीडार्थक 'रमु' धातुसे सिद्ध होता है। इसका अर्थ यह है कि 'रमते इति' 'रामः' आत्मामें रमण करता है, उसीकानाम राम है। इसलिये जो अपनी आत्मामें रमेगा, वह पापोंसे छूटकर परमात्मा हो जायगा। इस रमणरूपी रामसे ही वाल्मीकि आदि अनेक मुनिजन आत्मामें रमण कर परमपदको प्राप्त हुए। अनेकोंने राम२ गाया, उसी स्वरूपमें रटना लगाया, और सबको छटकाया, अपने स्वरूप में लय लाया, वोही मोक्षपद पाया, जैसा इस राम शब्दका अर्थ था, वैसा हमने पाठकगणको दिखाया। इस राम शब्दके अन्तर्गत 'रम्' शब्द भी है, परन्तु इसकी प्रसिद्धि कम है, प्रत्येक मनुष्य नहीं जानता।

'हंस' शब्दका अर्थ।

गोरक्षपद्धतिके प्रथम शतकके ४३ वें श्लोकमें जीव इस मन्त्रका प्रतिदिन स्वतः ही दिनभरमें २१६०० जाप करता है। और ४४ वें ४५ वे श्लोक तक इसकी ऐसी महिमा लिखी है कि मोक्षके देनेवाला यह ही अजपा गायत्री है। वे तीनों श्लोक यहां पर उद्धृत कराता हूं:—

षट्शतानि त्वहोरात्रे, सहस्राण्येकविंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा ॥४३॥
अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥
अनया सदृशी विद्या, अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥४५॥

इनका अर्थ तो सुस्पष्ट है, अथवा इसकी छपी हुई पुस्तकमें देखो। अन्तर्गत समेत इन पांचका वर्णन किञ्चित् दिखाया।

अब कबीर पन्थियोंके घरके 'कोऽहं' शब्दका भी भावार्थ कहते हैं। 'को' कहता कौन हूं 'हं' कहना मैं; ऐसा अर्थ इसका होता है।

४–आशावरी ताल दीपचन्दी समय १० बजे दिन

अब तुम! रणुंकार रट भाई।
श्वास उश्वास खाली मत खोवो, सतगुरु सैन बताई।।टेक।।
मात पिता बन्धु सुत नारी, मोह जाल अलुझाई।
इन को देख भूलियो गाफिल, पड़ेगा ऊँडी खाई।।१।।
ये सब तेरे जन्म के वैरी, खिण रहे ऊँडी खाई।
अपनो स्वार्थ ले धक्का देवे, फिर ना ऊँचो आई।।२।।
लख चौरासी छूटा चाहे तो, इन को दे छिटकाई।
अन्त समय में कोई नहीं तेरो, फिर अकेलो जाई।।३।।

भजन (१०२) राग लूर सारंग अथवा सोरठ अथवा आशावरी

अब मोहि सतगुरु की गम आई।
डूबत होय भवसागर मांही, निज स्वरूप लखाई।।टेक।।
अनन्त युगों के सूते जीव को, कानों में टेर सुनाई।
सुनतां टेर जिजक के[१] जागा, मोह की नींद उड़ाई।।१।।
जाग के देखा कुटुम्ब कुल नाहीं, घर परिवार न पाई।
पिण्ड ब्रह्माण्ड जगत नहीं पाया, स्वप्न के चित्र विलाई।।२।।
अपना आप आप को पाया, सुरत शब्द घर आई।
अक्षय स्वरूप निजानन्द थाया, सोहम् नाद बजाई।।३।।
सोहम् आदि अनादि सांई, विधि निषेध न कोई।
"अचलराम" गुरु की गम लखिया, निजानन्द पद सोई।।४।।

भजन (१६४) राग भैरवी कव्वाली ताल दादरा

भृकुटी[1] महल में स्वयं ज्योति ब्रह्म, योगी जन दर्शन पावे॥ टेक॥
योग अभ्यास करे निशि वासर, देश एकान्त रहावे॥१॥
मन वच काय पवित्र होकर, आसन पद्म जमावे॥२॥
प्राणायाम परायण होके, कुण्डलनी शक्ति जगावे॥३॥
अजपा गायत्री जपे श्वासा संग, सुन्न में धुन्न लगावे॥४॥
मन पवना को उलट अफूटा, सुरति गगन ठहरावे॥५॥
बंकनाल की घाटी होकर, सोवन शिखर चढ जावे॥६॥

---

१. ज्योतिर्लिंग ध्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत्सदा यति॥ इति श्रुति

इन को मार चढ्या गढ[1] माहीं, निर्भय नगर बसाया रे।
सोहं शिखर जाय डंका दीना, अपना ही हुकम चलाया रे॥३॥
अपना हुकम दिया नगरी में, चारूं दिवान बुलाया रे।
मन बुद्धि अरु चित्त अहंकार को, सोहं हुक्म सुनाया रे॥४॥
सोहं आप तज्या सब आपा, दूजा हुक्म उठाया रे।
गुरु कृपा यम से युद्ध जीता, अमर पट्टा ले आया रे॥५॥
गुरु "सुखराम" मिला महा योधा, आदू किला दिराया रे।
"अचलराम" बसे किल्ले में, फतेह[2] हुई गढ पाया रे॥६॥

सर्वे वृत्ति[२] गोपी बुद्धि राधिका, साक्षी कृष्ण कन्हैया री।
स्वयं प्रकाश संधि में खेले, नटवर नाच नचैया री॥२॥
बिन बाजंत्री पखावत बाजे, टूंटा ताल मिलाया री।
पग विन निरत करे वृज नारी, बिन मुख वंशी बजाया री॥३॥
सोहं स्वर वंशी बजाई मोहन, सखियों मन लुभाया री।
ब्रह्माकार भई एक धारा, आपा द्वैत भुलाया री॥४॥
विषयानन्द आनन्द सब भूली, अजर अमर वर पाया री।
प्रीतम संग अंग रंग राची, अद्वय प्रेम रिझाया री॥५॥
गोपियां संग असंग मुरारी, रमे अचरज मोहि आया री।
निर्विकार निर्लेप निरंतर, साक्षी रूप निर्माया री॥६॥
ऐसी रासलीला होय घट में, पूरा गुरु मोहि बताया री।

भजन (२१६) राग रामकली अथवा सोहनी

सोहं शिखर घर मेरा साधो, सोहं शिखर घर मेरा रे।।टेक।।
जहां घर चन्द सूर नहीं पहुँचे, नहीं प्रकाश अंधेरा रे।
ता घर दिवस रैन नहीं होवे, नहीं वहां सांझ सवेरा रे।।१।।
प्रकृति पुरुष नहीं निज घर में, चौबीस तत्त्व नहीं चेरा रे।
उत्पत्ति प्रलय वहां नहीं होवे, नहिं जहां जगत विखेरा रे।।२।।
सो घर मेरा आदि घराना, हिरण्यगर्भ का भी बडेरा रे।
सारी कुदरत चले जिस घर से, जिस घर मेरा डेरा रे।।३।।
ता घर पहुँचे मृत्यु नहीं होवे, बहुरि न दे जग फेरा रे।
"अचलराम" परम धाम है सोई, गीता वचन उचेरा रे।।४।।

भजन (२५२) राग झंझोटी झूलना अथवा परज ठुमरी

सतगुरु! दीवी मोक्ष निशानी।
माया प्रचण्ड खण्ड करि डारी, सोहं सत पिछानी ॥टेक॥
सोहं ज्ञान दिया मेरे सतगुरु, अद्वैत ब्रह्म लखानी।
लख्या अभेद भेद नहीं रंचक, माया मूल मिटानी ॥१॥
माया अतीत माया नहीं जहां पे, रहता आप अबानी।
माया बान वहां नहीं पहुँचे, अखण्ड स्वयं प्रमानी ॥२॥

षट्चक्र को छेदके, पहुँचा दशमे द्वार।
बहुरि जन्म आवे नहीं॥ टेक॥
योग युक्ति लेकर चला, सतगुरु के प्रताप।
मन पवन को उलट कर, जपा अजपा जाप॥१॥
षट् चक्र इम छेदिया, कर साधन प्राणायाम।
पूरक कुम्भक रेचक किया, निश दिन हो निष्काम॥२॥
इडा पिंगला पलटिया, होई सुषुम्न इकसार।
भृकुटि महल चढ देखिया, जागी ज्योति अपार॥३॥
दशवें जाय डेरा किया, मिट गया सभी अन्धकार।
सुन में जाय समाया जहां, जीव शीव एकसार॥४॥
गुरु "सुखराम" पूरा मिला, पायो सोहं शिखर स्थान।
"अचलराम" जिस में रहे, वो है पद निर्वान॥५॥

(60) भजन

होज्या होज्या रे मन निर्मल, भक्ति साहेब की करले।
भक्ति साहेब की करले, हृदय राम नाम धर ले ।।टेर।
दस धर्माड्ग धारण करले, अवगुणों से डरले।
काम क्रोध मद लोभ मोह को, वश कर पकरले ।।1।
भक्ति मुक्ति कार्य करके, तिजूर को भरले।
बगुला खाज छोड़ हंस बन, मोतियों को चुगले ।।2।
शत्रु मित्र एक समान कर, यह जरणा जरले।
समभाव ही ब्रह्मतत्व है, कभी न होवे परले ।।3।
सतगुरु है मुक्ति के दाता, चरणों में पसर ले।
तोलूराम गुरु कृपा से, जीवंत ही मरले ।।4।

1. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह।
धी विंद्या सत्यम्क्रोधो दसकं धर्म लक्षणम् ।। मनुस्मृति ।।

(61) भजन राग-आसावरी

साधो भाई समझो वचन हमारा।
कनिष्ठ, मध्यम, अधम नहीं समझे, समझे उत्तम-अधिकारा ।।टेर।
सत, असत दो वस्तु जग में, इसमें झूठ न लिगारा।
सत को पकड़ त्याग असत को, फिर होवो भवपारा ।।1।
जो दिखे सो प्रपंच जग में, माया, अविद्या दारा।
बाजीगर ने खेल रचायो, लम्बा किया पसारा ।।2।
सोहं, श्वांसा बीज बिन्दु कहिए, साकार सकल अवतारा ।।
चौथा साहब श्याम जुदा है उनको कहे निराकारा ।।3।
त्रिलोकी जहां त्रिगुण कहिए, निर्गुण नाम निराधारा।

तुं देख साहेब के खाता ने ।।3 ।।
नशे बाजी नशा में राजी, भांग सुलफा में पड़े न कांजी।
मन्दिरों में गावे रागनी भरांजी, नहीं सत्संग का नेम है, भूल्यो ईश्वर दाता ने ।।4 ।।
मनवो तो माया में दोड़े, कपट कमावे, पुंजी जोड़े।
अपनी चाढ़े पराई फोड़े, ज्याने यम नरकां ले ज्यावसी, धर्मराज रोके न आता ने ।।5 ।।
चोर करे चोरी की आशा, परधन हरके लावे खासा।
धणी पहुंचे जब घाले फांसा कहे तोलूराम देखो चोर नें, जाय सम्भालो हो लाता ने ।।6 ।।

(79) भजन राग-चौपाई

अष्ट पंखड़ी कमल का विस्तारा, अब मैं बताऊ तुझको सारा।
जिस-जिस पंखड़ी पर मन जाता। वैसा ही व्यवहार रचाता ।। टेर ।।
पूरब दिशा पंखड़ी पर जावे। मनवो अति ही पुण्य करावे ।।
अग्नि पंखड़ी पर मन जावे। निद्रा और आलस्य आवे ।। 1 ।।
दक्षिण दिशा पर मन करे दौरा। उपजे हियें क्रोध कठोरा।
नैऋत्य कौण की करे तैयारी । शीघ्र मन पाप की विचारी ।।2 ।।
पश्चिम दिशा में मनवो जोई। अति आनन्द प्राप्त होई ।।
वायव्य कौण के मन आ गया घाटा। जब होवे मन के घबराटा। ।3 ।।
उत्तर दिशा की पंखड़ी पर मन जावे। मैथून करन की इच्छा उपावे ।।
ईशान कौण पर करिया वासा। धन भण्डारी कुबेर प्रकाशा ।।4 ।।
मन की लहरां प्रकट कर प्रकाशी। सुखरामदास गुरु मिला उदासी ।।
तोलूराम मीतासर वासी। ईशान कोण में समाधि लगासी ।।5 ।।

(80) भजन राग-धमाल

जीवन मुक्ति पाई रे, शरीर सहित ही गुरुजी बताई रे, मुक्ति पाई रे ।। टेर ।।
विक्षेप शक्ति वाला अज्ञान लेश, लेशाविद्या छाई रे।

टाबर टीकर जपाय के, ब्यावला घर जावे ॥
कहे तोलूदास जू नाचे सारी रात।
त्रिया तिग्रह नित रखे, अवगुण गारी जात ॥

2. छः हजार श्वांसा ब्रह्मा बल से, छः हजार विष्णु लिराय।
छः हजार शिव शंकर बल से, हजार सतगुरु सिराय ॥
हजार सतगुरु सिराय, पारब्रह्म से हजार एक।
छः सौ श्वांसा गणेश बल से, तोलू करो विवेक ॥
तोलू करो विवेक, जीवात्म सहस्र पूराय।
छः हजार श्वांसा ब्रह्मा बल से, छःहजार विष्णु लिराय ॥

3. कभी न हरि को याद कियो, कभी न करियो दान।
कभी न बैठ्यो साध संगत में, कभी न सुनियो ज्ञान ॥
कभी न सुनियो ज्ञान बीत गया सब श्वांसा।
आगे आदर करे कौन, जब लगे भूख पियासा ॥
कहे सन्त तोलूदास, यम खिंचेला कान।
कभी न हरि को याद कियो, कभी न करियो दान ॥

4. श्वांसो श्वांस की सुमरण है, तोलूदास ले साज।
पिछे घणा दिन बीत गया, शुभ दिन उग्यो आज ॥
शुभ दिन उग्यो आज, मनुष्य जन्म मिल्यो अमोल।
जग चर्चा विसार दे, राम नाम मुख बोल ॥
राम नाम मुख बोल, घट पात्र को मांज।
श्वांसो श्वांस की सुमरण है, तोलूदास ले साज ॥

5. भजन कियां भय भागसी, धर्म कियां धन पाय।
भक्ति करयां भगवंत मिले, सतगुरु मोक्ष मिलाय ॥
सतगुरु मोक्ष मिलाय, सुणलो नत्थाराम।
सुकृत कियां सुख मिले, पावे अमरापुर धाम ॥

14:51

(26) भजन राग-आसावरी

साधो भाई ऐसी सत्संग साजी।
संत की संगत से सोजी होई, सैन सुणाई गुरां ताजी॥ टेर॥
बिना रकम एक वीण खरीदी, झिणी-झिणी आवाजी।
ओम सोहं का लाया पैरवां, दसवें जाके बाजी॥1॥

इडा-पिंगला मारा फुंकारा, जाय गगन घर गाजी।
पीव सुषुमणा एक भया जब, मनवो होयो राजी॥2॥
पाँच पचीसु करके एकता, निकल गये सब भाजी।
ज्ञानी-महात्मा सैन बतावे, ये विधि कहता काजी॥3॥
तोलूदास मिल्या गुरु पूरा, दिनी भक्ति माजी।
ज्ञान प्रकाश भया म्हारे उर में, अब सुखी नथाजी॥4॥

(27) भजन राग-आसावरी

होरी सत मान ले मौरी।
मोह मलेच्छ त्याग परेरी, जब होवेली सोरी॥ टेर॥
श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, नासिका जोरी।
मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंखुरी, त्याग तत्व यह नो री॥1॥
काम, क्रोध, लोभ संग लागी, यह रह्या तन खो री।
तेरे पति ने आप भूल गई, जब तुम भव भटको री॥2॥
रिपु-दल को पीठ देकर, सुखी होज्या गौरी।
भज सेवायाम धातु से भक्ति अर्थ, सोहं मणी का पोरी॥3॥
तोलूदास गुरु कृपा करके, भरदी विद्या की बोरी।
नथुराम अब जोर जुग-जुग पाणि शांति पा ले होरी॥4॥

(28) भजन राग-जोगिया

सतगुरु शब्द दीनों, मैं चौकस होकर लीनों।
अब सुधरयो है जीनों सा, सुखी आठो पौर॥1॥
खूब लगी है आशा, भूलुं नहीं श्वांस उश्वांसा।
मेरे घट में भया प्रकाशा रे, मिट्यो अंधारो घोर॥2॥
गुरु पारखी नग परखाया, मेरा तन मन भेंट कराया।
मेरे उर में आनन्द छाया रे, मैं मान्यो हो और॥3॥
श्री सुखरामदासजी सागर, तोलूदास गुरु गागर।
दरस्या नटवर नागर रे, नत्थु पीवे जल कोर॥4॥

(31) भजन राग-आसवरी

घोड़ी म्हारी सदर रास्ते बगरी।
विवेक वैराग्य कसणा कसके, आसक्ति तज दी जगरी॥ टेर॥
धीरे-धीरे मस्ती से चाले, खोज मंडे नहीं मगरी।
नुगरों नरों से नहीं ढ़बेली, वृत्ति घोड़ी पगरी॥1॥
इस घोड़ी पर वही नर चढ़सी, जाने घोड़ी की रगरी।
कायर सवार बहुत से पटके, लुच्चा लफंगा ठगरी॥2॥
गमन हुई जब से ठीक गति चाले, बगे मोक्ष की डगरी।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति छेकी, तुरिया समीप लगरी॥3॥
तोलूदास गुरु मिला ब्रह्मवेता, बात बताई सगरी।
नत्थुराम सवार है पक्का, जा घाली ब्रह्मनगरी॥4॥

(32) भजन राग-हरियाणा

रूम-रूम में रम रहा, मेरे घट-घट वासी रे।
पल-पल दर्शन पाऊं, गया तिमर नाशी रे॥ टेर॥
एक क्षण होवे नहीं न्यारो, रहे इकरासी रे।

नाभ कमल से चलो सुन्डाला, सुखमण कुंची फोर।
अणम ज्ञान अगम से बरसे, ज्यूं सावण का लोर।।
रिद्ध-सिद्ध नारी आज्ञाकारी, दियो भण्डारा टोर।
तीन लोक में तुमसे मोटा, ना कोई दिखे और।।
गरीबनाथ जी सतगुरु मिलिया, सब सन्ता को जोर।
चिमननाथ गजानन्द ध्यावें, बैठा दुब्धा खोर।।

✿ वाणी ✿

ओ गणेश मानो साधो, घर में बसे निरालो रे-
शिव शंकर को पूत बली, गोरा जी को निर्मल बालो रे- टेर

मूल महल बसिवान कहीजे, गिगन उसी को चालो रे।
आतम पकड़ गिगन में, संग तैतीसूं जालो रे।।1।।
इला पिगंला हाजर दासी, सुखमण हो मतवालो रे।
खेंची डोर लोर गरणाया, ईन्द बरसालो रे।।2।।
सुरत शब्द को होद, गिगन सिमरन भरवालो रे।
नि कलंक करो शरीर, साध सब मल-मल नहालो रे।।3।।
जम से छुटी ज्यान, काल से दे गयो टालो रे।
गुरू मिल गया गरीबनाथ, हाथ में सुमरन भालो रे।।4।।
चिमननाथ चरणों में लोटे, संता को बालो रे।
श्वास शब्द ने कुड़ करे, ज्याने काल खालो रे।।5।।

✿ वाणी ✿

नित उठ मैं तुम्हें याद करुं तुम बहुत दिनों से आये - टेर

पाँच सात सखियां मिले, रोज तुम्हें याद करती,
आज काल परसूं करके, आपस में विवाद करती,
आज आवे काल आवे, चरणों सामें शीश धरती।
हंस-हंस के आनन्द मदारती, गुरु आये जी गुरु आये ।।1।।

गुरु के निमित काया, भेट दूंगी धन माया,
भाग मोटा सतगुरु आया, सूते जीव को आन जगाया,
शब्द का प्याला पाया, करदी सुखी निर्मल काया।
दुब्धा को दूर हटाय दी, घट आत्म देव बताये ।।2।।

गुरू की बताई करले, श्वास में विश्वास धरले,
नौऊँ द्वार बंद करले, दसवें माही अजर जर ले,
भाल में परख करले, दिष्ट में अडिष्ट धरले।
अन ईच्छा अन रूप है, जग कारन रूप धराये ।।3।।

गरीबनाथ गुरू देव आये, बालद भर के मोक्ष लाये,
देस-देस फेरी फिरीया, कहीं ना विश्राम पाये,
नुगरों की देख सभा, जोगी के मन शोक छाये,
चिमनानाथ शिष्य भरपूर है, चिमना सागर बोद बनाये।।4।।

15:01

✿ वाणी ✿

गुरु मोहे किया याद भारी

कोटी जुग पिछड़े ने हो गया, अब लिन्या तारी – टेर

याद किया अलबेली जागी, थाँ सरणे म्हारी,

लागी लगन मगन भई सुरता हो आज्ञाकारी।।1।।

लागी रमज, समजझ के माहिं, हटी नींद दारी।

कलह कल्पना दुरयत दुतिया, हाथ जोड़ जारी।।2।।

काम क्रोध कुब्ध सब छुटी, निर्मल देह म्हारी।

कर कृपा अविनाशी परसा, नित हो सुखकारी।।3।।

गरीबनाथ गुरू देव मिल्ला, पकड़ भूजा म्हारी।

चिमनानाथ तिरा भव सागर, निकलंक अवतारी।।4।।

✿ वाणी ✿

सत गुरु श्याम राम से मोटा,

बिन सतगुरु मर जाता जी,

शब्द दियो मेरे सतगुरू सामर्थ रोम-रोम रम जाता जी – टेर

चढ़ ज्या शब्द गीगन गरणायां, रिम-झिम राम सुनाता जी।

ईला पिंगला करे आरती, सुखमणा श्याम मिलाता जी।।1।।

गुरु गम ज्ञान गुप्त में दिया, बिन मार्ग चढ़ जाता जी।

बंकनाल की डगरी चढ़िया, सब कारज सर जाता जी।।2।।

अमर किया मरण सब मेटा, फेर जलम नहीं पाता जी।

जिसको सतगुरु सार्मथ मिलग्या, वो ही अमर फल खाता जी।।3।।

गरीबनाथ गुरु सार्मथ मिलिया, विष अमृत कर पाता जी।

चिमनानाथ चरणों में लोटे, सन्ता के मन भाता जी।।4।।

15:03

हाँ जी कोई डांडी में रखता काण।।4।।

सत को कांटो ऐ सहियो सतगुरु दे चला जी,

हाँ जी कोई रति न चाले बाण।।5।।

साँसाँ को सौदो ऐ सहियो सतगुरु दे गया जी,

हाँ जी कोई बोलो दिन और रात।।6।।

सांसां को सोदो वो सतगुरु कठे मिले जी,

हाँ जी कोई कुण खरीदण ने जाय।।7।।

सांसां को सोदो ऐ सहियो घर में मिले जी,

हाँ कोई समझ खरीदण जाय।।8।।

आवण-जावण वो सतगुरु राय किसा जी,

हाँ कोई कुण पुगावण जाय।।9।।

ईला पिंगला ऐ सहियो राह पड़ा जी,

हाँ कोई बंकनाल चढ़ गया।।10।।

नभ तृगच्चाँ ऐ सहियो प्रीतम बसे जी,

हाँ जी कोई सुरत मिली जब जाय।।11।।

सुरती शब्द ऐ सहियो भेला हुआ जी,

हाँ कोई दुब्धा गई है विलाय।।12।।

अखे मण्डल ए सहियो ऊँचो घणों जी,

हाँ जी कोई लिन्ही सेज बिछाय।।13।।

निर्भय चंवर ऐ सहियो ढुल रयो जी,

हाँ कोई सोवे निर्भय जाय।।14।।

आन जान को ऐ सहियो दुःख नहीं जी,

हाँ जी कोई ना बैठ श्वांस शरीर ।।15।।

गरीबनाथ गुरु जी मिल्या ऐ सहियो, मिल्या आप निराकार?

चिमनानाथ निर्भय किया ऐ सहियो सब सन्ता मन भार।

दसवें ऊपर सैल करी, सेहजा काम सरजी,
हाल हुक्म कछु नहीं चाले, ना रिश्वत गरजी।।3।।
गरीबनाथ बड़ भागी मिलिया, शिष्य सुरो नर जी,
चिमनानाथ सन्तों की कृपा, लियो सागी घर जी।।4।।

✿ वाणी ✿

सतगुरु आज संगत मोहे त्यारे,
कर कृपा गुरु मुख सब मिलिया, मैं शरणे कीर तुम्हारे – टेर

आन ब्रह्म की कथा सुनाई, जीव भाव गुरु टारे,
दे उपदेश शब्द गत दिन्ही, मैं सतगुरू लारे।।1।।
दिन और रैन धनाधन लाग्या, शब्द सुखमणा जारे,
अरा ऊरद निसते कर ज्याणा, ईला पिंगला इक सारे।।2।।
श्रवण नैन खूब बन्द किन्हीं, जीभ खूब खंचंकारे,
शनै-शनै श्वासं चलत है, तृकुटी तम भारे।।3।।
सोहनी शिखर में जोत जगत है, सत्य वचन गुरां रे,
चिमनानाथ अटल धुन म्यांही, देख्यां आरब भारे।।4।।

पांचू पकड़ पचीसूं निर्गुण शब्द सुनाना रे।।2।।

ईला-पिंगला साज सुखमणा, श्याम मिलाना रे,

अब छल आसन लाय, प्रीतमा पास बुलाना रे।।3।।

संगत शब्द का होद, साध सब मल-मल नहाया रे,

नहा लिया चिमनानाथ बिना जिम्या जस गाना रे।।4।।

✿ वाणी ✿

गवरी पुत्र गनेश का नित ध्यान धरे बड़ भागी - टेर

गवरी पुत्र गनेश को मैं नित उठ ध्याता हूँ।

सुन मुख दर्शन कर मुक्ति को पाता हूँ,

गनेश को मनाये बिना, अन नहीं खाता हूँ,

तुम सुण्डाला नाथ जी, मोहे आन मिले हो सागी।।1।।

गनेश कहे मुझे रोज मनावे, तो मैं उन घर आता हूँ,

अन्न-धन लक्ष्मी सम्पति ले के, रिद्ध-सिद्ध को भिजवाता हूँ।

नित उठ आनन्द मंगल गावे शोक नहीं दर्शाता हूँ,

जो सुण्डाला ध्याय सी, ज्यारी भगती पूर्वली जागी।।2।।

काया में गनेश कैसे, आपको दर्शाऊँ गा,

आपान में सामान लेके, प्राण में मिलाऊँ गा।

बयान से उदान तक, शीश मैं चढ़ाऊँ गा।

सब रणुकार में रूप है, आत्म मैं डोरी लागी।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मेरे, नित उठ शिश निवाऊँ गा,

ज्ञानी-धानी सन्त सुजानी, सत्संग में सुख पाऊँगा।

बाद विवाद कछु नहीं करता, तुरन्त मौन कर जाऊँगा,

चिमनानाथ की नित सुरत सतसंग के म्यांही लागी।।4।।

✿ वाणी ✿

सुर ताल सुरसती मात का, दंगल में कृपा किजिये - टेर

दंगल-मंगल मात जाऊँ, कर जीभ्या पे वास तेरा,

रोज मिति ध्यान धरके, करूंगा अभ्यास तेरा,

ज्ञान-ध्यान मान मेरा, करूंगा दंगल में गैहरा।

सुर दे हमे माता सरस्वती, ज्यों अमृत प्याला पिजे।।1।।

ज्ञानी-धानी संत सुजानी, चारु वेद और चारुं बानी,

सरस्वती का ध्यान धरके, पा लिया है पंथ निर्वानी,

भाई-बाई बहन सुन लो, काया के कल्याण जानी।

पुन भजन करो ईकसार तुम पुनः किये बिना दुःख नहीं छिजे।।2

गुरु अर्पण काया चरणों में शीश दिजै,

अवछल आसन की कुन्ची, सतगुरू से तुरन्त लिजे,

नौऊँ द्वार बंद करके, दसवें में सैल किजे

उल्टी पवन पल्टाय के, निर्भय सैल करीजे।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मेरे जुग-जुग मैं गुण गाऊंगा,

श्वास-श्वास और पल-पल सतगुरू आपका दर्शन पाऊंगा।

जाति नायक नैम करूंगा, ना कोई और बताऊंगा,

चिमनानाथ सुरस्ती ध्याय के फिर उनमें कथन करीजे।।4।।

✿ वाणी ✿

नाथ की आ गीन्डी भारी

गोरख नाथ कबीर खेलग्या, सब सन्ता धारी – टेर

लाधुनाथ जागिया जोगी, बाँ गीन्डी धारी,
चार कूण्ट में खेल रचायो, घर-घर में डारी।।1।।
गुरू गम गीण्ड मण्डी जण लाग्यो, सुखमण डोर सारी,
इला पिगला एक बणा कर, ज्ञान गेड मारी।।2।।
धरा गिगन का पांणा राख्या, धूम-धाम भारी,
बंकनाल में टोरा लागे, शब्द चोट प्यारी।।3।।
गरीबनाथ जी सतगुरू मिलिया, दड़ी शिखर जारी,
चिमनानाथ खेलियां गीन्डी, कबु नहीं हारी।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई ऐसा ज्ञान सुनाया

जीभ होठ का ज्ञान सन्ता के, कबुहै न प्रश्न आया – टेर

ऐसा ज्ञान करो मेरे अवधू, नाभी शब्द उठाया,
इला, पिगला निरत करत है, सुखमण सेज बुलाया।।1।।
सुन की सैरी सन्ता खोली, अरा उरद उल्टाया,
सोहनी शिखर में घुरे नगारा, चढ़ जोगी सुन पाया।।2।।
बेगम नगर बावड़ी कहिये, वहाँ मोटे अमृत पाया,
भोन्दूं लोग भरम गढ़ चढ़ग्या, सन्ता देश दिखाया।।3।।
बेगम देश देख हर्षाऊँ, ऊपर शहर बसाया,
गुरु चरण में हुआ दीवाना, जन्म-मरण मिटाया।।4।।
गरीबनाथ मोहे सतगुरु मिलिया, ऐसा देश दिखाया,
चिमनानाथ रमूँ उण घर में, मुड़ जल्म नहीं आया।।5।।

20:21

✿ वाणी ✿

प्रीत प्रीतम से लागी है

ईला-पिगला बीच सुखमणा, नार जग्गी है - टेर

लगनी दासी सागे लेली, कर्ता लागी है,

जितनी नार कुब्ध कर खोती, सब शुद्ध होगी है।।1।।

✿ वाणी ✿

ज्ञान गुलाल उड़े घर म्हारे, आया सन्त निराकारी जी,

नगर भदावो हो सतसंग रो, आय सुनो नर नारी जी - टेर

बुढ़ा, बाला, नर और नारी, जति-सति नर नारी जी,

जा सन्ता का दर्शन पावो, होज्यावो भव जल पारी जी।।1।।

गुरु मुख शब्द मान सन्ता का, संत मोक्ष अचिकारी जी,

जल्म-मरण दुःख सांसो मैटे, करदे मुक्ति तुम्हारी जी।।2।।

आसन एकान्त जमाकर बैठो, मून्द कान की बारी जी,

खेचों श्वास शिखर में चाढ़ो, शब्द सुरत के लारे जी।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरु मेरे, शीश चरण दिया डारी जी,

चिमनानाथ ने मार्ग बताओ, नहीं त्यागी घर वारी जी।।4।।

Lock Horizontal Eye Protect Bookmarks Listen

✿ वाणी ✿

साधो भाई ऊपर की दर्शाऊँ

मण्डीया मण्डप काल की पुजा, नहीं मण्डप में आऊँ - टे

धन आकाश लोक नहीं दरसे, पर बिना पक्षी उड़ाऊँ,
इला, पिगला राम सुखमणा, ना कोई बंक चढ़ाऊँ।।1।।
ओम सोम की माला छोड़ी, ना कोई जाप जपाऊँ,
तिृगटी, भृगुटी, ध्यान धरूना, ना दसवें जस गाऊँ।।2।।
देह नहीं अधे विधे नहीं मानूँ, ना कोई आऊँ जाऊँ,
रंग रूप रणुकार बिना, उन घर मैं रमण रमाऊँ।।3।।
अब के बकूँ लखूँ के आगे, देखी सो दर्शाऊँ,
चिमनानाथ लहर की बांता, लहरी के मन भाऊँ।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई जब हम भेख सझाया

निराकार निरजाम निर्देही, अनलख लखत लखाया - टेर

ना कोई जपूं नहीं दरसे, तेर मेर नहीं काया,
हल्का बोझ सोज नहीं लागे, अखण्ड परे थिर थाया।।1।।
अचर छतर छवि नहीं दरसे, छिपा ना दर्शन पाया,
निराकार ऊँकार कछु नहीं, मिल्या पतंगाँ मायाँ।।2।।

साधो भाई अब निर्मल तन किना

काम क्रोध मिटा कर सारा, श्वासं शिखर मैं दीना - टेर

खेंचूं श्वांस नाम से सारा, जीभ तालवे दिना,
कान किया बन्द नेत्र उल्टा, तृिकुटी तप किना।।1।।
इला-पिंगला दो सुर चाले, एक सुखमना किना,
जे कोई चले जोग के मार्ग, प्रगट हेला दीना।।2।।
संन्सों साज घुरे दिन-राती, राग किया मुख बिना,
बिना नैण ज्योति हम निरखी, जब निस्ते कर लीना।।3।।
गरीबनाथ जी सतगुरू मिलिया, अमर पटा लिख दीना,
चिमनानाथ अखे अविनाशी, नहीं मरना नहीं जीना।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई मैं कुकर्म का त्यागी

कुकर्म करूं रहूँ नित न्यारो, ऐसी पूरबली जागी - टेर

गुरु गम गति मति का मोटा, गुरु कर्ता का पागी,
करोड़ो कर्म छिपे पल भर मैं, सुरत शब्द में लागी।।1।।
सांसों श्वास श्वास पलटावे, साख करोड़ो लागी,
कोटि सन्त चढ़या इन मार्ग, इल-पिगला थागी।।2।।
सुखमणा साज सही सत माने, जै सुखमणा घर लागी,
आसा तृष्णा दुब्धा कल्पना, हट गी नारी नागी।।3।।
गरीबनाथ जी सतगुरु मिलिया, बै जोगी बड़ भागी,
चिमनानाथ लख्या बा सैरी नहीं गृहस्थी नहीं त्यागी।।4।।

सन्तों गत से राम रिझाया,

अवगत सैन रटी दिन-राति, जब हम सन्त पद पाया - टेर

महरम माला आद अनादी, मन मिणका ठहराया,

कुकर्म धुप हवन कर दिन्या, भुर्ती शंख बजाया।।1।।

तन मन्दिर में ओंवग, मूर्ति, खेच शिखर में लाया,

सांसा सालगराम सकल में, सोवंग दर्शन पाया।।2।।

आदी कंर्ता प्रणायाम की, अनभे खोज लगाया,

हद में काल पकड़ बन्द किया, बेहद आप रहाया।।3।।

अमर नाथ से जाकर मिलिया, ना मरने में आया,

नाम रूप तो है नहीं मेरे, ना कोई काया-माया।।4।।

गरीबनाथ जी सतगुरु मिलिया, हे सुर्गुण दर्शाया,

चिमनानाथ सन्तों के शरणे, उत्तर प्रश्न गाया।।5।।

✿ वाणी ✿

प्रेमी लोगो गत प्रखण से न्यारी,

झूठी परख करे गत हिणी, नहीं मिलता किरतारी - टेर

गुरू गम गति मति दृड़ राखे, गुरु ने शिश निवारी,

निर्गुण डोर फोर जुगती से, श्वांस-श्वांस निराकारी।।1।।

निर्गुण डोर नाम से चाल, जीभ तालवे हेरी,

ईला-पिंगला एक बना के, सुखमण झोटा लेरी।।2।।

श्रवण बन्द उलट नैत्र नै, तृिगटी पंथ परिवारी,

झिल-मिल जोत निगे कर निरखी, सोहनी शिखर घड़मारी।।3।।

गरीबनाथ गुरु मोहे पढ़ाया, जद छुटी बकवारी,

चिमनानाथ बंकूँ नहीं फेरूं, मौन रहूं मन मारी।।4।।

✿ वाणी ✿

गुरु गम लख्याँ सरे मन मेरा-मेरा

सोहँ श्ब्द सार जुगती से, जब निज काम सरे - टेर

तज आलस अभिमान बड़ाई, दुरमत दूर परे,

पन्थ-मत एक बना जुगती से, जब जम चोट टरे।।1।।

सहने-सहने नाभ कंवल से गिनना भरत भरे,

ईला-पिंगला एक हुवे, जब सुखमण बंक सरे।।2।।

तरबीणी तपस्या का आसन, जे कोई तप करे,

देखत जोत मौत डर भागे, फिर ना जन्म मरे।।3।।

संसों साज बजे उण घर में, सून-सून कैल करे,

नूरत-सुरत कहने में आगी, पिये संग रमण करे।।4।।

सतगुरु देव शिष्य सुर ज्ञानी, गुरु चरणां शीश धरे,

चिमनानाथ लख्या उण घर ने, गुप्त भण्डार भरे।।5।।

✿ वाणी ✿

सन्तो भाई निज मन जोड़ लिया,

आत्म का निरवाल किया, जग से मुख मोड़ लिया - टेर

काम क्रोध कल्पना डोरी, झटके तोड़ दिया,

काल मौत नेड़ा नहीं आवे, जम का सिर फोड़ दिया।।1।।

श्वांसां खेंच शिखर में चढ़ग्या, सून में दौड़ लिया,

धरा असमान मण्डत चिन्ह नाहीं, सब ओड़ किया।।2।।

सुन-धुन मिटी, मिटया सब आरम, ना मुझे बोड़ किया,

अधर छतर छयाँनि नहीं चोड़े, अमर लोक लिया।।3।।

सब सन्तो के शरणे ल्याग्यो, गुरू गम ज्ञान लिया,

गरिबनाथ जी सतगुरु मिलिया, ज्यूँ इन्द्र गोड़ किया।।4।।

कृप्या करी गुरू देव, मेरे को शब्दा चोट दिया,

चिमनानाथ की कर बिन माला, मत कोई झोड़ किया।।5।।

✿ वाणी ✿

हंसला निरगुण नीर पिलाया,

सत संग में सत प्याला फिरीया, बड़े भाग से पाया – टे

फिर–फिर तीर्थ करो घणेरा, ना मुक्ति पाया,

घर मैं गंगा गोड़ करत है, धोवो पाप सदाया।।1।।

भेद बिना ई जुग बित्या, अब मोहे अवसर आया,

आहंग, सोहंग का चले हिण्डोला, सुखमन वृक्ष की छाया।।2

शिखर महल में सीसा भलके, सुरता पिलंग बिछाया,

केवल श्याम करत कर पूग्या, समझां सहज बताया।।3।।

गरीबनाथ के चरणां लोटूं, तन मैं तुर भजाया,

चिमनानाथ समझ कर साची, अलख नाथ दरसाया।।4।

✿ वाणी ✿

मना तूं ऐसी सैल करी,

सत्य धर्म का हेला मारी, पाप दूर परी – टेर

सतसंग साबुन साच को पारो, सतसंग निर धरी,

धोले दाग राख मत बाकी, करदे मैल परी।।1।।

धुपज्या पाप पवित्र होज्या, लागी लग्न खरी,

राजा रामचन्द्र सा तिरिया, निचा कुल सिंवरी।।2।।

सोहनी शिखर में सेज हमारी, सतगुरु मिलिया लूंठठाँ,
बिन मार्ग बिना पंथ दवेला, चढ़सी अजर अदुठा।।3।।
गरीबनाथ गुरु पुरा मिलिया, बिन बादल झड़ बूठा,
चिमनानाथ कहे भाई साधो, लगे ना मन्तर-मुठठा।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई मैं ध्याई जूँ कहयाँ,
बार-बार अधीन गुरु के, शरण सन्ता की रेस्याँ - टेर

अवछल आसन लाय जुगत से, पांच पचीसूँ तस्याँ,
सांसम श्वास चढ़ो शिखर में, लो मैं लो धर देस्याँ।।1।।
इला-पिगला एक बराबर, राह सुखमणा लेस्याँ,
चढ़ तरबीणी सब जुग निरख्या, दसवें तागो तस्याँ।।2।।
दसवें आगे अखे द्वारा, उण नगरी में रहस्याँ,
अमरनाथ की लाख दुहाई, कुड़ कबु नहीं कस्याँ।।3।।
गरीबनाथ गुरु सत का साखी, गुरु चरणों में रहस्याँ,
चिमनानाथ भजन कर हरि का, राम-राम रट लेस्याँ।।4।।

20:28

✿ वाणी ✿

साधु साचा सिमरन करे,

नाभि लोर उठा है गहरा, गिगना झड़ी करे - टेर

शब्द घटा तो घट मैं बरसे, आन्धा दूर करे,

गुरु का प्यारा अमृत पीवे, नुगरा प्यास मरे।।1।।

गीगना गाज हुई बेपारा, अनहद नाद घुरे,

संसो साज बाजीया मिलके, बिजली चमक करे।।2।।

इला-पिगला दो पणिहारी, सुखमणा होद भरे,

जिनको सतगुरु पुरा मिल गया, बै नित मौज करे।।3।।

गरीबनाथ गुरु मोटा स्वामी, सहज्या मुक्त करे,

चिमनानाथ जात का नायक, हरि संग हेत करे।।4।।

✿ वाणी ✿

सुख पावेगा-सुख पावेगा

गुरु शरण गयाँ सुख पावेगा - टेर

तज आलस अभिमान बड़ाई, जो सतसंग में जावेगा,

गुरु मुख शब्द लगे हिरदे मैं, जम जाल्म भग जावेगा।।1।।

समझ हुई जब सेज समाधि, सोहंग शब्द उठावेगा,

मुनू नैण कान की बारी, जीभ तालवे लावेगा।।2।।

इला-पिगला मार मचोला, सुखमण हीन्ड चढ़ावेगा,

सुरत कामणी चढ़ी भरत पर, जब प्रीतम दर्शावेगा।।3।।

त्रिकुटी में तार लगायो, नुरती बंटन दबावेगा,

दसवां द्वार खुला सब आरंभ, संस जैस जगजावेगा।।4।।

अधर छतर धरणी नहीं गिगना, वहाँ संत जाप समावेगा,

अनभे अक्षर मते लिखिजे, सागी ठोड बतावेगा।।5।।

वहाँ पुगयां न्यारा नहीं भेला, मुड़ जन्म नहीं आवेगा,

अविनाशी कभी नास हुवे ना, रंग रूप नहीं लावेगा।।6।।

गरीबनाथ गुरु लहर समुन्द्र की लहरी-लहर मिलावेगा,

चिमनानाथ रमज सन्ता की, बड़ भागी नर पावेगा।।7।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई घट सारन का सारा,
समझो साचा सार बताऊं, देही ने पवन पसारा - टेर

सब पवना का खेल जगत में, देखो अन्दर बाहरा,
बिन पवना कोई काम सरे ना, झूठा हा-हा कारा।।1।।

प्रथम पवना मूल कवंल ऊवंग-सोहंग दो धारा,
इला-पिंगला एक बणाके, सुखमणा सार पियारा।।2।।

बंकनाल होय जोगी चढ़ग्या, दीन्ही चोट नगारा,

त्रिगटी महल में जोत झिलमिल, जैसे आग अंगारां।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मिलग्या, कर दिया भवजल पारा,
चिमनानाथ अखे सुन पुग्या, ना बठे देव द्वारा।।4।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई अब मैं मस्त भया,
अखे सुन मैं आरभ देख्या, जैसा ही आन कया - टेर

ना वहाँ पवन ना वहाँ श्वांसा, ना कोई शब्द रया,
आन-जान का श्वांसां मिटज्या, दु:ख-सुख नाम सवा।।1।।

धरणी-गीगन दोऊं नहीं दरसे, बिन पग बाट बया,
ना कोई रैन दिवस ना दरसे, ना कोई जल्म रया।।2।।

चाँद सुरज दोनूं नहीं दरसे, उग्या न अस्त हुया,
जोत झिलमिल ना कोई दरसे, ना कोई अन्धेर हुया।।3।।

गरीबनाथ जी सतगुरू मिलिया, बाँ मोटे सार्मथ किया,
चिमनानाथ अखे पद पाया, जुग-जुग अजर रया।।4।।

20:29

✿ वाणी ✿

नाथ का सुन लेना हेला,

सुमरन साज शिखर जा बैठा, अधर धार गेला – टेर

सुखमण सारी रास लाडली, कटा कुब्ध खेला।।1।।

हिरा तणो व्यापार करो जब, खूब भया थेला,

नाभ कंवल से श्वांस खिंचलिया, रोम–रोम मेला।।2।।

सतगुरू करले सिमरन भरले, बान्द अगम वेला,

अन्तकाल में चोर लूटसी, छोड़े नहीं धेला।।3।।

गरीबनाथ गुरु देव मिल्या, धूप्या पाप मेला,

चिमनानाथ कुब्ध को पीड़ी, काड दिया तेला।।4।।

✿ वाणी ✿

सैन मोहे सतगुरुवाँ दिन्नी,

दास हुआ जब पास बुलाया, सुध–बुध घर धर दिनी – टेर

प्रथम देव गणेश नगर की, सब बारी अन्त झीनी,

सब सन्ता की कृत लखी, देख डगर लीनी।।1।।

अमर आरती वो नर करसी, सैन गुरु की लिनी,

रट के खेल देखलिया सारा, शब्द साखती किनी।।2।।

समझ सेझ पर निर्भय जागु, धीर धेन हर दिनी,

आत्म अर्ग पियो दिन राती, रोग पीड़ा हर लिनी।।3।।

✿ वाणी ✿

सतगुरु कुड़-कड़ब ऊलटाई

सुमिरण सीटी तोड़ जुगत से खेत पुंजली लाई – टेर

खट कवल जा खलो भुवारों मन की मेड़ रूपाई

गुरुगम गोधा गाय परे रही भेद भुगरी लाई।।1।।

ईला-पिंगला ताँवो रोपो, सुषमन पवन चलाई,

दम पर दम ऊलटा बन लाग्यो, जदराम लाट घर लाई।।2।।

अब नहीं खुट खर चिया लाग्या, अरब बखरा भराई,

जे कोई आवे डगर हमारी, कमी रहे ना कोई।।3।।

गरीब नाथ जी सतगुरू मिलग्या, ऐसी जुगत बताई,

चिमनानाथ किरसारी जोगी, जब सन्ता मन भाई।।4।।

✿ फकीरी ✿

फकीरी हरि भजन में लाग, झूठा त्याग बेराग।

असल बेराग अभिमत साझे, सब जुग जावे जाग – टेर

असी कठिन फकीरी कहिये, जैसी जलती आग।

नर-नारी तपले उस तप में, जिनक अमर सुहाग।।1।।

ब्रह्म अग्नि में बिरला जलसी, जारा मोटा भाग।

नरक नदी में नुगरा न्हासी, जिनका फूटा भाग।।2।।

ईला-पिंगला ओहम-सोहंग, सुषमन चढ़ी अथाग।

बंकनाल का सीधा मार्ग, ठेट तिरवेणी भाग।।3।।

दसवें जा स्थिर डेरा लगाया, कटी कुबद जम री लाग।

गरीबनाथ गुरु आन चेताया, चिमनानाथ गया जाग।।4।।

✿ श्लोक ✿

सरवर जैसे नीर भरा, वैसे ही आतम राम।

भरम किवाड़ी खोल के, बिन देह का देखो श्याम।।

✿ श्लोक ✿

देह धारी गुरू सगुण है, निर्गुण है निराकार।
जो खोज करे निर्गुण की, सोही भव सागर से पार।।

✿ वाणी ✿

साधो भाई यह निर्गुण का गैला,
बिन मणको की माला फिर रही, जाँ को लखे सतगुरू का चेला -

कोटि सन्त भांखग्या जगत में, दे-दे कर सत का हेला,
अपना राम लखे घट माही, हर दम तुम संग मेला।।1।।

तीरथ कर मट का व्रत कर भुखा, तूं दुःख आतम रो देला,
आतम देव अमर अविनाशी, समझ नहीं पाया गेला।।2।।

कर सतसंग साख ले कोटी, सींच निर्गुण की बेला,
सोहंग तार सार जुगती से, सतगुरु नित रह मेला।।3।।

गरीबनाथ गुरु मिले निर्गुणी, निर्गुण लखण समझाया,
चिमनानाथ समझ गमधारी, काल-जाल में कबहूँ न आया।।4।।

✿ जोगिया ✿

कुड़ क्यों भाखे रे जोगिया है नार बिना तू बेकार,

नामी नारी नाव है रे जोगिया, है पवन नाम आधार – टेर

नारी त्रिकुटी नाम है रे जोगिया, और ईला पिंगला नार।

जे नारी से भिन्न करे रे जोगिया, तो मतना सुषमण सार।।1।।

बंकनाल नारी कही जे रे जोगिया, है सुरत–नुरत भी नार।

समझ–रमझ नारी कहिजे रे जोगिया, सामरथी कहे वां नार।।2।।

सुन महासुन नारी कही रे जोगिया, सातो सुन भी है नार।

अखे सुन मत जावो रे जोगिया, वही नार की नार।।3।।

गरीबनाथ गुरु देव जी रे जोगिया, कही समाधि नार।

चिमनानाथ इन नार में रे जोगिया, देखा आत्म में दीदार।।4।।

✿ जोगिया ✿

शब्द बनाकर टोरिये रे जोगिया, ओहंग इसका नाम।

हिरदे कमल में चालिये रे जोगिया, घर दसवें में गाम।। – टेर

जीव–पीव भैला होया रे जोगिया, पलट दिया सब नाम।

निराकार निज नाम है रे जोगिया, नहीं धरनी का नाम।।1।।

अखंड अकेला अमर है रे जोगिया, नहीं मरने का काम।

सत में सत समाईया रे जोगिया, नाम रूप नहीं धाम।।2।।

तखत ढलो उस चौक में रे जोगिया, वहाँ बैठा नहीं बूढ़ा नहीं बाल।

अविनाशी उन दोश में रे जोगिया, नहीं औछा नहीं लाम।।3।।

गरीबनाथ गुरू जी मिला रे जोगिया, नहीं राता नहीं शाम।

चिमनानाथ उन को लखे रे जोगिया, नहीं बस्ती नहीं गाम।।4।।

✿ वाणी ✿

मेरा प्रीतम अनभै देवन हारा।

आप बिना परले बह जाती, आप किया वो पारा।। टेर।।

आप बिना मालिक नहीं दूजा, आप ही दर्शन दिदारा।

छोटे मोटे जग के साथी, आप बिना बेकारा।।1।।

लगन डोर में मनका थारा, फेरन भरे बजारा।

आप भजन में मग्न रहू, नहीं भुलु गुण थारा।।2।।

आप चरण में हाजिर रहूं, सौंपदिया तन-मन-धन सारा।

श्वास-श्वास में रटना थारी, मेटो जम का कारा।।3।।

गरीबनाथ प्रीतम गुरू, चरणों में शीश मैं डारा।

चिमनानाथ हटने का नाही, मिलाओ संत परिवारा।।4।।

✿ वाणी ✿

सुनो सखी बहना मोरे पति प्यार किया।

आवागमन का वन्दन काटां, मस्तक पर हाथ दिया।। टेर।।

पति चरणा में नित उठ रहती, ना मोहे दूर किया।

इन्द्र घटा जूं मो पर बरसे, गुरू गत नीर दिया।।1।।

भर-भर प्याला पीवण लागी, सब दु:ख मुक्त किया।

आठों पहर आनन्द में रहती, खिलता नैन हीया।।2।।

गगन महल में गत से पहुंची, पति मोहे शब्द दिया।
अगम देश अविनाशी मिल गया, देह बिना दरश दिया।।3।।
चिमनानाथ पति गुरू प्यारा, जुगती जोग दिया।
हीरा कहे सुनो मोरी साथिनो, सब कुकरम दूर किया।।4।।

✿ वाणी ✿

सुनो सरती बहना, प्रीतम नित सुखकरी।
गुरू शब्द में साज लिया मोहे, मैं पति भरता नारी।। टेर ।।
गुरू शब्द मैं यूं साजा, बात बताऊं सारी।
हाथ, होठ, कठ और जीभ बिना, मैं निर्गुण माला जपीरी।।1।।
ईला-पिंगला होय पदमणी, हो गई मेरे संग सारी।
सुखमणनार कामणी भारी, रचे चिरत गुप्त भारी।।2।।
सुखमन सोध करोड़ों नर-नारी, कदी सुखमणा संग घरबारी।
मिलजा आप रहे नहीं न्यारा, बाणी बेद पुकारी।।3।।
चिमनानाथ गुरू मालिक में, नित-नित लग्नी धारी।
हीरा कहे मिली प्रीतम में, पलक रहूंना न्यारी।।4।।

✿ वाणी ✿

इस विद त्यागो नारी सारी, बनो अविनाशी का प्रेम पुजारी।। टेर।।

अविनाशी अमर अजर है, नहीं सगुण नहीं निराकारी।

चारों युग बिताये खोजन में, आया नहीं किनारी।।1।।

नाही जपो जाप ना ही फेरो माला, साची सैन से लेयो सन्ता की लारी।

मिलेगा खोज-सोज कर देखो, मिटेगी भूल अधारी।।2।।

डगरी-नगरी दिखत नाही, ना कोई आरम-पारी।

दूर नहीं पास में है प्यारा, श्वास-श्वास सुखकारी।।3।।

सीधी राह चले जो नर-नारी, उनको सतगुरु लेवे ऊबारी।

चिमनानाथ गुरु गम धारी, अन्दर-बाहर रमता सारी।।4।।

✿ वाणी ✿

शिखर में मंजिल पड़ी नहीं है।

संत गये जिस मार्ग बा संत कही है।। टेर।।

ना ही धरती ना गिगना, ना बसती बस रही है।

ना कोई खलक ना कोई खाली, ना झुठी साच कहि है।।1।।

ना ही दिवस ना ही रजनी, ना कोई गरेन गहि है।

ना ही वहां शुद्ध-अशुद्ध है, ना ही जोत-पतंग वहां है।।2।।

चातर-मुर्ख पुरुष नहीं है, मुख बिन बैण कहि है।

अमृत-जहर दोनों नहीं दरसे, पीवल उगल रही है।।3।।

गरीबनाथ गुरु गवन बताया, ना झुठ ना सही है।

चिमनानाथ निरभय लखता, रमता-मचता वही है।।4।।

अथ जोग के विघ्न करता।।

ठटाटठ घनौ अहार न करे । थकेला होए सो काम न करे ।।
घनो बोले नहिं योगारंभना । और नेम राखे ।।६।।
नहीं वस्तु की संग्रह राखे । कामी पुरुष का संग न करे ।।

अथ योग का क्रम ।।

अलप अहार यम में आ गए । अहिंसा माहे नियम सो भए ।।
आसन में सिद्ध आसन भाई । मुद्रा मए खेचरी आई ।।७।।

सब नाड़ी में सुखमन एक । अष्ट कुंभ में केवल विशेष ।।
खेचरी समान मुद्रा नाहीं । केवल कुंभक सब कुंभक मांही ।।८।।

ज्यों लय योग में कहिए नाद । धुनि में बिसरे आपावाद ।।
मंत्र जोग में अक रंकारा । ज्योंसोहं शब्द सब ज्ञानको सारा ।।९।।

ब्रह्मचर्य व्रत को गहै । निसदिन आत्म ध्यान में रहै ।।।१०।।

मन ते इस्त्री संग मिटावे । ऐसे द्वादश वर्ष गमावे ।।
सिद्ध आसन सों बैठा रहे । मन पवना को काठा गहै ।।११।।

सूर्य के घर पथ भोजन लेवे । चंद्र के सुर जल को पीवे ।।
जोगी साधे अलप अहारा । निस दिन राखे तत्त्व विचारा ।।१२।।

श्रवन सुने न बकै बहु बाई । नै काहु को संग कराई ।।
देही मंजन तजै सिंगारा । जाते उपजै बिषय विकारा ।।१३।।

एका एकी रहे निरास । शरीर जीते रहै विवास ।।
अति उछाह धरे मन माहीं । आसा तृष्णा व्यापे नाहीं ।।१४।।

जोग पंथ में निष्ठा राखे । धीरज गहे कल्याना नाखे ।।

अब जोगी की आहार की विधि कहिते हैं ।।

ऐसे आत्म ब्रह्म बिचारै । एकजानि करि द्वैत निवारै ।।
ज्यों सागर में बूँद समावै । त्यों अत्म में मन लगावे ।।१३।।
ऐसी भांति विचारहि करते । निसदिनब्रह्ममांहि चित्तधरते ।।
त्रिगुणाकार सकल भ्रम भागे । होए ब्रह्म सोवत सों जागे ।।१४।।
द्वै ब्रह्म ब्रह्म मिलि जावै । जहाँहुते वहस्यों नहिं आवै ।।
ऐसी बिध ऊव दुख न दहै । हरि को निजानंद पद लहै ।।१५।।

दोहा ।

आत्म ज्ञान निश्चे करे, बिधि सों रोके प्रान ।
सोहं हंस को जप करे, तो लहै मोक्ष निर्बान ।।
यह समझि तोसौं कही, साधनते सिद्धहोए ।
जीव समावे ब्रह्म में बहुरि न बिसरे कोए ।।

चौपाई।।

आसन मुद्रा कुंभक साधै । बार बार पूरक कों साधै ।।
प्राण अपान एक ह्वै जाई । थिर कै स्वासन बिसरे काई ।।१६।।
नाद बिन्द कों एक करावै । मनपवना घटमांहिसमावै ।।
आत्म तत्व में होवे लीन । जैसे जल में विचरे मीन ।।१७।।
जैसे पानी लून समावै । ऐसे मिल्या फेर न आवै ।।
ज्यों जीवात्म परमात्म मांही । होवे लीन देह सुध नांही ।।१८।।
सीत उष्ण को गम नहिं काई । बन बस्ती जाके सम भाई ।।
निजानंद पद मांहि समावै । याको नाम समाधि कहावै ।।१९।।

दोहा।

हद छाड़े बेहद भए, भूल गए गुन तीन ।
सकल मिटाई वासना, भए ज्योति में लीन ।।

क्या भरवासा देह का, पल में होए वँजोग।
घड़ी सुलखनी जानिए, जो सत शबद संजोग।।

देख ये रचना जगत की, क्यों मूढ़ मन भरमाए।
ना थिरता इस जगत की, ना देह थिरी रहाए।।

जिस दर बाजत नौबताँ, गज झूलें बहु शान।
उज्जड़ खेड़े हो गए, सब चल गए बेनिशान।।

छिनभंगर ये पिंजरा, छिन में गरद समाए।
ताँ सों समाँ विचार के, करो भगत मन लाए।।

ज़ोर जुलम दोनों तजो, आजिज़ हो दरवार।
सिमर नाम गोपाल का, सत सम्पत अपार।।

कहाँ सिकन्दर बिक्रमा, दुरयोधन मद मान।
कहाँ राम कहाँ रावना, नहिं देखत आए निशान।।

गुनी गए मुनी गए, साध तपोबल धारी।
सतसरूप केवल प्रभ एके, अगम शबद निरंकारी।।

वस्त अमोलक गुर दिखलाई, अगम धार अबनाशी।
मानुष जनम कदारथ होया, भरमन मिटी चौरासी।।

नित ही नित माँगो, सत्तनाम सत सेवा।
भाव भगत धर सिमर लो, पारगरामी देवा।।

इस मन को शान्त मिले, सतपद ले बिसराम।
अपने आप में आप समावे, लखे शबद का धाम।।

खेम कुशल पद जपो निरंजन, करें सन्त वेद पुकार।
'मंगत' ये ही सत सम्पता, जग जीवन धन सार।।320

स्वास स्वास हरनाम जप, जीवन सुफला होए।
काम क्रोध मल सब हरो, नाम साबुन ले धोए।।

सब साधन की साधना, सब गुनियाँ दा ज्ञान।
प्रेम भाओ अन्तर जपे, जीव पाये बिसराम।।

स्वास सुरत से पीविए, साचो नाम अगाध।
उलट कँवल परगासया, मिटी तृषना व्याध।।

सतनाम जग में सार है, और सकल असार।
प्रेम भगत अन्तर जपे, परसे पद निरधार।।

लाख करोड़ी सम्पत, छिन आवे छिन जाए।
इस्थिर नाम गोबिन्द दा, जो सिमरे सुख पाए।।

चार वेद खट शास्त्र पढ़े, निध्यासन बिन भरमाए।

संत तुरसीदास के अनुसार मन को वश में करने का सबसे उत्तम उपाय प्राणायाम ही है –

प्रानायांन आलंबन सूं, मन की वृति उलटाइ।
तुरसी मन बसि करन कूं, है इह उत्म उपाइ।। [321]

तुरसी ने प्राणायाम के 3 भेद बताये हैं जो इस प्रकार हैं–

प्राणायाम तीन प्रकार अधमधिउत्म सार।[322]

अर्थात् 1. अधम 2. मध्यम 3. उत्तम।

संत भगवानदास निरंजनी ने भी प्राणायाम के तीन भेदों का उल्लेख किया है–

चौथें प्राणायाम कहि तीनि भांति परकाश।
उतिम मधिम दोइ कहि पुनि कनिष्ट अवभाश।।[323]

तीन भेद निम्न प्रकार है – 1. उत्तम 2. मध्यम 3. कनिष्ठ।

श्वास–प्रश्वास (प्राणायाम) का सम्बन्ध शरीरस्थ नाड़ियों से है। गोरक्ष–संहिताकार के अनुसार भारीर में 72 हजार नाड़ियाँ हैं। उनमें से बहत्तर प्रमुख है तथा उनमें भी दस नाड़ियों को श्रेष्ठ माना जाता है। [324]

हरिरामदास निरंजनी के अनुसार विभिन्न प्रकार के नाड़ी चक्रों में सारभूत नाड़ियाँ तीन हैं –

नाड़ी चक्र बहुत विधि कहिये, सारभूत तिन मैं त्रय लहिये।
इड़ा पिंगला अरु सुषमना, इनकी रीति धारि निज मना।। [325]

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की शरीर में स्थिति आदि को समझाने के पश्चात् हरिरामदास ने प्राणायाम को स्पष्ट किया है –

इड़ा नाड़ि तैं पूरक करै, कुंभक पवन माहि ले धरै।
रेचक नाड़ि पिंगला कीजैं, बीज मंत्र विधि सहित जपीजै।।[325]

योग–शास्त्र के अनुसार इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये नाडियाँ प्राण–वायु को धारण करती है तथा शरीर में होने वाली सभी क्रियाओं को संचालित करती रहती है। इन्हीं नाड़ियो के सूत्रों से बने हुए छह–चक्र भारीर में क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर रहते है। अतः साधक इन्हीं चक्रों पर अधिकार करने के लिए योग–शास्त्र में बताए गए विभिन्न उपायों व विधियों को करता है। हरिरामदास निरंजनी ने भी इनके महत्त्व को स्वीकार करते हुए इन षट्–चक्रों के नाम व स्थानों का उल्लेख इस प्रकार किया है –

कहिये एक आधार बिये स्वाधिष्टान कहात।
तीजो मणिपूरक लखौ, लखि चतुर्थ अनुहात।
लखि चतुर्थ अनुहात, पंचम विशुद्ध प्रमान।
षष्टम आज्ञाचक्र, नाम इन के यह जान।
गुदा लिंग अरु नाभि, ह्रदै पुनि कंठ सुलहिये।
वहुरि भौंह हरिराम, थांन इन के यह कहिये।।[327]

योग–शास्त्रीय ग्रंथों में निर्धारित वर्णों (बीजाक्षर) सहित षट्–चक्रों का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

क्र.सं.	चक्रों के नाम	स्थान	दलों की संख्या	सुशोभित वर्ण
प्रथम	मूलाधार चक्र	गुदा	चार	वं, शं, षं, सं
द्वितीय	स्वाधिष्ठान चक्र	लिंग	छह	बं, भं, मं, यं, रं, लं

6. धारणा :

अन्तःकरण को अद्वितीय वस्तु ब्रह्म में नियुक्त करना **धारणा** कहलाता है –

अद्वितीय वस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा। [333]

संत तुरसीदास निरंजनी के अनुसार चित्त को एकाग्र करके अचल होकर परम आराध्य देव में ही अपना ध्यान लगाना ही **धारणा** है –

तुरसी नाभिक ह्रदै स्थांन अथवा भू मधि धर हूँ जु ध्यांन।
मन अचल करि रखौ कही, प्रेम जोति प्राप्ति होई तही।। [334]

भगवानदास निरंजनी ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है –

सोहं शब्द पुकारीए अंतर वृत्ति लगाइ।
व्है अडोल डोलै नहीं शुद्ध धारना पाइ।। [335]

वही हरिरामदास निरंजनी के अनुसार पंच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) के रूप को अर्थात् उनके वर्ण, आकार, अक्षर तथा अधिष्ठातृदेव सहित हृदय में धारण कर उनमें प्राण–मन सहित लीन होना **धारणा** है –

जैसो जाकौ वरण है अरु जैसो आकार ।
जा अक्षर संयुक्त है जा सुर को अधिकार।
जा सुर को अधिकार तत्व पंचम में होई।
तैसो डरि धरि रूप प्राण चित्त थंभै जोई।
पंच तत्त्व जय करै धरै तनु योगी तैसौ।
जिका तत्त्व की जहाँ धारणा धारै जैसौ।। [336]

7. ध्यान :

हरिरामदास निरंजनी के अनुसार शरीर मन और इन्द्रियों को निश्चल कर परमात्मा चिन्तन **ध्यान** है –

परमातम कौ ध्यान जु धरै, तन मन इन्द्री निश्चल करे। [337]

जब साधक को अन्तर्मन में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है, यही परमात्मा का ध्यान है –

तुरसी रिदै कंवल कै मांही, जोतिमई जगदीश रहांही। [338]

ध्यान के संबंध में भगवानदास निरंजनी कहते हैं –

सोहं हंसो होतु तौ सो कह्नौं मिटि जाइ।

एक एक ही एक हौ ध्यान मान शुद्ध भाइ।। [339]

अर्थात परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना ही **ध्यान** है

हरि सुमिरण मन हठ मतौ, सो मैं छाडौ नांहि।
रामरतन धन अजब है, ले राष्या मन मांहि।।[189]

तुरसीदास निरंजनी के अनुसार 'राम' नाम का स्मरण ही श्रेष्ठ है। वह कहते हैं कि भगवान के प्रति नाम का स्मरण उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार भूखा व्यक्ति अन्न का तथा प्यासा व्यक्ति जल से प्रीति करता है। उसे राम–नाम स्मरण में अपने मन को चातक और कामी व्यक्ति के समान लगाना चाहिए –

ज्यूं पृथरोमा नीर कूं, चात्रग घन की प्यास।
ज्यूं कांमी कामहि भजै, यूं रांम भजै निजदास।।[190]

संत तुरसी ने स्मरण के चार भेद किये हैं –

तुरसी अध मध उत्तम, अति उत्म हूं सोइ।
सुमिरन की विधि जुगतिए, जांने बिरला कोइ।। [191]

अर्थात् 1. अध 2. मध्यम 3. उत्तम 4. अति उत्तम।

इसी प्रकार संत हरिरामदास निरंजनी ने भी **स्मरण** के निम्न चार प्रकारों का उल्लेख किया हैं –

सुमिरण च्यारि प्रकार को, अध मध्य उत्तम नाम।
अति उत्तम चौथो कहे, कहै दास हरिराम।।[192]

संत सेवादास के अनुसार सुमिरन का पान मग्न करने वाला अतिसुखकारी है–

पी मतिवाला मगन भया मन और न आवै रामबिनां।
निरभै भया निरंतरि मेला, है सुमिरन माही सुष घनां।।[193]

संत रूपदास निरंजनी ने भी स्मरण को महत्त्व दिया है –

राम राम सतगुरु कह्या, सुमरण सास उसास।
जन रूपदास जप सुगत सूँ, कोटि कर्म का नास।।

सुमिरण सुष सतगुरु दिया, रांम नाम तत सार।
रांम रटत जन रूपला, लगैन जमकी मारन।।[194]

सुमिरन की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए संत उदयराम जी कहते हैं –

स्वास स्वास हरि नाम बिन, जन्म अमोलक जाय।
जन उदयराम यूँ कीजिये, भजिये निरंजन राय।।[195]

संत जगजीवनदास ने भी कहा है –

गाजे पठिये सुमरिये, लाजे उनमन ध्यान।
जगजीवन हरि सुमरिये, कबहू न बझिये आंन।।[196]

महात्मा नरीदास जी के अनुसार राम–नाम का स्मरण करने से मनुष्य इस भवसागर से तर जाता है, और उसके सारे माया रूपी बन्धन कट जाते हैं एवं वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नरीदास जी राम–नाम के सुमिरन की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं –

राम सुमर हरि का गुण गावे, हरि हरि सुमर परम पद पावे।।
हरि है अवमोचन सुख रासी, हरि जरामरण की काटै फांसी।।
राम सुमर भवसागर तरिये, हरि सुमरत भाव पार उतरिये।।
राम सुमर छूटै भ्रम पास, चरण शरण जन कहे नरिदास।।[197]

संत कल्याणदास जी ने स्मरण विषयक भक्ति भाव को इस प्रकार प्रकट किया है –

कर्म भर्म कूकस भया, कण है सुमिरण सार।
कल्याणदास जन यूं कहै, सुमिरै सिरजन हार।।[198]

ेखा सख्य भाव से ना। ४. इहां के काव्य में जीवन के पूर्णता बा।
उपसंहार—सारांश-लक्ष्मी सखी के प्रतिमा ईश्वर प्रदत।

संत कवि के चारो ग्रंथ में कहल बात के संग्रह

१ बात—गंगन मंडल में बइठ के साहेब हंसन कर बीच में राकार माकार
गुरू का गावेला सो तो कहो सजनीं।
जा से बने हरि भजनी।। अमर सीढ़ी पृ० ३५६

२ बात—धन-धन मोरे सांईं, जे गुह से कइले गोसांई।
अउरो दीजे गाई भरपेट खिआई ।।

३ बात—धन गुरू धन, जे सब जग देखिले अनन।
अमर कहानी पृ० १६०

४ बात—कहे के बा सफा बात सटोका,
खुश होइ त दीका केहु नाराज होई त ऽ लीका।
अमर कहानी पृ० २३८

५ बात—जे ई पढ़ी से ई छोड़ के दोसर ना पढ़ी, त देखिह जे असिरबाद
फरी, बैठल खाई दाल भात सोना के छरी।
अमर विलास पृ० १४८

६ बात—जतिने राग नु लामा बिगाई, ततिनो औरो मिठाई भाई।
जे खात-खात कतिनो दुखो ना जाई, अधिका में औरो मनुआ फुलाई।
अमर विलास पृ० १५१

७ बात—येह ग्रन्थ केवल राम चरित्र है गंगा के जल जैसे सबसे पवित्र है।
अमर विलास पृ० १५५

८ बात - बाना पाटा लेखा भाजे के, हिरोला लेख, पढ़वावे के।
रसे-रसे गावे के जे परम सुख पावे के।।
अमर विलास पृ० १६७

९ बात—ई ना कहे के जे ओही चौपाई लेखा त इहो बा,
एक पंच के एक जगह जाला।
अमर विलास पृ० १७४

ई कुल्ह बात आदर्श वाक्य (Motto) हउवें सँ।

गुरुनानकदेव ने राजा शिवनाथ को प्रथमत: राम नाम, फिर प्रणव एवं फिर हंसरूप अजपाजप का (तीन चरणों में) उपदेश दिया था।

वैदिक, पौराणिक एवं तान्त्रिक अर्थात् सारे प्राचीन साधना साहित्य में इसका अभ्यास अजपा गायत्री, हंसविद्या, आत्ममन्त्र एवं प्राणयज्ञ के नाम से प्रचलित था।

गीता के चतुर्थ अध्याय में उपदिष्ट 'प्राणान् प्राणेषु जुह्वति' की साधना प्राणयज्ञ ही है। इसे श्रीधर स्वामी ने (अपनी गीता-टीका में) अजपा-साधना कहा है।

श्वास के दो रूप—

१. (प्रथम श्वास) जन्म (बच्चे का प्रथम श्वास)।
२. (अन्तिम श्वास) मृत्यु (श्वास का अन्तिम भाग)।

जन्म से मृत्युपर्यन्त का मध्य काल जीवन कहलाता है। मानव का समस्त जीवन श्वास-प्रश्वास से सम्पुटित है।

मनुष्य की आत्मविस्मरणावस्था एवं श्वास-प्रश्वास—मनुष्य अपनी आत्म-विस्मरण की अवस्था में ही प्राण एवं अपान की हथकड़ियों से बँधकर इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित होता रहता है।

आत्मविस्मरण के कारण ही मनुष्य श्वासप्रश्वासाधीन रहकर काल की प्रेरणा से इड़ा एवं पिङ्गला नामक वाम-दक्षिण नासापुट में प्रवाहित श्वास-प्रश्वास के रूप में सञ्चरण करता रहता है।

यदि अविद्यावरणस्वरूप विक्षेप एवं विकल्प न रहें तो विक्षेपात्मक श्वास-प्रश्वास की सत्ता भी अस्तित्व में नहीं रह सकती।

अजपा जप का स्वरूप—एक अहोरात्र में प्रत्येक मनुष्य २१६०० श्वासें लेता एवं छोड़ता है। श्वास-प्रश्वास की अहोरात्रिक संख्या २१६०० है।

प्रक्रिया—मनुष्य 'हम्' ध्वनि के साथ श्वास बाहर फेंकता है (जिसे प्रश्वास कहते हैं) तथा 'स:' ध्वनि के साथ श्वास लेता है, जिसे नि:श्वास कहते हैं।

हंकारेण बहिर्याति स:कारेण विशेत्पुन:।

'हंस:' के हकार-सकार का क्रम—अजपा जप या हंसविद्या में हकार-सकार का प्रश्वास एवं नि:श्वास के साथ कैसा सम्बन्ध है—इस दिशा में मतभेद है।

हंस मन्त्र के क्रम-विधान में मतभेद

साधारण मत—	गोरक्षनाथ एवं रामप्रसाद का मत—
हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुन:	हं वर्ण पूरके हय स: वर्ण रेचके वय। अहर्निश करे जप हंस हंस बलिया।

राग बिलावल

घट में खेल ले मन खेला ;
सकल पदारथ घर ही माहीं, हरि सों होय जु मेला.
घट में देवल घट में जाती , घट में तीरथ सारे ;
बेगहि आव उलट घट माहीं , बीते पर भी न्हारे .
घट में मान सरोवर शुभ है , मोती और मराला ;

घट में ऊंचा ध्यान शब्द का , सोऽहं सोऽहं माला .
घट में बिन सूरज उजियारा, रात दिना नहिं सूझै;
अमृत का नित भोग लगत है, बिरला जन कोइ बूझै.
घट में पापी घट में धर्मी , घट में तपसी योगी ;
गुण अवगुण सब घट के माहीं, घटहि चिकित्सक रोगी.
राम भक्ति घट में उपजे , घट में प्रेम प्रकाशा ;
शुकदेव कहें चौथा पद घट में, पहुंचे चरणहि दासा.

राग विभास

घट में तीरथ क्यों नहिं न्हायो ;
इत उत डोलो पथिक बने ही , भर्म २ क्यों जन्म गँवायो.
गोमती कर्म सुकारथ कीजे , अधरम मैल छुटायो ;
शीत सरोवर हित कर न्हायो, काम अग्नि की तपन बुझायो.
रेवा सोई क्षमा को जानो , तामें गोता लीजे ;
तन में क्रोध रहन नहिं पावे , ऐसी पूजा चित दे कीजे .
सत यमुना सन्तोष सरस्वती , गंगा धीरज धारो ;
झूठ कपट निर्लोभ होय कर , सबही बोझा शिर सों डारो .
दया तीर्थ कर्मनाशा कहिये , परसे बदला जावे ;
चरणदास शुकदेव कहत हैं , चौरासी में फिर नहिं आवे .

विभास

घट में तीरथ जो तुम न्हाओ :
तिन के न्हान अमर पद पहुंचे, आदि पुरुष निश्चय कर पाओ.
काशी सो तत करनी कीजे , कलिमल सकल नशाओ .
रहनि गहनि पुष्कर की जानो, तामें मज्जन क्यों न कराओ.
ध्यान द्वारिका दृढ़ कर परसो , हित की छाप लगाओ .
इन्द्री जित सोइ बद्रीनाथा , यह गति सत करि चित में लाओ.
योग युक्ति सों चुबकी लेकर , काग पलट हंसा हो जाओ .

सोरठ

हमारे गुरु मारग बतलाया हो ।

आनदेव की सेवा त्यागी, अज अविनाशी ध्याया हो ।
हरि पूरण परसो निश्चय सों, छांड़ो झूठी माया हो ।
यक रस आतम नितही जानो, क्षण भंगी है काया हो ।
चाहे मुक्ति करे तन किरिया, भरम अधिक भरमाया हो ।
बोकर पेड़ बबूल शूल कर, आम कहो किन खाया हो ।
आपन खोज किया नहिं कबहूं, जल पाहन भटकाया हो ।
जैसे फल सेवत सेमर को, कीर अधिक पछिताया हो ।
ज्ञान पदारथ कठिन महा निधि, बिन भेदी किन पाया हो ।
चरणदास घट सोऽहं सोऽहं, ता में उलट समाया हो ।

मंगल वा सूहा वा बिलावल

कर्म करे निष्कर्म होवे, फेर कर्म नहिं कीजिये ।
भूल के कोइ कर्म साधे, उलट कर्म नहिं दीजिये ।
कर्म त्यागे जगै आतम, यह निश्चय कर जानिये ।
जब निर्भय पद सुलभ पावे, सांच हिये में आनिये ।
सो सांच हिय में राख अबधू, नाम निर्गुण नित जपो ।
अग्नि इन्द्री कर्म लकड़ी, पांच अग्नी यों तपो ।
जैसे टूट गहना खोज मेटे, होय सोना अति सुखी ।
ऐसे योग भक्ति बैराग सेती, कर्म काटे गुरु मुखी ।
जासों मिटे आपा आप सहजे, ब्रम्ह विद्या ठानिये ।
गुरू शुकदेव यों युक्ति भाषे, चरणदास पहिचानिये ।

सोरठ

साधो भरमा यह सन्सारा ।
गति मति लोक बड़ाई उरझे, कैसे होय छुटकारा ।
भरम पड़े नाना विधि सेती, तीरथ वरत अचारा ।
देह करम अभिमानी भूले, छूछ पकड़ तत डारा ।
योगी योग युक्ति कर हारे, पंडित वेद पुराणा ।

जो जो इन सों देखिये, तिन की निश्चय हान.
गुरु शुकदेव सुनावैरे, अरे हेला समझ चरणही दास;
अपने ही परकाश में, आप रहा परकाश.

हिंडोला

झूलत गुरु मुख सन्त, अलख हिंडोलने.
नाभी त्रिकुटी खम्भ में, रोपे सोऽहं डोरी लाय;
सुरति पटली बैठी सजनी, क्षण आवे क्षण जाय.
मन मनसा दोउ लगे झूलने, धारना लिये संग;
ध्यान झोटे देत सजनी, भलो लागो रंग.
सखी सहेली सिमिट आई, पींग पींगन नेह;
बूंद आनँद सब भिगोई, सघन बरसे मेह.
चारु वाणी खड़ी गावें, महा रंगीली नार;
मुक्ति चारों मालिनी, जहां गुह गुह लावें हार.
त्रिगुण बगला उड़न लागे, देख बादल लय;
संग पिय के सदा झूले, तातें लगे न भय.
चरणदास को नित झुलावे, इस झूले शुकदेव;
शिव सनकादिक नारद झूलें, कर कर गुरु की सेव.

अथ सर्व अंग राग मंगल

मन रोगी भयो पिंड की कुबुधि विकार सों;
बाढ़ी व्यथा अपार लोभ के भार सों.
कर्म भरो मति हीन क्षीण छल सों छयो;
पांच पचीसों घर मोह मद ने दह्यो.
कैसे यह दुख जाय कै पूछन को चल्यो;
तब पूरण गुणवन्त वैद्य सतगुरु मिल्यो.
कर गहि कियो विचार कह्यो समझायके;
जो कुछ तेरो रोग सो देहों बताय के.

मस्तक प्राण चढ़ाय के, करे अमर पुर भोग ॥
पांचो मुद्रा साध के, पावे घट का भेद ।
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षट चक्कर को छेद ॥
नाशा ध्यान दृष्ट भृकुटी में, सुरति श्वास के माहिं ।
आतम देखो जात है, या में संशय नाहिं ॥
योग युक्ति को कीजिये, कै आतम को ध्यान ।
आपा आप विचारिये, परम तत्व को ज्ञान ॥
सुंदर बैश्य शरीर, ब्राम्हण अरु रजपूत ।
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास अबधूत ॥
काया माया जानिये, जीव ब्रम्ह है मीत ।
काया छूटे सुरति मिटे, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुण्य आशा तजो, तजो मान अरु थाप ।
काया मोह विकार तज, जपो सु अजपा जाप ॥
आप भुलानों आप में, बंधो आप में आप ।
जाको तू ढूंढ़त फिरे, सो तू आपहि आप ॥
इच्छा दोय बिसार के, क्यों न होय निर्वास ।
तूतो जीवन मुक्त है, तजो मुक्त की आश ॥
आपा खोजे आप लख, आप अपन को देख ।
चरणदास तू ब्रम्ह है, तू ही पुरुष अलेख ॥
जैसे कछुवा सिमिट कर, आपहि माहिं समाय ।
तैसे ज्ञानी श्वास में, रहै सुरत लव लाय ॥
सब घट रमो सो राम है, आदि पुरुष निर गम्म ।
लख चौरासी योनि में, एक समानो सम्म ॥
दृष्टि मुष्ट आवे नहीं, रूप न देखा जाय ।
बिना सुरति बिन नाम को, घटघट रहो समाय ॥

२- निरंजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी : डा०भगीरथ मिश्र, पृ०६४ ।
३- वही, पृ०६४ ।
४- वही, पृ०६५ ।   ५- वही, पृ०६५ ।

तुरसी के इन अवतरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास के समान तुरसी भी कलियुग में रामनाम को `कामधेनु` समझते हैं इसीलिए वह साधना का सर्वश्रेष्ठ साधन है । उस नामस्मरण से ही समस्त पूजा विधानों का फलप्राप्त हो सकता है । तुलसीदास के समान संत तुरसी भी `राम` नाम के इन दो अक्षरों का महत्व प्रतिपादित करते हैं जिसमें वे `र ` और `म ` इन दो अक्षरों को ज्ञानानंद की वर्षा करने वाले बादल के रूप में चित्रित करते हैं -

`बादल बरसन लागे दोय ।
ररो मभो उर माँहि उमगि कै, जल थल डारे धोय ।।
उनै आई घटा ज्ञान की, दामिणि दमकत सोय ।
प्रीति पवन चलि हरि जल बूंदों, अमृत धार समोय ।।
तपन मिटी, तन मन भयो सीतल, सुरति सुधारस मोय ।
नष सिष नगरी आनंद उपनो, सुष बिलसै सब कोय ।।
दुरमषि मिटि, सुरमषि उपजानो, दुष दलिद्र गये षोय ।
तुरसी आदि अंत अबैता, मंगल गावै लोय ।।`[1]

इस प्रकार राम नाम के दो अक्षर ही वास्तव में काया-नगरी में ज्ञान की घटा उमड़ने और आनंद की वर्षा होने के कारण होते हैं । नाम के इन दो अक्षरों का महत्व तुलसीदास जी ने भी निरूपित किया है जो हमारा चिर-परिचित अंश है-

`एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोय ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोय ।।`[2]

इस प्रकार नाम के इन अक्षरों का माहात्म्य निरूपित करने की कल्पना में भी तुलसीदास जी और संत तुरसी भावना की समान सतहों पर खड़े दिखाई देते हैं । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कल्पना के इस चारुत्व में दोनों कवियों में पर्याप्त समानता है । अतः यह स्वतः सिद्ध है कि तुरसी का नाम

१- निरंजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी : डा० भगीरथ मिश्र, पृ०६४ ।
२- राचरितमानस, बालकाण्ड, दो सं०२० ।

"ईड़ा, पिंगला, सुष्मना, नारी तीन विचार।
बायें दाहिने मध्य में, लखे जो तीनों धार।।"[116]

"आसन पदुम लगाय के, मूल बन्ध सम साध।
मेरू दण्ड फेरी करे, सुरति गगन में बाँध।।"[117]

"सदा आप में लीन रह, करि के योगाभ्यास।
आबत देखे काल को, गगन मंडल कर बास।।"[118]

योग के सम्बन्ध में संत रैदास ने भी कहा है -

"अैसा ध्यान धरूँ बनवारी, मन पवन दिढ़, सुषमन नारी।
उलटी गंगा जमुन मैं ज्योऊँ, बिन ही जल संयम कै आंऊ।।
व्यंड परे जीव जिस घटि जाता, सबद अतीत अनाहद राता।
सुंनि मंडल मैं तेरा बासा, ताथै जीव में रहु उदासा।।
कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस घटि जाऊँ जब बहुरि न आऊँ।।"[119]

सभी संत परम्परा के संतो में कबीर, रैदास, दादूदयाल और मलूकदास सभी संतो ने आत्म-दर्शन के लिए नाम स्मरण को एक समर्थ साधन माना है। ये संत मानते थे कि जीवन की व्यापकता राम के प्रेम तथा उनके नाम स्मरण में है। कबीर ने तो नाम-स्मरण पर अनेक पदों की रचना की है। रैदास ने भी भक्ति के लिए राम नाम के स्मरण पर बदल दिया है। 'तिहु जुगी तीनों दृष्टि, कलि केवल नाम अधार' कहकर संत रैदास ने नाम-स्मरण की महत्ता प्रतिपादि की है। उनके अनुसार -

"असै भक्ति न होई रे भाई।
राम नाम बिन जे कुछ करिये, सो बस भरम कहाई।"[120]

संत बौआ साहब नाम-स्मरण को ही मूलतः भक्ति मानते हुए कहा है -

"नाम रटने में मन को लगाना रे, तू पायेगा जिससे ठिकाना।"[121]

"मेरे गुरु ने ध्यान बताया,
आसन सहज लगाके बैठो, स्थिर राखो काया।
सुरति समेटि ह्रदय में राखो, सद्‌गुरु शब्द समाया।।"[122]

संतो ने पारमार्थिक साधना में माया को सबसे बड़ी बाधा माना है। माया हरि की दासी है और उससे छुटकारा हरि-कृपा से ही सम्भव है। माया हरि से मिलने नहीं देती है। सद्‌गुरु कबीर ने कहा भी है -

कर मेरम मरजीवा मरिया जिंदा जले मसाणा,
जो सतगुरू का वचन निभावे वो घर वो ही जाणा,
गुरूवर रत्न दिया है सांचा चुन्ना चेतन पिछाणा,
भरम मिटा ''भैरया'' का लाये, निज घर ठोर ठिकाणा,
सेन समज सांची या सुरता आपो आप समानी ।। हद.....

भजन नं. 5

तर्ज : चला हंसा वण देया समन्द जहाँ मोती.....

सतगुरू दीनदयाल अगम लखवाया है।।

सोहं शब्द से बेगम पाई, अजपा अटल धाम दरसाई
किया सैन का काम, मरण चित्त लाया है ।। सत.....

हद बेहद और अगम निगम का सार बताया सब अणघड़ का,
है अछंर से पार अभय पद पाया है ।। सत.....

परा पैसन्ती मदा, बेकरी, भिन्न भिन्न समझाई सारी,
पहुँचा सुक्षम पार गुरू फरमाया है ।। सत.....

ज्ञानी गुरू रतन है सागर, आप पिलाई भरके गागर,
''भैरया'' भुवन बुहार चुने पद गाया है ।। सत.....

भजन नं. 6

तर्ज : अजब तेरी कारीगरी रे करतार.....

गुरूजी माने दीनाजी शब्द सुनाया।।

सुनत शब्द मिटि [illegible] आप में आ
सोहं श[illegible]

सोहं शब्द से बेगम पाई, अजपा अटल धाम
किया सैन का काम, मरण छित लाया है ॥

हद बेहद और अगम निगम का सार
है अछंर से पार अभय पद पाया है

परा पैसन्ती मदा, बेकरी, भिन्न भिन्न समझाई
पहुँचा सुक्षम पार गुरु फरमाया है ॥ सत......

ज्ञानी गुरु रतन है सागर, आप मिला
''भैरया'' भुवन बुहार बुने पद गाया

भजन नं. 6

तर्ज : अजब तेरी कारीगरी

गुरुजी माने दीनाजी शब्द

सुनत शब्द मिटि सब शंका, आप
सोहं शब्द सुनते ही पहले, नाम
उल्टा श्वांस शिखर जा चढ़िया, घर

प्राणवायुनिरोधेन लभते च चतुष्टयम् ।
तस्मादभ्यासशूरस्त्वं प्राणायामपरो भव ॥ २७ ॥
सकारान्तमिदं बीजं बहिर्याति सबिन्दुकम् ।
सविसर्गं सकारान्तं तद्बीजं प्रविशत्यधः ॥ २८ ॥
प्राणानिलश्च सर्वेषां प्रवर्तकनिवर्तकः ।
एवं जीवोऽजपानामगायत्रीं जपतेऽन्वहम् ॥ २९ ॥
एकविंशतिसहस्रसंख्यया षट्शताधिकमहर्निशं नरः ।
श्रीगुरूक्तविधिनाऽरुणोदये संस्मरन्वहति सोऽजपाफलम् ॥ ३० ॥
अजपां नाम संकल्प्य नरः पापैः प्रमुच्यते ।
शिवयोगमवाप्नोति शीघ्रमेव न संशयः ॥ ३१ ॥
अजपानामगायत्रीमन्त्रं वर्णद्वयं यदा ।
त्रिवेणीसंगमे लीनं स शब्दः प्रणवो भवेत् ॥ ३२ ॥

सोऽहं कृत्वाऽऽत्ममन्त्रं स्वपदपरतरं व्यक्तवर्णद्वयं त-
द्धालुम्पेद्यञ्जने द्वे पुनरपि रचयेद्दिव्यमोंकारमन्त्रम् ।
कृत्वाऽनुस्वारयुक्तं सकलमनुपरं ब्रह्मनाडीं नयेद्यः
पूर्णानन्दः स कुण्डल्यनुभवविकलः कर्मणे सूतिमेति ॥ ३४ ॥

प्राणवायुनिरोधेन लभते च चतुष्टयम् ।
तस्माद्भ्यासशूरस्त्वं प्राणायामपरो भव ॥ २७ ॥
सकारान्तामिदं बीजं बाहिर्याति सबिन्दुकम् ।
सविसर्गं सकारान्तं तद्बीजं प्रविशत्यधः ॥ २८ ॥
प्राणानिलश्च सर्वेषां प्रवर्तकानिवर्तकः ।
एवं जीवोऽजपानामगायत्रीं जपतेऽन्वहम् ॥ २९ ॥
एकविंशतिसहस्रसंख्यया षट्शताधिकमहर्निशं नरः ।
श्रीगुरूक्तविधिनाऽरुणोदये संस्मरन्वहति सोऽजपाफलम् ॥ ३० ॥
अजपां नाम संकल्प्य नरः पापैः प्रमुच्यते ।
शिवयोगमवाप्नोति शीघ्रमेव न संशयः ॥ ३१ ॥
अजपानामगायत्रीमन्त्रं वर्णद्वयं यदा ।
त्रिवेणीसंगमे लीनं स शब्दः प्रणवो भवेत् ॥ ३२ ॥

सोऽहं कृत्वाऽऽत्ममन्त्रं स्वपदपरतरं व्यक्तवर्णद्वयं त-
द्यालुम्पेद्यञ्जने द्वे पुनरपि रचयेद्दिव्यमोंकारमन्त्रम् ।
कृत्वाऽनुस्वारयुक्तं सकलमनुपरं ब्रह्मनाडीं नयेद्यः
पूर्णानन्दः स कुण्डल्यनुभवविकलः कर्मणे सूतिमेति ॥ ३४ ॥
इला स्मृतेन्दुरिति सूर्यसुतेति योगात्
सा पिङ्गलाऽर्क इति विष्णुपदीति तासाम् ।
सा मध्यमाऽग्निरिति गीरिति या त्रिवेणी
योगस्थलं तदिदमेव हि यत्त्रिकूटम् ॥ ३५ ॥
तस्मात्त्रिकूटनामापि त्रिवेणीसंगमस्थलम् ।
शृङ्गाटकचतुष्पीठनामान्येकस्थलस्य हि ॥ ३६ ॥

7.118

चौपाई

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।
प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा।।
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा।।
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई।।
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया।।
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धहि लोभ दिखावहिं आई।।
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा।।
होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी।।
इंद्रीं द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।।
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देही कपाट उघारी।।
जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई।।
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा।।
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई।।
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी।।

दोहा/सोरठा

तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस।।118(क)।।
कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।।118(ख)।।

अजपाविधि –

अजपा विधिलाई हंस-साधना पनि भनिन्छ । अजपा शब्दको अर्थ आफूले आफ्नै प्रयत्नले जप गर्न नपर्ने, स्वत: भइरहने जप हो । साधकले केवल यसलाई थाहा पाएर यसको चिन्तन र देवताहरूलाई समर्पण गर्नुपर्दछ यही साधना हो । एउटा स्वस्थ मानवले एक अहोरात्र चौबीस घण्टामा एक्काइस हजार छ सय पल्ट सास फेर्दछ । यो सांस फेर्ने क्रममा "ह" कारले वायु बाहिर जान्छ र "स" कारले भित्र पस्दछ । यसरी मानिस नजानिंदो किसिमले २१६०० पल्ट हंस मन्त्रको जप गरिरहेको हुन्छ । यही जपलाई प्रात:कालमा साधकले थाहा पाएर यसको चिन्तनपूर्वक गणेशलाई ६ सय, ब्रह्मा, विष्णु र शिवलाई ६ ६ हजार, आत्मा, परमात्मा र गुरुलाई एक-एक हजार समर्पण गर्नु पर्दछ । यी देवताहरूको स्थान पनि साधकको आफ्नै शरीरभित्रका भावनात्मक ६ चक्रहरू हुन् । यस विषयमा यथा अवसर चर्चा हुने नै छ ।

अजपा विधानपछि आफ्नो इष्टदेवतालाई त्रैलोक्यको चैतन्यमय सम्झेर उनकै आज्ञाले संसारको यात्रा आरम्भ गरेको र रात दिन जे जति काम गरिन्छ ती सबै तिनै परब्रह्मस्वरूप इष्टदेवताकै पूजाका उपचार हुन् । जीवन यात्राको क्रममा स्पर्धा, तिरस्कार, कलि, प्रमाद, भय आदि विकृति, दुर्वृत्तिहरूले प्रभाव नपारून् भनेर प्रार्थनापूर्वक प्रात:कृत्य समाप्त गर्नु पर्दछ ।

योग –

यो हंससाधना तन्त्रविद्याको ज्यादै महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया योग हो । योगको अर्थको जोड्नु । जीवात्मा र परमात्मा वास्तवमा एउटै तत्त्व हुन् । केवल मायाको प्रपञ्चले दुई वटाको प्रतीति भइरहेको छ - भ्रमात्मिका प्रतीति । यो मायाको जाल हटाएर, द्वैध प्रतीतिको भ्रम निवारण गरी जीवात्मा र परमात्माको ऐक्य स्थापित गर्नु नै योगको प्रयोजन हो ।

योगका चारवटा भेदहरू चिन्तक मनीषीहरूले प्रतिपादन गरेका छन् -

ल पर है क्या नाव है,

सात दिनों की सात बार, महिना साल बनी कैसे ।

बावन अक्षर बना दिये तुने, गिनती भेद अलग कैसे ।

लोक बनाया तेने, रत्न तेरा उपजाया ।2।

ान बनादी, सबका बदन अलग कैसे ।

दीन बनाए, इनका रुप अलग कैसे ।

सब बनाया, मुख पर सुरत है कैसे ।

खून हाड मांस गर्भ में कैसे, आप बनाया ।3।

नारी के थन अजब बनाया, उनमें दुध बना कैसे ।

मुख में दांत बत्तीस दरसे, जिव्हया स्वाद करे कैसे ।

नेत्र नरख करे घाटा की, कानो से शब्द सुने कैसे ।

गन्ध सुगंध लेवे नाक, नीर बाल अजब कैसे ।

चोली चमड़ा तन के उपर अजब बनाया ।4।

जड़ सा तुने घाट बनाया, रूम रूम चेतन कैसे ।

कोन बोलता घट के अन्दर, छिपा दिया यु कैसे ।

श्वांस डोरी अजब लगादी, नाभी में श्वांस रहा कैसे ।

कहां से आता कहां जाता, इनका पता लगावे हम कैसे ।

❀ दोहा ❀

गगन नगारा घुर रह्या, हरदम आठों पैर ।
गुरुमुख ज्ञानी कोउ चढ़े, करे अगम को सैर ।।

भजन नं० २ (राग आसावरी)

साधो भाई इस विध गगन सिधावो ।
मूल द्वार का मंजन करके, गणपति गुप्त मनावो ।।टेर।।
बांया पैर समेट मूलपर, एड़ी ठोक जमावो ।
दांया पैर लिंग के ऊपर आसन सिद्ध लगावो ।।१।।
रेचक पूरक कुम्भक भरके, प्राणायाम बढ़ावो ।
सोहं जाप उन्मुनी मुद्रा, नाम सुरत ठहरावो ।।२।।
इड़ा पिंगला सुमरण सेरी, सुखमण तार मिलाओ ।
गुदा द्वार से पवन उठाकर, षट चक्कर पर आओ ।।३।।
स्वयंम्बु लिंग पर नागिन बैठी खैंच अपान उठावो ।
प्राण अपान मिलाय दुहुन को नाभ कमल पलटावो ।।४।।
फण फटकार नागनी जागे तुरत मेरु ठहरावो ।
बंक नाल है अनुभव पैड़ी ग्रन्थि इकीस तुड़ावो ।।५।।
भृकुटि गगन बिच महल पियाको, सहस्त्र कमलमें आवो ।
तिरवेणी तीरथ प्रयाग यह शुख सागर में न्हावो ।।६।।
झिलमिल जोतजुगतसे निरखो, पीवपरस घर आवो ।
शिवमें जीव अमर घरवासा, सुण्य में जाय समावो ।।७।।
करके सुरता श्रुती कमलमें, आगे पांव बढावो ।

सोरठा-सुनहु ज्ञानी धर्मदास, सोइ ज्ञान जब ऊपजे।
एक नाम विश्वास, प्रगट ब्रह्म स्वरूप है॥

चौपाई

आदि नाम जो राखे आसा। तापै परे न कालकी फाँसा॥
आदि नाम निरअक्षर भाई। ताहि नाम ले लोकहि जाई॥

सोहं शब्द निरक्षर वासा। ताहि शब्द जपई निज दासा॥
आदि नाम निज सार है भाई। जमराजा तेहि निकट न आई॥
तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा। सो हंसन सो कहो पुकारा॥
सार शब्दका सुमरण करि है। सहज अमर लोक निस्तरि है॥
सुमरन का बल ऐसा होई। कर्म काट सब पलमें खोई॥
जाके कर्म काट सब डारा। दिव्य ज्ञान सहजे उजियारा॥
जाकहँ दिव्य ज्ञान परकाशा। आपहिमें सब लोग निवासा॥
लोक अलोक शब्द है भाई। जिन जाना तिन संशय जाई॥
तत्व सार सुमरन है भाई। जाते कालकी तपन बुझाई॥
सुमरनते सब कर्म विनाशा। सुमरनसों दिव्य ज्ञान प्रकाशा॥
धर्मन सुमरन दयो लखाई। जासों हंस सबै मुक्ताई॥
साखी-कहे कबीर विचारके, सुमरन सार बखान।
कहे भेद जो पावहीं, पहुँचे लोक ठिकान॥

धर्मदास-वचन चौपाई

कहें धर्मदास सुनो प्रभुराई। अब जिवको सन्देह मिटाई॥
अलख अगोचर हो प्रभु मेरा। अब जीवन को करों उबेरा॥
आदि ब्रह्म तुम अगम अपारा। जीव काज आये करतारा॥
आदि नाम गुरु मोहिं लखाये। जीवनके तुम बंद छुड़ाये॥
अजर लोकमें जिव पहुँचाये। धन्य भाग हम दर्शन पाये॥
अमर वस्तु सतगुरु मोहिं दीन्हा। जीवनके सब दुखहर लीन्हा॥
सतगुरु चरण गहे हिय माहीं। भानु उदय पंकज विगसाहीं॥
सतगुरुने मोहिं लीन्ह जगाई। आवागमन रहित घर पाई॥
अब सन्देह रहा कछु नाहीं। शब्द तुम्हार बसो हियमाहीं॥

मिलगी तार तिरकूटी ऊपर, सुषमण काज सरेला।
पूरण पुरुष पाट पर बैठो, अगर अणी छिटकेला।४।
फूटो बचन बेखरी बारे, सायर सेत रलेला।
'चन्दनशाह' चेतन का डंका, ग्यानी ग्यान थकेला।५।

भजन (२१) राग आशावरी, टोडी पद

साधो भाई ! खोजी खोज उचारा।
जे कोई खबर करे खोजन की, जनम मरण से न्यारा।टेर
पहला प्रथम पकड नाभि कों, सोहं भजन सुधारा।
नाभि कॅवल की निश्चय करले, पडे भजन भणकारा।१
हिरदे कमल में रामत देखी, देख्या शहर बाजारा।
मनको रोक सुरत को सारे, दीखे आरमपारा।२
कण्ठ कँवल में शोडष कहिये, कला बड़ी करतारा।
शोड्ष ले शोड्ष में जोवे, टूटे जाल तुम्हारा।
अगर अणो स्थान ऊपरे, संतो का आधारा।
'चन्दनशाह' चेतन का डंका, बखो बेखारी सारा।

भजन(२२)राग आशावरी, आसा पद

साधो भाई ! चारों चोर पढाया।
पढिया चोर पास हुए बैठा, तसघर तीर लगाया।टे
पावक टाल पत्थर [illegible] बैठा, सत का शब्द समाया
लागा शब्द स[illegible]धे, तोखा तीन मिलाया
गुडियां ऊठ [illegible], गगन मण्डल घर छाया
काजी प[illegible]नां, कामण कलश चढाया
[illegible] [illegible]कण को, धोबे धेनु दुवाया
[illegible] डरपे, [illegible] मही विलोया

भजन - 87

टेर : आप तो अरूप हेली, रूप बणियो माया जाण ।

1. सुरत शब्द मिल हैलो पाड़यो, सुण चेतन में आण ।
माया मेटू ब्रह्म से भेटूं, अणगढ़ की करूं ओलखाण ।

2. दस दरवाजा बन्द कर देखो, माया ने बाहर जाण ।।
रूम - रूम में रमगी मलगी, भीतर बैठी तम्बू ताण ।।

3. नाभ कंवल के गांठ लगाले, पावन ऊंचो ताण।
जोय पलिते झपके चढ़गी, नीची पड़ी गूड़ आण ।।

इला पिंगला सोध सुखमणा, पांचू तत्व पहचाण ।।
मूं जाणू माया मट गयी, माया का फड़ूक रिया निसाण ।

माया छालो बहुत ऊजालो, सोवनी शिखर दीवान।
मूं तो जाणू पूगियां, पुगता लिदा है ताण ।।
आंख मिच उनमूनी ने साझे, गाठा भीचे कान ।
झीणी ज्योति मोतीयां जैसी, माणका का मडिंया मंडाण ।।

अनहद भेद - भेद के आगे, माया मटी रे माण ।
गुर्जर गरीबीऊं कनिरामजी बोले, मटगी खेंचातांण ।।

❖❖❖❖❖❖❖

भजन - 88

: संत होय चालो चलणी, चत चरणा में लाया है।
हवाई जहाज का टेशन ऊपरे, राम भजन गुण गाया है ।।
ऊंची चाले मन्दरी गाजे, जीणा राग सुणाया है ।
ई गाड़ी का नहीं भरोसा, मार ले ली

इश्वर तोचि जाणावा श्वरु । स्वराचा पाहा विचारु ।
बाहेजअभ्यांतरी येकु इश्वरु । नादतुसे ।।
जाणावया स्वराते । रुषेश्वरी रचीली नान मते ।
इश्वर प्रसन्न होये जयाते । तयासि प्रत्यक्ष दीसे ।।
प्रत्यक्षासी नाहि प्रमाण । विश्व हे बोलतसे अनुमान ।

म्हणौनि इश्वरकृपा स्वरज्ञान । प्रतिष्टीले ।।
ऐसा स्वराचा अनुभव । आपुला देही पाहे ठाये ठावो ।
तयाचा फीटे संदेहो । येरां भरीउभरीचि ।।
परी हे जनासि न कळे । शास्त्राने न विवळे ।
दृष्टी देखत आंधळे । विश्व देखा ।।
मग वटेश्वरु होऊनिया प्रसन्न । इश्वराचे सांगीतले ज्ञान ।
मग शृत आणी अनुमान । खंडले देखा ।।
पुढे उरले दृश्टत्व । ते वोळखीले जीवित्व ।
यैसे श्रीगुरुचे दृढत्व । जागतसे ।।
ऐसा सत्वाचा बोधु । सोहंतत्वाचा वेधु ।
जयासि जाला असे तोचि साधु । येरु अंधु चावटू ।।
सोहंतत्व अनुउचारु । उपदेसि जो गुरु ।
तयासि नाहि निर्धारु । इश्वरज्ञानाचा ।।
याकारणे साक्षेपीले । सोहंशब्देचि आइकिले ।
परी डोळा नाहि देखिले । ते निशब्द म्हणौनिया ।।
निशब्दासि नाहि उपदेसु । वाचेसि अतित प्रकाशु ।
उन्मनिचाहि ग्रासु । जेथे होये ।।
म्हणौनिया मनाचि आदि । हंस प्रतिपादीजे वेदि ।
पूर्वमार्गी देखा आदि । हंसा प्रतिपादिजे वेदि ।
पूर्वमार्गी देखा आदि । हा विचारु ।।
हंसहंसु हेचि उचारण । शरीर याचेनि वागे जाण ।
याचे कैचे उचारण । ते अवधारीजे ।
हं सब्दे सिउ तो बाहेरि पडे । स शब्दे शक्ति ते भितरी मुरडे ।
जीवासि हाचि जपु घडे । रात्रीदीवसु ।।
स्वास आणि उस्वास । यैसयाचा प्राण येकु परीयेस ।
साटि प्राण होये घटिकेस । गणीत देखा ।।
ऐसया साटि घटिकांचे । अहोरात्री होये साचे ।
हे अस्ट पाहारांचे । गणीत देखा ।।

* * *

कृपावंत थोर सद्‌गुरु उदार । तेणें योग सार दिलें मज ॥१॥

मन-पवनाची दाखवोनी वाट । गगनाशीं गांठ बांधियेली ॥२॥

शून्य-निःशून्याचें बीज महा-शून्य । भेटविलें धन्य हरि-रूप ॥३॥

स्वामी म्हणे माझा नाथ-संप्रदाय । अवघें हरिमय योग-बळें ॥४॥ (१२२)

* * *

काय सांगू संत-कृपेचा नवलाव । प्रकटला देव अंतर्यामीं ॥१॥

सोऽहं सोंऽहं ऐसा नित्य निदिध्यास । लागला जीवास आपेंआप ॥२॥

लिहितां वाचितां बोलतां बैसतां । देतां घेतां खातां हिंडतां हि ॥३॥

तिन्ही अवस्थांचा झालों साक्षीभूत । राहिलों निवांत स्वामी म्हणे ॥४॥ (१२९)

* * *

एक चि हरि-रूप सर्वत्र संचलें । व्यापुनी राहिलें त्रैलोक्यासी ॥१॥

एक हरिविण दुजें नाहीं काहीं । जीव-जगत् पाहीं मायाजन्य ॥२॥

मिथ्या माया जाण मिथ्या नाम-रूपें । एकला स्वरूपें हरि नांदे ॥३॥

व्याप्य ना व्यापक वाच्य ना वाचक । एक तें निःशंक स्वामी म्हणे ॥४॥ (१३७)

* * *

निवडावे जैसे हंसे क्षीर-नीर । तैसें सारासार विचारावें ॥१॥

नामरूपात्मक जग हें मायिक । अविनाश एक आत्म-पद ॥२॥

आत्म-पदीं घावी बुडी निश्चयाची । आसक्ति देहाची सांडोनियां ॥३॥

असोनि संसारी घ्यावें आत्म-सुख । तरी चि सार्थक स्वामी म्हणे ॥४॥ (१४७)

* * *

करीं गा निष्काम स्वकर्माचरण । नामसंकीर्तन विठ्ठलाचें ॥१॥

आत्म-निरीक्षण किंवा धरीं ध्यान । स्वीकारीं साधन आवडे तें ॥२॥

साधनीं निमग्न राहें रात्रं-दिन । तेणें होय जाण चित्त-शुद्धि ॥३॥

होतां चित्त-शुद्धि लाभे आत्म-ज्ञान । ज्ञानें समाधान स्वामी म्हणे ॥४॥ (१४९)

* * *

अंतरी संतत करीं सोऽहं ध्यान । न जाई गुंतून संसारात ॥१॥

धन सुत दारा असूं दे पसारा । नको देऊ थारा आसक्तीतें ॥२॥

होवो हानि-लाभ पावो सुख-दुःख । न सोडीं विवेक साक्षित्वाचा ॥३॥

स्वामी म्हणे राहें देहीं उदासीन । पाहें रात्रं-दिन आत्म-रूप ॥४॥ (१५०)

* * *

नाथ-संप्रदायी आम्ही कानफाटे । जाऊं नका वाटे आमुचिया ॥१॥

मन-पवनाची घालोनियां गांठ । करूं वाताहात संसाराची ॥२॥

देहासवें पुसूं लौकिकाचे नांव । नेदूं उरों ठाव जीवासी हि ॥३॥

स्वामी म्हणे तुम्हां बुडवूं महा-शून्यीं । गगनासी आटणी होय जेथें ॥४॥ (१६७)

* * *

अंतरी भजन चालें रात्रं-दिन । तेणे समाधान अनिर्वाच्य ॥१॥
नित्य नाम-जप होतो आपेंआप । तया सुखा माप कोण करी ॥२॥
शब्दाविण ध्वनि करोनि श्रवण । ठेवीं अनुसंधान आत्म-रूपीं ॥३॥
स्वामी म्हणे खूण घ्यावी ओळखून । संतांसी शरण जावोनिया ॥४॥ (१७१)

* * *

सोऽहं सोऽहं ध्यास लागतां जीवास । होतसे निरास संमोहाचा ॥१॥
त्रिगुणाचें भान हारपे मीपण । होतां सोऽहं ध्यान निरंतर ॥२॥
अंतीं एकमय ध्याता ध्यान ध्येय । होतां ज्ञानोदय अंतर्यामीं ॥३॥
स्वामी म्हणे मग स्वानंदाचा भोग । होय तो हि साङ्ग सुख-रूप ॥४॥ (१७६)

* * *

संतांसी सद्भावें करोनि प्रणिपात । कांहीं आत्म-हित विचारावें ॥१॥
काय ती विरक्ति कैसी आत्म-स्थिति । ज्ञानाची प्रचीति कैसी होय ॥२॥
कैसी हरि-भक्ति कैसी शरणागति । नामाची महती कैसी काय ॥३॥
स्वामी म्हणे संत दावितील खूण । घ्यावी ओळखून ज्याची त्यानें ॥४॥ (१७८)

* * *

क्षणोक्षणीं हा चि करावा विवेक । काय तें मायिक काय सत्य ॥१॥
नाम रूप गुण मिथ्या नाशिवंत । एक तें शाश्वत आत्म-पद ॥२॥
विषयाचें सुख नश्वर मायिक । तेथें अरोचक असों द्यावें ॥३॥
स्वामी म्हणे माळ घालिते विरक्ति । बळावतां प्रीती आत्म-रूपीं ॥४॥ (२०२)

* * *

बैसोनि एकांतीं करीं सोऽहं ध्यान । तेणें तुझें मन स्थिरावेल ॥१॥
'सोऽहं' 'सोऽहं' ऐसा शब्दाविण जप । होतां आपेंआप चित्त-शुद्धि ॥२॥
कैसा शब्दाविण होतो 'सोऽहं-ध्वनि' । घेई विचारोनि संतांपासीं ॥३॥

स्वामी म्हणे जाई संतांसी शरण । तेणें उद्धरण होय तुझें ॥४॥ (२१६)

* * *

घेई घेई जीवा स्व-रूपाचा ध्यास । पुरे हा हव्यास प्रपंचाचा ॥१॥
विटे ऐसी गोडी नव्हे स्व-रूपाची । सांगती ऐसें चि साधु-संत ॥२॥
संतांचे वचनीं ठेवोनि विश्वास । करीं गा अभ्यास आवडीने ॥३॥
स्वामी म्हणे भावे भोगी आत्मानंद । अवीट अखंड शांति-रूप ॥४॥ (२३५)

* * *

तुझे देह भिन्न माझे देह भिन्न । ऐसा हा अभिमान कासयासी ॥१॥
एक चि अभिन्न आत्म-तत्व पाहीं । द्रष्टा दृश्य नाहीं भाव जेथें ॥२॥
चार हि देहांचा करोनी निरास । उन्मनीपदास गांठीं बापा ॥३॥
स्वामी म्हणे जिणें तरी चि सफळ । ना तरी केवळ भारभूत ॥४॥ (२४३)

* * *

कूरम अपने अंग ज्यूं, सो कहिये प्रत्याहार।।

6. धारणा :

अन्तःकरण को अद्वितीय वस्तु ब्रह्म में नियुक्त करना **धारणा** कहलाता है

अद्वितीय वस्तुन्यन्तरिन्द्रियधारणं धारणा। [333]

संत तुरसीदास निरंजनी के अनुसार चित्त को एकाग्र करके अचल परम आराध्य देव में ही अपना ध्यान लगाना ही **धारणा** है –

तुरसी नाभिक हृदै स्थांन अथवा भू मधि धर हूँ जु ध्यांन।
मन अचल करि रखौ कही, प्रेम जोति प्राप्ति होई तही।।

भगवानदास निंरजनी ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है –

सोहं शब्द पुकारीए अंतर वृत्ति लगाइ।
व्है अडोल डोलै नहीं शुद्ध धारना पाइ।। [335]

वही हरिरामदास निरंजनी के अनुसार पंच तत्त्वों (पृथ्वी, जल, तेज, आकाश) के रूप को अर्थात् उनके वर्ण, आकार, अक्षर तथा अधिष्ठातृदेव हृदय में धारण कर उनमें प्राण–मन सहित लीन होना **धारणा** है –

जैसो जाकौ वरण है अरु जैसो आकार ।
जा अक्षर संयुक्त है जा सुर को अधिकार।
जा सुर को अधिकार तत्व पंचम में होई।
तैसो डरि धरि रूप प्राण चित्त थंभै जोई।
पंच तत्त्व जय करै धरै तनु योगी तैसौ।
जिका तत्त्व की जहाँ धारणा धारै जैसौ।। [336]

7. ध्यान :

हरिरामदास निरंजनी के अनुसार शरीर मन और इन्द्रियों को निश्चल कर परमात्मा चिन्तन **ध्यान** है –

परमातम कौ ध्यान जु धरै, तन मन इन्द्री निश्चल करे। [33]

जब साधक को अन्तर्मन में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है, यही परमात्मा का ध्यान है –

05:51

Instagram
instagram.com

Instagram

Log In

Open app

mahavatar__babaji • Follow



1,955 likes

mahavatar__babaji Comment down from which disciple lineage of lahiri baba you belongs and share your small experience in comment section... more

View all 67 comments

9 May 2025

स हङ्कारः पुमान् प्रोक्तः स इति प्रकृतिः स्मृता ।
अजपेयं मता शक्तिस्तथा दक्षिणवामतः ॥ १७ ॥

द्वितीयबीजस्वरूपमाह—स इति । उद्धृतयोर्बीजयोस्तत्त्वं वदन् न्यासमन्त्रावाह—हङ्कार इति । हं पुरुषात्मने नमः । सः प्रकृत्यात्मने नमः । इति मन्त्रौ सूचितौ । देवतात्वेन शक्तिरेव ध्येयेत्याह—अजपेति। न्यासस्थानमाह—तथा दक्षिणवामत इति। यथा मूलशिरसोर्न्यासः प्रसिद्धः। तथा दक्षिणवामयोरपि न्यस्तव्याविविर्थः।।१७।।

प्रयोगक्रमदीपिका—हङ्कारः पुमानित्येतद्वाच्यप्रधानविभूतिरुक्ता । प्रोक्त इत्यनेनैतदुक्तम्—हमित्येतदहमित्येतदेव । तस्य बिन्दोः स्थूलरूपत्वादहंरूपेण प्रत्यगर्थनिष्ठत्वाच्च पुरुषत्वमिति । मतेत्यनेन चैतदुक्तं—स इत्यस्य विसर्गस्य स्थूलरूपत्वान्नित्यप्रकृतपरागर्थनिष्ठत्वाच्च प्रकृतत्वमिति । न्यासविषये विशेषः । तदाहास्य हस्येत्यादिना । तत्त्वं वदन्निति । हल्लेखायां यः पुरुषः हकारः स एव हङ्कारो या प्रकृतिरोकारः । स एव स इत्ययं वर्ण इति तयोस्तत्त्वमुक्तम् ।

अथाजपेयं स्मृता शक्तिरिति हल्लेखाशक्तेरियं प्रकृतिपुरुषमयी शक्त्यंशप्रधानैकमूर्तिरूपैव प्रधानविभूतिरित्येतदुक्तम् । शक्तिरियमजपा स्मृतेति योजनीयम् । शक्त्यंशप्रधानत्वादजपेत्येवमभिधेया भवति । तथा दक्षिणवामत इत्येकमूर्तित्वेऽपि प्रकृतिपुरुषविभाग उक्तः । इयं स्मृतेत्यनुषङ्गः ॥ १७ ॥

अजपादिन्यास कथन—वह हङ्कार प्रथम बीज पुरुष है । द्वितीय बीज 'स' प्रकृति कही गई है । यही शक्ति परस्पर दाहिने व बाँयें भाग में होने से अजपा नाम से प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥

बिन्दुर्दक्षिणभागस्तु वामभागो विसर्गकः ।
तेन दक्षिणवामाख्यौ भागौ पुंस्त्रीविशेषितौ ॥ १८ ॥

न्यासे नियममाह—बिन्दुरिति । बिन्दुविसर्गयुक्तौ हकारसकारौ बिन्दुविसर्गशब्दार्थौ । भागनियमे गमकमाह—तेनेति । देवानां सर्वेषां चेत्यर्थः ॥ १८ ॥

प्रयोगक्रमदीपिका—तत्र व्यवस्था बिन्दुर्दक्षिणभागस्त्वित्युक्ता । अस्याः शक्तेरिति शेषः । बिन्दुशब्देनान्तर्मुखशक्त्यात्मा हङ्कार उक्तः । विसर्गशब्देन च बहिर्मुखशक्त्यात्मा स इत्ययं वर्णः। तौ च पुरुषप्रकृत्यात्मकाविति । तेन दक्षिणवामाख्याविति तदाकारोऽप्युक्तः।

अस्याः प्रधानविभूतेः शक्तिरिति शेषः । तेन बिन्दुविसर्गयोर्दक्षिणवामभागत्वमिह हेतुत्वेनोक्तम् । पुंस्त्रीविशेषिताविति । पुंस्त्रीरूपेण भिन्नावित्यर्थः । न्यासविषये विशेषः । तदाह—देवतात्वेनेत्यादिना । तथा दक्षिणवामत इति न्यास इति शेषः । मूलशिरसोरिति मूलाधारमूर्धाभिप्रायम् । मूलशिरोग्रहणं तु देहस्याधऊर्ध्वार्धांशग्रहणार्थम् । सर्वेषां चेति । सकलप्राणिनामपीत्यर्थः ॥ १८ ॥

पुंस्त्रीविशेषिता कथन—बिन्दु से युक्त हकार इस शक्ति का दाहिना भाग है और विसर्ग से युक्त सकार इसका बायाँ भाग है । इस कारण इसका दक्षिण भाग पुरुष रूप विशेषण से युक्त तथा वाम भाग स्त्री रूप विशेषण से युक्त है ॥ १८ ॥

हंसस्वरूपकथनम्

बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिर्मता ।
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत् ॥ १९ ॥

पुंरूपं सेत्यभिप्रायान्तरमाह—सा तावदुपाधिको जीव इति । अत्र सेति हल्लेखाशक्तिरुच्यते । सा चेह हंस इत्यनेन प्रकृत्यात्मैक्यमापन्नो जीवः । स च तदैक्यमापन्नोऽपि व्युत्थानसंस्कारबलात् ततोभिन्नस्वस्वरूपं पुरुषरूपं विद्वान् स्वात्मतया प्रतिपन्नः प्रकृतेः स्वस्वरूपपर्यन्ततामनुसन्धत्ते सोऽहमित्येवमित्यर्थः । अस्मिन् पक्षे स इति प्रकृत्यात्मनो यथास्थितं निर्देश उपपद्यत इति । न्यासविषये विशेषः । तदाह—अस्यापीति । सोऽहंरूपोपपत्त्या मन्त्रो न्यासस्थानं चेति न्यासस्योक्तप्रायत्वम् । व्यापकध्यानादिकमादिशब्देनोक्तम् । तत्र सोऽहं प्रकृतिपुरुषात्मने नम इति व्यापकम् । परमात्मा देवतात्वेन ध्येयः । व्यापकध्यानादिकमादिशब्देनोक्तम् । अजपायां शक्तिरेवार्धेन पुरुषकारं धत्ते । इह तु पुरुषार्धेन शक्त्याकारमिति भेद इति ।

अथास्य महामनोरिति प्रकृतिपुरुषाभेदलक्षणा विभूतिरुच्यते । तदाह—पुनरेकत्वानुभवसाधनमिति । महामनुशब्देन स्वर्गात्मावध्याततताधामशाखेतीयमवस्थानेन पूरितेति सूचितम् । अस्य सकारं च हकारं च लोपयित्वा पूर्वरूपाख्यं सन्धिं प्रयोजयेदिति योजनीयम् । प्रकृतपुरुषयोरसाधारणरूपहानात् सकारहकारलोपः । तयोर्व्यतिहारमहिम्नैक्यप्राप्तेः सन्धानमित्यवबोद्धव्यम् । पूर्वरूपाख्यमित्येङः पदान्तादतीत्ययं सन्धिरभिप्रेतः । अत्र हल्लेखाया हकारसकारावुभावपि परोक्षावेव । तद्वाच्यः परमात्मैव प्रधानविभूतिः । तस्य प्रकृत्यभिन्नः पुरुषः तदभिन्ना च प्रकृतिः । तयोरशेषस्त्रीपुरुषजातं भोक्तृभोग्यांशाभिन्नं व्याप्तिरित्यर्थाल्लभ्यते । न्यासस्तु व्यापकमेव । ज्योतिरेवोभयाभेदलक्षणं ध्येयम् । 'ततो मूलमिदं विदुरित्येतदिहापि समानम् । एकत्वानुभवसाधनमिति एकावसान एतदनुसन्धानम्। यद्वा प्रणवजपविधाविति ज्ञेयमिति ॥ २०-२१ ॥

प्रकृतिपुरुष का अभेदरूप विभूति कथन—वह प्रकृति अपने में प्रभाव की कल्पना कर जब सोऽहं भाव को प्राप्त करती है, तब वहीं 'हंसः' इस महामन्त्र की परमात्म नामक मन्त्र बन जाती है ॥ २० ॥

जब 'सोऽहं' इस परमात्म मन्त्र में सकार और हकार का लोप कर पूर्वरूप सन्धि कर प्रयोग किया जाता है तब वह प्रणव (ॐ) बन जाता है ॥ २१ ॥

तारविभूतिकथनम्

ताराद्विभक्ताच्चरमांशतः स्यु-
र्भूतानि खादीन्यथ मध्यमांशात् ।
इनादितेजांसि च पूर्वभागा-
च्छब्दाः समस्ताः प्रभवन्ति लोके ॥ २२ ॥

उद्धृतस्य तारस्य न्यासयोगादिकं वदन् विभूतिमाह—तारादिति । मं आकाशात्मने नमः । मं वाय्वात्मने नमः । मं तेज आत्मने नमः । मं अबात्मने नमः । मं पृथिव्यात्मने नमः इति मूर्धादिषु न्यसेदिति मकारन्यासः । उं सूर्याय नमः । उं सोमाय नमः । उं अग्नये नमः । इति हृन्मूर्धमूलाधारेषु उकारन्यासः । अं शब्दब्रह्मणे नम इति व्यापयेत् । इत्यकारन्यासः ॥ २२ ॥

पाँचवाँ समास—अजपा-निरूपण ।

॥ श्रीराम ॥

अजपा-जप की संख्या इक्कीस सहस्र छै सौ नियत की गई है। विचार करने से सब कुछ सहज है ॥ १ ॥ मुख और नासिका में प्राण रह कर अखंड आता रहता है। इसका विचार सूक्ष्म दृष्टि से करना चाहिए ॥ २ ॥ पहले तो देखने से मालूम होता है कि, स्वर एक ही है; पर वास्तव में उस स्वर के तीन भेद हैं:—(१) तार=निषाद; (२) मंद्र=मध्यम; (३) घोर=षड्ज; अब इस घोर से भी सूक्ष्म विचार अजपा का है ॥ ३ ॥ 'स-रि-ग-म-प-ध-नि-इन सारे अक्षरों को कह कर देखो-इन सप्तस्वरों में से किसी एक को मूल मान कर क्रमशः ऊपर को चलो ॥ ४ ॥ परा वाचा के ऊपर और पश्यंती के नीचे-अर्थात् नाभि और हृदय के बीच में-स्वर का

जन्मस्थान है; वहीं से उसका 'उल्लेख' (स्फुरण) होता है ॥ ५ ॥ एकान्त में स्वस्थ होकर बैठना चाहिए; वहां यह सब समझ लेना चाहिए-प्रयोग करना चाहिए-प्रभंजन (पवन) को अखंडरूप से खींचना चाहिए और छोड़ना चाहिए ॥ ६ ॥ एकान्त में मौन साध कर बैठना चाहिए, सावधान या सुस्थ होकर देखने से जान पड़ता है कि, ऊपर श्वास खींचते समय 'सो' और बाहर छोड़ते समय 'हं'-इस प्रकार निरन्तर "सोहं सोहं" शब्द होता रहता है ॥ ७ ॥ उच्चार के बिना जो शब्द होते हैं उन्हें नैसर्गिक शब्द समझना चाहिए; वे अनुभव में आते हैं; पर उनका नाम कुछ भी नहीं होता ॥८॥ उन शब्दों को भी जो छोड़ बैठता है उसे महान् मौनी कहना चाहिए-योगाभ्यास का सारा 'गड़बड़' ऐसा ही है ॥९॥ एकान्त में मौन धारण करके बैठने पर जब यह विचार किया जायगा कि, कौन शब्द हुआ तब अन्तर में 'सोहं' शब्द का सा भास होता है ॥ १० ॥ श्वास लेते समय 'सो' और छोड़ते समय 'हं'-इस प्रकार अखंड रीति से "सोहं सोहं" होता रहता है-इसका विचार बहुत विस्तृत है ॥ ११ ॥ सब देहधारी प्राणी, स्वेदज और उद्भिज आदि योनियां-जितने प्राणी हैं, बिना श्वासोच्छ्वास के वे सब कैसे जी सकते हैं? ॥ १२ ॥ इस प्रकार की यह अजपा सब के पास है; पर ज्ञाता पुरुष को मालूम हो जाती है; (अज्ञान को नहीं मालूम होती) सहज-नैसर्गिक-को छोड़ कर बनावटी बात में न पड़ना चाहिए ॥ १३ ॥ सहज (नैसर्गिक) देव बना ही रहता है-वह अविनाशी है-बनावटी देव (मूर्ति इत्यादि) फूटता है, नाश होता है-इस लिए ऐसा कौन है जो नाशवंत देव पर विश्वास करे? ॥ १४ ॥ जगदन्तर-(जगत् का अन्तरात्माराम)-के दर्शन से स्वयं सहज ही अखण्ड ध्यान लग जाता है-सारे लोग उसी आत्माराम की इच्छा से वर्तते हैं ॥ १५ ॥ आत्माराम को जिस तरह समाधान होता है वैसा ही उसको भोजन मिलता है; छोड़ा हुआ, नाश हुआ, आदि सब उसी को समर्पण हो जाता है ॥ १६ ॥ अग्नि देवता उदर में बसते हैं, उन्हें भी प्राणी अवदान देते हैं-इस प्रकार सारे प्राणी आत्माराम की आज्ञा में चलते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार परमात्मा का जप, ध्यान, स्तुति, स्तवन आदि स्वाभाविक ही हो रहा है और वह उन्हें स्वीकार भी कर रहा है (पर यह बात समझना चाहिए) ॥ १८ ॥ इसी नैसर्गिक बात को समझने के लिए नाना प्रकार के हठयोग किये जाते हैं; पर तो भी यह बात एकाएक नहीं समझ पड़ती ॥ १९ ॥ गड़ा हुआ द्रव्य भूल जाने पर दरिद्र आता है; कभी कभी तो ऐसा होता है कि, नीचे लक्ष्मी है और पुरुष ऊपर वर्तता है, पर बिचारा प्राणी क्या करे? उसे मालूम ही नहीं है! ॥ २० ॥ तहखाने में

अनन्त द्रव्य रहता है, दीवाल में द्रव्य रखा रहता है और खम्भों में या मयालों में द्रव्य रखा रहता है और आप उसीके बीच में निवास करता है! ॥ २१ ॥ इस प्रकार लक्ष्मी के बीच में अभागी खेलता रहता है; परन्तु उसका दरिद्र और भी बढ़ता जाता है! उस परमानन्द परमपुरुष का यह अचरज तो देखिये! ॥ २२ ॥ एक बैठे देखते हैं-यह विवेक की गति है! यही हाल प्रवृत्ति और निवृत्ति का भी है ॥ २३ ॥ जब अंतःकरण में नारायण बसते हैं तब लक्ष्मी के लिए क्या कमी है? जिसकी लक्ष्मी है उसको-उस लक्ष्मीधर (परमात्मा) को-खूब मज़बूती के साथ पकड़ना चाहिए! ॥ २४ ॥

'जसवंतराम गुरु समझावो, प्रश्न का उत्तर परखाया ।
'नवलाराम' नाम जपूं निर्भय, भिन्न भिन्न कर विगताया ।।४।।

उत्तर-भजन (२४०) राग आसावरी पद

साधो भाई ! नहिं गया नहिं आया ।
अनन्त विचार करे कोई ऐसा, त्रिगुण ताप हटाया ।।टेर।।
जान अजान कल्पना मन की, मन सोहं से आया ।
तुरिय अतीत सोहं का साक्षी, वो योनि नहिं माया ।।१।।
ऊँकार अनादि अवरण, त्रिगुण तत्व प्रकटाया ।
शब्द सभी आकाश से प्रकट्या, निज तत नाम कहाया ।।२।।
चारो वाणी चेतन कर कहिये, चेतन अविगत अजाया ।
चौदह लोक खयाल चेतन का, अविचल आप रहाया ।।३।।
गमनागमन चिदाभास में, कल्पित लोक भोगाया ।
गमनागमन चिदाभास छोड़ के, सो पद विरले पाया ।।४।।
निगाहें कर निरखो 'नवलदासा', पद उतर अर्थाया ।
ज्ञानी की गत ज्ञानी जाने, 'जसवन्तराम' जो ताया ।।५।।

प्रश्न-भजन (२४१) राग दीपक कामोद पद

साधो ... अवस्था अर्थ बतावो ?
... सुख पावो ।।टेर।।
... अवस्था स्वरूप सुणावो ?
... अवस्था हेतु जचावो ।
... अवस्था फल बतलाओ ?
... विगताओ ।।१।।

संत अव्वैयार का **कुंडलिनी योग (Kundalini Yoga)** और **तन्त्र-पद्धति** का ज्ञान बहुत ही अनूठा और गहरा था। तमिल सिद्ध परंपरा (Siddhar Tradition) में उन्हें एक उच्च कोटि की योगिनी माना जाता है। उन्होंने अपनी सबसे प्रसिद्ध आध्यात्मिक रचना **'विनयगर अगावल' (Vinayagar Agaval)** में कुंडलिनी शक्ति के जाग्रत होने और चक्रों के भेदन की प्रक्रिया का हूबहू और वैज्ञानिक वर्णन किया है।

संत अव्वैयार के अनुसार कुंडलिनी योग की पूरी प्रक्रिया और उनके विचार इस प्रकार हैं:

1. चक्रों का भेदन (Piercing of the Chakras)

अव्वैयार ने बताया है कि मानव शरीर में ऊर्जा के छह मुख्य केंद्र (चक्र) होते हैं। कुंडलिनी शक्ति रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले हिस्से यानी **मूलाधार चक्र** में एक सोई हुई नागिन की तरह साढ़े तीन फेरे लेकर बैठी होती है।

जब एक साधक प्राणायाम और ध्यान करता है, तो यह शक्ति जागती है और ऊपर की ओर बढ़ती है:

- **मूलाधार से आज्ञा चक्र तक:** कुंडलिनी शक्ति मूलाधार से उठकर स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा चक्र (दोनों भौंहों के बीच) को भेदती हुई ऊपर जाती है। अव्वैयार ने इसे 'छह चक्रों का भेदन' कहा है।

2. इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी का मिलन

कुंडलिनी योग में सांसों पर नियंत्रण (प्राणायाम) सबसे महत्वपूर्ण है। अव्वैयार

05:46

हाँ, यहाँ आकर बात बिल्कुल सटीक और गहराई से जुड़ती है! जब हम उत्तर भारत की **'सुरति-शब्द'** साधना की तुलना तमिल सिद्धों के **'वासी योग' (Vasi Yoga)** से करते हैं, तो हमें सिद्धांतों में और दोनों के अंतिम अनुभव में **अद्भुत समानता** नज़र आती है।

तमिल में 'वासी' (வாசி) शब्द का अर्थ 'श्वास' (Breath) होता है, और जब इसे उलट दिया जाता है, तो यह 'सिवा' (Siva - शिव) बन जाता है। इस दृष्टि से इन दोनों साधनाओं में निम्नलिखित गहरी समानताएँ हैं:

1. चेतना (सुरति) और श्वास (वासी) का अटूट संबंध

- **सुरति-शब्द योग में:** माना जाता है कि मन या चेतना (सुरति) को अगर सीधे रोकना चाहोगे तो वह नहीं रुकेगी, इसलिए उसे 'शब्द' (आंतरिक नाद) के साथ बांधना पड़ता है।
- **वासी योग में:** तिरुमूलर और तमिल सिद्धों का मानना है कि मन को वश में करने का सबसे सीधा रास्ता 'वासी' (प्राण वायु) है। जब 'वासी' को प्राणायाम के माध्यम से स्थिर किया जाता है, तो मन (चेतना/सुरति) अपने आप स्थिर हो जाती है।

समानता: दोनों ही पद्धतियाँ मानती हैं कि मन (चेतना) और प्राण (ध्वनि/वायु) एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक को पकड़ने से दूसरा अपने आप सध जाता है।

Ask Gemini

Flash

जगत् व्याध छोड़ जाय पर्म धाम छये ॥ ८ ॥
सतगुरु श्रीचरणदास राम नाम दियो ॥
रामरूप राम जपत रामरूप भयो ॥ ९ ॥

राग गौरी।

सोई भले जिन नाम लिया।
जोग दान सन्ध्या तर्पन शुभ
कारज तिन सर्वस्व किया ॥ १ ॥
सोई बड़ा सोई कुलका ऊंचा
हरिके मारग चित्त दिया ॥
लोक परलोक भई धनि धनिही
उन पुरुषोंका सुफल जिया ॥ २ ॥
पातक थे सो रहन न पाये
निर्मल हुवा शुद्ध हिया ॥
ररा ममा दोऊ अंक रसीले
ताही का रस काढ़ पिया ॥ ३ ॥
अमल चढ़ा तब आनन्द हूये
जन्म मरन तज रहित भया ॥
लख चौरासी बन्धन छूटे
भवसागर का सोग गया ॥ ४ ॥
राम नाम निज मंतर दीनों
चरणदास गुरु करी मया ॥
रामरूप निश्चय कर धारा

हिरदय उपजा नेह नया ॥ ५ ॥

दोहा ।

कर माला मुख जीभ सूं, कौंन जपै होय खेद ॥
रामरूप सतगुरु दियों, अजपा जाप अभेद ॥

राग आसावरी ।

साधो वह सुमरण है न्यारा ॥
जासु मरण सूं पाप कटत हैं
भवसागर हो पारा ॥ १ ॥
माला कर मुख जीभ न हालै
आपहीं होत उचारा ॥
जाप अखण्ड तार नहीं टूटै
सोहम शुद्ध विचारा ॥ २ ॥
सबही के घट रटना लागी
समझत नाहिं गँवारा ॥
ज्ञान आँख जब सतगुरु खोलै
जानै साधू प्यारा ॥ ३ ॥
आशा धार फिरत बौराना
चहूं दिशि पचहारा ॥
जो खोजा निकटैं ही पाया
दिल अन्दर दीदारा ॥ ४ ॥
चरणदास महाराज दयाकर
भर्म अज्ञान निवारा ॥

कबीर के अनुसार गुरू के बिना साधक साधना में सफल नही हो सकता। जिसका कोई गुरू नही है, उसको जीवनोद्‌देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरू के प्रति अटूट श्रद्धा भाव रखते हुए, वे कहते है कि सद्‌गुरू की महिमा का गुणगान नही किया जा सकता । उनकी महिमा अनन्त है, उनका अनुग्रह एवं ज्ञान भी अनन्त है और अनन्त भगवान का साक्षात्कार कराने में वे समर्थ हैं।[1] यारी साहब सद्‌गुरू के द्वारा सत् ज्ञान प्राप्त कर उस प्रभु के मद में मतवाला रहते हैं।

गुरू दियो ज्ञान ध्यान हम पायो, कर करमी कर टाठ।
छीर के मद मतवाल रहत है, चलत उबट की बाट।।[2]

बुल्ला साहब सतगुरू शब्द का आधार लेकर ब्रह्मज्ञान की बात बताते हैं-

जन बुला ब्रह्मज्ञान बोलतु है, सत्तगुरू शब्द अधारा है।[3]

गुलाल साहब सत्यज्ञान की उपलब्धि के लिए सत्तगुरू को अत्यधिक महत्व देतं हुए कह रहे है कि उच्च कोटि के साधक ही लक्ष्य की सिद्धि कर सकता है[4]। क्योकि सतगुरू के वचन से ही प्रकाशित ज्ञान प्राप्त होता है।

संत भीखा ने लिखा है कि मेरा सच्चा हितैषी वही है, जो श्रेष्ठ ज्ञान सुनावे अथवा जो उस ज्ञान की चर्चा करे जो सतगुरू से प्राप्त होता है। हम लोग तो ऐसे मूढ़ अज्ञानी हैं जो अपने कल्याण के मार्ग को भी नही जानते ।[5] उन्होंनें, योग, पाठ, पूजा, स्नान और यज्ञ आदि के प्रति विरोध नहीं प्रगट किये हैं लेकिन उनका मत है कि आत्मस्वरूप की उपलब्धि से अन्र्तदृष्टि खुल जाती है। यह ज्ञान गुरू के चरणों में ही प्राप्त हो सकता है।

राम नाम जाने बिना वृथा है सकल काम,
गुरू जी सो ज्ञान लेवे चरनों में चित देवै ।[6]

जगजीवन साहब सतगुरू के प्रत्येक वचन को हृदय में समाहित करने का आह्वावान कर रहे हैं।[7] गोविन्द साहब ने लिखा है कि माया गुरू-ज्ञान से ही दूर चली जाती है।[8] जो गुरू का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसे आत्मानुभूति प्राप्त हो जाती है, तव वह गर्व गुमान को छोड़कर गुरू ज्ञान में ही अपने को तपाए रखता है।[9] संत पलटू साहब के मतानुसार जिसको पूर्ण गुरू की प्राप्ति हो जाती है, वह ज्ञान साधना से आत्मानुभूति को प्राप्त कर लेता है[10] उन्होंने लिखा है कि जो गुरू दरियाव रूपी जल में स्नान कर लिया, उसकी अज्ञानता समाप्त हो गयी क्योकि गुरू के चरणों में अरसठ (68) तीर्थ का फल प्राप्त है। जो

---

1. सतगुरू की महिमा अनन्त अनन्त किया उपकार ।
   लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखा बड़हार।
   -कबीर ग्रन्थावली, अंग 1, साखी 3।
2. यारी साहब की 'रत्नावली', पृ0 6।
3. बुल्ला साहब का 'शब्दसार' पृ0 34।
4. ज्ञान ध्यान सब ही हर लीन्हो, काहु न आपु संभारी।
   कहै गुलाल कोउ, कोउ, उबरै, सतगुरू की बलिहारी।।
   -गुलाल साहब की वानी, पृ0 13।
5. मेरो हित सोई जो गुरू ज्ञान सुनावै ।।
   - संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0 132
6. संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृ0 248।
7. गुरू के वचन हृइय धरू मूरख, ज्ञान ध्यान मन लाव।
   -जगजीवन साहब की वानी, भाग-1, पृ0 47।
8. जब वह सुरति चैतन्य मता गुरू ज्ञान में पैठी।
   तब माया हरि जाय ठिकाने अपने बैठी ।
   - गोविन्द साहब की हिन्दी रचनाएं, पृ0 41
9. छोड़ै गर्व गुमान ज्ञान गुरू पूरा पावै।
   साधै आपे आप ताप सब दूरि बहावै।- वही, पृ0 29
10. गुरू पूरा मिलै, ज्ञान साधना करै।- पलटू साहब की वानी भाग-2, पृ० 1

संत लोग वैराग्य को केवल साधन मात्र मानते थे, साध्य नहीं । साधना रूप में भी उसे अनिवार्य नही समझते थे। यदि गृहस्थ जीवन में सहज रूप से ज्ञानोदय हो जाय तो वैराग्य के ढोंग रचने की कोई आवश्यकता नही होती। पलटू साहब ने लिखा है कि यदि मन विकार छोड़ दें तो घर में ही वैराग्य प्राप्त हो जाता है । विकार छुड़ाने का एक मात्र साधन साधु सेवा है। इसीलिए सच्चा वैराग्य साधु सेवा ही है।

पहले दासा तन करै सो वैराग प्रमान ।
सो वैराग प्रमान सेवा साधुन की कीजै ।।
तब छोड़े संसार बूझ घर ही में लीजै।।[1]

संतों ने अपने सहजीकृत मार्ग में नाम के महत्व का बड़े प्रवेग पूर्ण शब्दों में प्रतिपादन किया है। संत गुलाल ने नाम महिमा पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि जब मन को समन करके ज्ञान का उदय हुआ, तब नाम के अचल अविनाशी पदार्थ प्राप्त हो गये।

उदित भयो जब ज्ञान कर्म मन नासई । भरो पदारथ नाम अचल पद पावई ।।[2]

संत भीखा ने 'नाम' के सम्बन्ध मे बहुत ही गूढ़ प्रश्न अपने गुरू गुलाल साहब से पूछा है कि क्या नाम, राम से अलग है? क्योकि नाम को राम से अधिक महत्व दिया जाता है? वह नाम क्या है? कौन सा नाम सुखदायी है? भीखा साहब कहते हैं कि नाम तो एक ही है। यदि राम से भिन्न नाम है तो उसका भेद बतावे।

गुरू गुलाल साहब उत्तर दे रहे हैं कि 'नाम' निर्गुण ब्रह्म तथा अवतारी 'राम' से भी बड़ा है। उन्होंने नामो में 'राम' नाम जपने को ही कहा है 'भीखा रामै राम रटु रामै नाम कहाव'।

रामै नाम कहाव'-रमने वाले अलख राम जो भीतर आतमराम हैं वे ही स्वयं नाम है। 'रमिता राम बोलता नामा'। रमने के कारण राम है। और बोलने के कारण नाम है। आतम राम से जो शब्द निकल रहा है वह नाम है। प्रत्येक जीव के भीतर एक ही नाम है। एकै नाम सकल तन गहिए'। पुनः कहते हैं 'आतम राम नाम सौ जापे '। नाम को अलग से जपना नही है। वह स्वतः हो रहा है। उसमें समा जाना ही जप है। उसमें समा जाने का सीधा फल है स्वरूपस्थ हो जाना।

शिष्य प्रार्थना -

नामै नाम तो सब कोउ कहई । नाम को भजन कौन विधि लहई।।
नाम तो एक अनन्त न भयऊ। कौने नाम भजै सुख पैयऊ।।

पुर्ष पुरान अकेल रह, जब कछु दोबिधा नाहिं ।
राम नाम तब कहाँ रह, जब कछु दोविधा नाहिं ।।

सतगुरू उत्तर -

भीखा नाम सो एक कहावै । दूजो सब कछु भर्म बहावै ।।
राम नाम परमातम कहिये। आतम रूप अनन्त न लहिये ।।

राम को नाम अचल भयो, सकल ग्रन्थ निज गांव ।
भीखा रामें राम रटु, रामै नाम कहाव ।।[3]

भीखा साहब ने एक दूसरे स्थल पर भी नाम की महिमा का वर्णन किया है -

नामे पानी नामै पवना। ररंकार मगल सुख रवना ।।
नामै धरती नाम अकास । नामै पावक तेज प्रकास ।।

---

1. पलटू साहब की बानी, भाग 1, पृ0 38।
2. गुलाल साहब की वानी, पृ0 35।
3. संत भखा की मर्मभेदी, पुकार, पृ0 295' - 96 - 97

मन पवना को संगम कोई नर पाइया ।
अनहद बजे अपार तो अलख लखाईया ।।[1]

उन्होंने एक स्थल पर त्रिवेणी के तीर पर चन्द्र एवं सूर्य के मिलने को बताया है।[2] एक अन्य स्थान पर वे चांद, सूर साधना का वर्णन अर्ध-उर्ध के खेल तथा इंगला -पिंगला को बांधकर बतलाया है।कुछ संतों में अर्ध-उर्ध के स्थान पर अरध और उरध भी मिलता है, ये प्राणायाम के बाचक है ।

अर्ध- उर्ध को खेल कोउ नर पावई । चांद सूर को बांधि गगन ले जावई ।।
ईंगल पिंगल दोउ बांधि सहज तब आवई । कहै गुलाल हर रोज आनन्द तब आवई[3]।।

बुल्ला साहब ने एक स्थान पर वायु साधना से सम्बन्धित प्राणायाम के पूरक, कुभक, रेचक आदि अंगों का उल्लेख किया है ।

लै कुंभक पूरक घर रखना रेचक संजम देई ।[4]

संत भीखा साहब ने प्राणायाम के सन्दर्भ में लिखा है कि - बाईं नासिका की चन्द्र नाड़ी पिंगला और दाहिनी नाड़ी इंगला के साथ बीच की सुषुम्णा नाड़ी का शोधन करके ज्ञान- अग्नि को जगावे, प्रज्ज्वलित करें । इन्हीं इंगला पिंगला तथा सुषुम्णा को एकाग्र करके उलटकर उर्ध्वमुखी कर दे। इस क्रिया द्वारा गगन - गुफा के गगन मण्डल में अनाहद नाद और प्राण का संयोग होता है[5]। एक दूसरे स्थान पर उन्होंने दृष्टि को उलाट करके प्राणायाम करने का उपदेश दिया है[6]।

भीखा साहब को हम कबीर की भांति हठयोगियों के कठोर साधना की तीखी आलोचना करते हुए पाते हैं -

पान अपान उदान व्यान करि विसरेउ सारंग पानी ।
अपरम्पार पार परमेश्वर अविगति अकथ कहानी ।।[7]

योगी लोग पान, अपान, व्यान, उद्वान तथा समान वायु को साधने में विश्वात्मा रूप परमतत्व को त्याग देते हैं ।

संत गोविन्द साहब ने 'पवन' साधना की सहायता से सुरति - निरति को पार करने का उपदेश दिया है ।[8] संत पलटू साहब ने लिखा है कि बांई नासिका की चन्द्र नाड़ी पिंगल और दाहिनी नासिका की सूर्य नाड़ी इंगला के बीच की सुषुम्णा से त्रिकुटि में मिला देने पर सोहं शब्द सुनाई पड़ने लगता है ।[9] एक स्थान पर उन्होंने पवन साधना का भी संकेत किया है -

इंगला माहिं सहज समानी, पिंगल पवन अहारी हो[10]

रामचरन साहब ने पान-अपान वायु को शोधने का उपदेशं दिया है -

'रामचरन गोविन्द भजु। शोधेउ पान अपान ।।[11]

---

1. गुलाल साहब की बानी, पृ0 51 ।
2. चंद सूर घर आयल तिरबेनी तीर ।
   निरखि - निरखि गति साजल दरसन रघुबीर - वही, पृ0 26 ।
3. वही, पृ0 46 ।
4. बुल्ला साहब का 'शब्दसार', पृ0 3 ।
5. चन्द्र सूर्य एकाग्रह करि, उलटि उर्ध अनुसरै। नाद विन्द का जूह गगन में, मन माया तब टेरे।।
   -संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 93
6. बैसाख मास फल पूरन, योग युक्ति प्रानायाम।
   दृष्टि उलटि कै लगि रहै, निसुदिन आठो याम ।। वही, पृष्ठ 165
7. वही, पृष्ठ 54
8. पवन पयाना करि गया। सुरति निरति के पार।। गोविन्द साहब की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 25
9. बायें चन्द सुर है दाहिने, सुखमन सुरति समानी हो।
   सोहं सोहं सुन में बोलै, वही शब्द की खानी हो- पलटू साहब की वानी, भाग 3, पृष्ठ 28
10. वही, पृष्ठ 28
11. श्री रामचनर साहब के शब्द, पृष्ठ 2 (हस्तलिखित)

संत थानदास ने पान, अपान, उद्वान को मिलाने का संकेत दिया है[1]। संत देवकीनन्दन साहब ने अष्टांग योग की महत्ता बतलाई है[2]। आगे उन्होंने पान, अपान, उद्वान, व्यान को उलाट कर भरने का उपदेश दिया है[3], तो कही पर मात्र पान, अपान को मिलाने की बात कही है[4]। हुलासदास ने इड़ा पिंगला को शोध करके सुषुम्णा में समाने को बतलाया है --

इड़ा पिंगला सोधि के सुख मन रहे समाय । त्रिकुटि दास हुलास गे, कौन सकै अलगाय ।।[5]

स्वामी गैबानन्द ने अष्टयाम के आठो नियमों का नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया है

औरहु एक उपाय सुनु, नाश विक्षेपहिं हेत ।यम अरू नियमासन कही, प्राणायाम समेत ।।

प्रत्याहार पुनि धारणा, ध्यान समाधी जान ।यही योग अष्टांङ्ग है, करत विक्षेपहिं हान[6]।।

बावरी पंथ के संत कवियों ने कहीं भी योग का क्रमबद्ध रूप नही प्रस्तुत किये हैं। ये लोग प्राणायाम साधना का संकेत मन, पवन साधना के रूप में अधिकतर किये हैं। जो पलटू साहब तक आते-आते हठयोग का प्रभाव क्षीण-सा दिखाई पड़ने लगता है । कुछ संतों ने अष्टांग योग की साधना का भी उल्लेख किये हैं ।

विपरीतकरण मुद्रा से योगी लोग सूर्य को ऊपर कर देते हैं और चन्द्र को नीचे कर देते है ।यह क्रिया प्रत्याहार और प्राणायाम के द्वारा ही सिद्ध होती है।[7] विपरीतकरणी मुद्रा ही आगे चलकर संतों में विपरीतकरणी सूर्य चन्द्र साधना के नाम से प्रसिद्ध हुयी है । बावरी पंथ के संत यारी साहब ने विपरीतकरणी मुद्रा का संकेत करते हुए लिखा है - भगवान की कृपा से ही साधक चन्द्र को अधस्तात स्थिर करने में और सूर्य को उर्ध्वमुखी करने में समर्थ होता है ।

अैन-इनायत हरि की बढ़ै। चन्द उतारै सूरज चढ़ै।[8]

प्रत्याहार की साधना में सहायक प्रणव जप भी है, ये जप एक लाख बीस हजार संख्या में बताएं गये हैं, किन्तु बावरी पंथ के संतों ने जप को बहुत महत्व दिया है। फिर भी एक लाख बीस हजार जप, संख्या का उल्लेख किसी ने नही किया है ।

ये लोग प्रणव जप के स्थान पर सोहं के अजपाजाप को ही विशेष महत्व देते हैं । यारी साहब ने अजपा-जाप की ओर संकेत करते हुए लिखा है-

गगन गुफा में बैठि के रे, उलटि के अपना आप देखे।
अजपा जपै विन जीभि सो रे, बिन नैन निरंजन रूप लेखै ।।[9]

बावरी साहिबा ने भी अजपा - जाप के महत्व का प्रतिपादन किया है -

अजपा जाप सकल घट बरतै, जो जानै सोइ पेखा ।
गुरू गम जोति अगम घर बासा, जो पाया सोई देखा।।[10]

केशवदास ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिये साधना में अजपाजाप करने का उपदेश दिया है ।

निर्गुन राज समाज है, चँवर सिंहासन छत्र ।
तेहि चढ़ि यारि गुरू दियो, केसोहिं अजपा मंत्र ।।[11]

बुल्ला साहब ने त्रिवेणी में स्नान करने का उपदेश दिया है -

तीनिउ जना त्रिवेणी आना, गंग जमुन कीन्हों अस्नाना ।।[12]

बुल्ला साहब ने सोऽहं जप की ओर भी संकेत किया है[13]। प्रत्याहार के साधक के लिये शब्द सुरति योग की साधना भी जरूरी है।

---

1. पान-अपान उदान मेलि एक अन्तर हो।। थान साहब के शब्द, पृष्ठ 9
2. अष्ट जाम विहृवल व्याकुल तन प्रेम अभये मदमाती।- देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनायें। पृष्ठ 3
3. पान अपान उदान व्यानहि उरध भरनि भरै। वही, पृष्ठ 9
4. पान अपान मिलान करो तहां मेरूदण्ड को धार । वही, पृष्ठ 10
5. हुलासदास कृत 'ब्रह्म विलास' पृष्ठ 53
6. स्वामी गैबानन्द कृत अध्यात्मसुधा, पृष्ठ 9
7. हठयोग प्रदीपिका- तृतीय पटल, 3/79
8. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 11
9. यारी साहब की रत्नावली, पृष्ठ 21
10. महात्माओं की वानी, पृष्ठ 1
11. केशवदास् की अमीघूट, पृष्ठ 2
12. बुल्ला साहब का 'शब्दसार', पृष्ठ 15
13. वही, पृष्ठ 27

सुरति निरति लै घंट बजावै, जगमग जोति परम पद पावै ।।[1]

संत गुलाल साहब ने भी अपने गुरू की भांति अजपाजाप के महत्व की ओर संकेत किया है[2] आगे उन्होंने चन्द्र सूर्य साधना के द्वारा त्रिकुटि द्वार को साधने का उपदेश दिये हैं

पैठि पताल सूर ससि बांधौ, साधौ त्रिकुटि द्वार ।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार ।।[3]

गुलाल साहब ने सुरति- निरति की ओर संकेत करते हुए लिखा है -

सुरति निरति लै सखि सब गावहिं, घरहि नव निधि पाई।[4]

भीखा साहब के साहित्य में सोऽहं जाप की झलक मिलती है।[5] उन्होंने त्रिवेणी के सम्मुख सिर झुकाने का उपदेश भी दिया है।[6] सुरति निरति का संकेत करके उन्होंने लिखा है-

सुरति सुभाव निरति लपटानो, दृष्टि रूप अरूझाऊ।।[7]

जगजीवन साहब ने त्रिकुटि के बीच् में ताड़ी लगाने का उपदेश दिया है[8]। गोविन्द साहब गंगा, यमुना एवं सरस्वती को पवन साधना के द्वारा सुषुम्णा पर चढ़ाने को बतलाया है[9]।

बावरी पंथ के संत सदा जटिलता को सरलता एवं अनेकता में एकता लाने के लिये प्रयासरत थे। इसीलिये इस पंथ के संत पलटू साहब हठयोग साधना की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल नहीं दिया है। उन्होंने उसी प्रकार की साधना को अपनाया है, जिसे साधक सहज भाव से उसका आचरण कर सकता है। इसी ओर संकेत करते हुए पलटू साहब ने लिखा है कि योगी का कर्तव्य है कि सदाचार पूर्वक साधु-जीवन व्यतीत करते हुए, आठों पहर पद्मासन में बैठा रहे। उसे दसों द्वार बन्द कर लेना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक त्रिकुटि में वायु आकृष्ट करके स्वासोच्छ्वास की गति रोक देनी चाहिए ।[10] संत पलटू ने मुद्रा एवं भेष की जगह अजपा-जाप के ही महत्व का प्रतिपादन किया है।[11] आगे उन्होंने चाँद एवं सूर्य दोनों को ऊपर उठाने की ओर संकेत किया है[12]।

श्री रामचरनदास जी ने इंगला, पिंगला और सुषुम्णा के ऊपर उस परमतत्व को बतलाया है।[13] थानदास ने अर्ध-उर्ध संगम के बीच अजपाजाप करने का उपदेश दिया है।[14] देवकी नन्दन साहब ने लिखा है कि सहज भाव से सिद्धासन लगाकर इंगला, पिंगला और सुषुम्णा को एक सिद्ध में करके त्रिकुटी में षट्चक्र भेदन को बताया है।1[15] देवकीनन्दन साहब ने अजपाजाप में ही ब्रह्म की स्थिति को माना है।[16] परसाद साहब ने इंगला, पिंगला एवं सुषुम्णा को साधना के द्वारा बंकनाल पर चढ़ाने का उपदेश दिया है।[17]

---

1. बुल्ला साहब का शब्दसार, पृष्ठ 18
2. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 43
3. गुलाल साहब की वानी, पृष्ठ 34
4. वही, पृष्ठ 24
5. रमिता राम तू अन्तरजामी, सोहं अजपाजापै हौ- संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, पृष्ठ 55
6. मध्य सरस्वती गंगा यमुना, सन्मुख शीश नवावै। वही पृष्ठ 88
7. वही, पृष्ठ 201
8. त्रिकुटि मध्य दृष्टि करू नैनन ताड़ी तहां लगाव।- जगजीवन साहब की वानी, भाग 1 पृष्ठ 47
9. गंगा जमुना और सरस्वती, सुखमन चढै निसैनी, पावन पवन अनल जल बरसत सरसत फेनी।- गोविन्द साहब की हिन्दी रचनायें। पृष्ठ 39
10. पलटू साहब की वानी, भाग 3, पृ0 53 ।
11. वही, पृ0 19 ।
12. वही, भाग- 3, पृ0 28 ।
13. श्री रामचरन साहब के शब्द, पृष्ठ 9
14. थानदास के शब्द, पृष्ठ 11
15. संत देवकीनन्दन साहब की हिन्दी रचनायें, पृष्ठ 11
16. वही, पृष्ठ 72
17. बावरी पंथ के हिन्दी कवि, पृष्ठ 354।

ध्यानावस्था में मन को सूक्ष्म स्तर पर स्थित करने का विधान है - जैसे कोई वस्तु मेरे सामने नहीं है किन्तु उसके सूक्ष्म रूप का ध्यान मै कर सकता हूँ। साधनावस्था में सूक्ष्म ब्रह्म का ध्यान अपेक्षित है, किन्तु ब्रह्म के किसी स्वरूप का स्मरण करके भी उसका ध्यान किया जा सकता है। यह ध्यान मन का ही कार्य है। यदि मन स्थिर न रहे तो ध्यान कल्पना मात्र है। इसलिए ध्यान योग में मन को केन्द्रित करके ब्रह्म को किसी भी रूप में स्थित किया जा सकता है। उस अवस्था में मन अपने को भी भूल जाता है। कंवल स्वयं एवं ब्रह्म का ज्ञान रहता है तो यह सम्प्रति ज्ञान समाधि की अवस्था है। किन्तु ध्यानावस्था में साधक स्वयं एवं ध्याता को भी भूल जाता है उसे असम्प्रतिज्ञान समाधि की अवस्था कहते है। जो सर्वश्रेष्ठ है। इस तथ्य में एक रहस्य यह है कि सम्प्रति ज्ञान साधना की अनुभूति कोई उच्चकोटि का साधक कर सकता है किन्तु असमप्रतिज्ञान समाधि की अवस्था का स्मारण ही भूला जाता है। इसलिये असम्प्रतिज्ञान समाधि की दिव्यावतरण का वर्णन किसी भी साधक के द्वारा नही हुआ है। बावरी पंथ के किसी भी संत कवि ने असम्प्रति ज्ञान अवस्था का वर्णन नहीं किया है।

लययोग-

कुण्डलिनी क्रिया के द्वारा शिव और शक्ति का एकत्व होने पर लयावस्था की प्राप्ति होती है। ब्रह्मरन्ध्र में प्राणवायु पहुंचाकर अनहनाद सुनना और जिह्वा उलटकर अमृतपान करना हठयोग की चर्मावस्था है, किन्तु लययोग के अभ्यासी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उक्त अमृतरस का भी पान करे। वह ब्रह्मरन्ध्र में प्राणवायु पहुँचाकर उसमें अपने को लय कर देता है। लयावस्था में वासनाओं का नाश हो जाता है और वाह्य पदार्थ एक प्रकार से भूल जाते हैं, इसलिए 'हठयोग प्रदीपिका' में वासनाओं का लय कर देना ही लययोग माना गया है।[1] इन्द्रियों का स्वामी मन और मन का स्वामी प्राण है। प्राण का नाथ मन का लय है। मन का लय नाद के श्रवण से होता है।[2] योगतत्वोपनिषद[3] में चित्त लय को लययोग कहा गया है। लययोग में साधक चलते समय, बैठते समय, सोते समय, खाते समय ईश्वर का ही ध्यान करता है। इससे प्रगट होता है कि लय योग में ध्यान को विशेष महत्व दिया जाता है। ध्यान का सम्बन्ध मन और चित्त से होता है। मन और चित्त का लय करना ही वास्तव में लययोग है। योग ग्रन्थों में लय योग के लाखों प्रकार बंतलाए गये हैं। किन्तु सबसे अधिक मान्यता नाद लययोग को दी गयी है।

मन को केन्द्रित करने के लिए नाम-जप आवश्यक है, जिसे बावरी साहिबा ने अजपा-जाप कहा है। अजपा-जाप की स्थिति में बहिर्मुखी वृत्तियों को अर्न्तमुखी करना आवश्यक है। इसी को कबीर ने उल्टी चाल कहा है-

उल्टी चाल मिंले परब्रह्म कौ सो सत्तगुरू हमार।[4]

संत यारी साहब ने लिखा है कि- भगवान का स्मरण करते हुए अपने तन से अहंकार मिटाकर उस परमतत्व में मिल जावो। क्योकि मनोवृत्तियों के नष्ट हो जाने पर साधक के

---

1. हठयोग प्रदीपिका- 4/34।
2. वही- 4/29।
3. लय योगश्चित्तलयः कोदिशः परिकीर्तितः ।
   गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुञ्जन्ध्यायेन्निष्क लमीश्वरम् ।।
   -योगत्वोपनिषद, श्लोक -23।
4. कबीर ग्रन्थावली, पृ0 145 ।

संत पलटू साहब के अनुसार, जीव को ब्रह्ममय उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार से समुद्र मे पानी का एक बूँद मिल जाने पर वह उसी जल में एकाकार होकर समुद्र के जल से अभिन्न हो जाता है-

समुँदर के बीच में बुन्द परा,
उसी में गया समाय है[7]।।

समाधिस्थ अवस्था में ध्यान को शून्य में लय कर देना चाहिए-

सुन्न समाधि में ध्यान को लाई कै,
सहज का ख्याल सोई बीतरागी ।[8]

सुरति शब्दयोग-

'सुरति शब्दयोग' में अपनी सुरति को अपने भीतर निरन्तंर उठते रहने वाले अनहदनाद के साथ जोड़ना पड़ता है। इस किया के द्वारा साधक का मन उसमें केन्द्रित हो जाता है। सुरति शब्दयोग कोई नयी साधना नहीं है। यह अपनी पूर्ववती योग साधनाओं का ही अभिन्न रूपान्तर है। योगशास्त्रों में लययोग के अनेक प्रकार का उल्लेख किया गया है।

1. हरि-हरि करते आपा खोवै। तब हरि में हरि आपुहि होवै।
   - यारी साहब की 'रत्नावली, पृ0 12।
2. बुल्ला साहब का 'शब्दसार, पृ0 20।
3. जीव ब्रह्म जब मेला होवे, आवागमन निवारै ।।
   -गुलाल साब की वानी, पृ0 3।
4. संतकाव्य- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ0 36।
5. मन तुम नाम सो लय लाव ।
   त्यागि यह परिपंच माया, सकल जग को चाव ।।
   -संत भीखा की मर्मभेदी पुकार, 91।
6. संत भीखा मर्मभेदी पुकार, पृ0 104।
7. पलटू साहब की बानी, भाग-2, पृ0 54।
8. वही, पृष्ठ 23

बावरी पंथ का सुरति शब्द योग एक प्रकार से लययोग ही है। जैसा कि निवेदन किया जा चुका है कि मन बड़ा चंचल और चोर है प्राय: सभी साधको का लक्ष्य मन पर विजय प्राप्त करना होता है। यारी साहब की शब्द ब्रह्म में पूर्ण आस्था थी। उन्होंने 'यारी आदि ओंकार जा सो यह भयो संसार[1]' कहकर शब्द ब्रह्म से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। कही-कही पर उन्होने 'गगन मद्धे सुरति लागी, शब्द अनहद हुआ।[2] कहकर अनाहद शब्द की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। उन्होने आगे लिखा है कि जो सुरति शब्द में समाहित हो जाता है वह स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है।[3] सुरति शब्द योग को बुल्ला साहब सोहं शब्द के साथ भी जोड़ते हैं-

सोहं हंसा लागल डोर सुरति-निरति चढु मनुवा मोर[4]।।

संत गुलाल साहब सुरति शब्द में समा जाने का भी उपदेश दिये हैं।[5] उन्होंने चिन्तन करके कहा है कि शब्द में जीव की स्थिति वर्तमान है[6]। संत भीखा साहब ने 'आदि शब्द ओंकार उठत है'[7]। कहकर ओंकार रूप 'शब्दब्रह्म' को सृष्टि का कर्ता माना है। उन्होने शब्द से सृष्टि का स्वरूप साकार करते हुए लिखा है कि सातवें स्थान पर जहाँ योगी ब्रह्ममय हो जाता है, उस ब्रह्म की जब इच्छा होती है, तब उससे सत्य शब्द ओंकार की ध्वनि का विस्फोट होता है। उसी शब्द से सृष्टि का रूप साकार हो जाता है।[8]संत पलटू साहब ने शब्द ब्रह्म में पूर्ण आस्था व्यक्त की है-

सुरति शब्द के मिलन में मुझ को भया अनंदा ।
मुझको भया अनंद मिला पानी में पानी[9]।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बावरी पंथ के विभिन्न संतों में सुरति शब्दयोग के प्रति अत्यधिक आस्था है।

नामभजन के दो प्रकार हैं—एक सस्वर नामोच्चारण और दूसरा 'अजपा जाप'। रामटहल राम लिखते हैं कि—

अजपा शब्द निराला सन्तो अजपा शब्द निराला।
जो जो अजपा में सुरत लगाई, अजपा अजर अमान।
गुरु के कृपा से पाई, अजपा शब्द निराला सन्तो।[१८७]

किनाराम ने 'अजपा जाप' पर कुछ विस्तार से विचार किया है और इस प्रकार के जप के लिए 'सोहं' मंत्र का विधान किया है। यह मंत्र सहज-स्वरूप-प्रकाश है और इसके मौन जपन से काम, क्रोध का परिहार होता है तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।[१८८] अलखानंद ने 'सोहं' जप की विधि का विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि जब साधक इसका अभ्यास करता है तब प्रत्येक अन्दर जानेवाला श्वास 'सो'-'सो' की अन्तर्ध्वनि करता हुआ त्रिकुटी की ओर दौड़ता है और 'हं'-'हं' की ध्वनि करता हुआ बाहर निकलता है। 'सो' शक्ति का प्रतीक है और 'हं' महादेव का तथा 'सोहं' घट में शक्ति-शिव-संयोग का। सोहं का यह जप रात और दिन मिलाकर इक्कीस हजार छह सौ बार होता है। जिस दिन घट से 'सोहं' निकल गया, उस दिन मरण हो गया।[१८९] 'अजपा जाप' के लिए स्थिरता-पूर्वक ध्यान लगाना और आत्म-तत्त्व तथा परमात्म-तत्त्व में अभेद स्थापित करना आवश्यक है।[१९०] कोई-कोई सोहं के बदले 'ॐ' अथवा 'राम' का भी श्वास-निःश्वास के साथ जप करते हैं; राम-राम का जप करते-करते ऐसी अवस्था आती है कि आप भी बेसुध हो जाते हैं और राम भी भूल जाता है।[१९१] यह अवस्था 'सहज-समाधि' की अवस्था है, जो ज्ञान और ध्यान दोनो के परे है और जहाँ मुक्ति का दरबार है।[१९२]

भक्ति और भजन के प्रसंग में सन्तो ने वैष्णव-भक्ति की 'पुष्टि' के सिद्धान्त की ओर बार-बार संकेत किया है। भक्त जब भक्ति के पथ पर अग्रसर होता है तब उसे यह विश्वास होता है कि भगवान् ने उसको अपनी शरण में रख लिया है और जब कभी उसको संकट पड़ेगा, तब वे उससे उसका उद्धार करेंगे। इस विश्वास के अस्त्र से सन्नद्ध हो वह किनारे पर खड़े होकर क्षण-भर के लिए भी नहीं हिचकता और हठात् 'मँझधार' में कूद पड़ता है; क्योकि वह यह सोचता है कि 'मँझधार' से बचाने का उत्तरदायित्व भगवान् का है न कि भक्त का। भगवान् अपनी लाज आप रखेंगे।[१९३] सूर, तुलसी आदि सगुण भक्तो के समान निर्गुण भक्त भी अपनेको कामी, क्रूर, कुटिल, कलंकी कहकर भगवान् की शरण में अर्पित कर देते हैं और यह आशा करते हैं कि वे उसकी त्रुटियो पर ध्यान न देकर उसे अपना लेंगे।[१९४]

वैष्णव भक्तो ने भक्त और भगवान् के बीच जो सम्बन्ध है, उसे मुख्यतः दास्य भाव और सख्य भाव—दो प्रकार का माना है। जहाँ भक्त अपनेको दुर्गुणो से पूरित मानकर भगवान् की आराधना करता है, वहाँ दास्य भाव की भक्ति हुई। दास्य भाव के सम्बन्ध को पुनः दो दृष्टियो से सम्पन्न माना गया है, फलतः एक को मर्कट-न्याय की और दूसरे को मार्जार-न्याय की भक्ति कहते हैं। जिस प्रकार मार्जारी, अर्थात् बिल्ली अपने नवजात बच्चे की

१८२. अब मन ले लो हरि का नामं ।।
सुख संपत यह चार दिना के। कोउ न आवत काम ।।
हित मित उत कोउ संग न जैहै। सुत बनिता धनधाम ।।
रामकिना सतगुरु सरन पा। नाथ लह्या विश्राम ।।
—किनाराम : रामगीता, पृ० २३, पद ३

१८३. विषय शब्द समहद्य है, अनहद धुनि जों होय।
करता कहे दुनौ तजो, रामराम रटि लोय ।।१२।।
—कर्ताराम धवलराम-चरित्र, पृ० ५३

१८४. क्या बैठा है मूरख मौन धार, श्री रामराम कहु बार-बार ।।
राम रंग मे रंगु पट अपनो सतसंग जल मे पखारि निखार ।।
नाम का बुक्का उडाव चहुँ दिश, घट पट चमकै झार-झार ।।
प्रेम गुलाल भरि सुरत कुमकुमा, गुरु चरनन बिच तकि-तकि मार ।।
गायबे चाहे कबीर तो बौरे, रामराम सियाराम पुकार ।।
मिलना होय तो मिलु सन्तन से, निज स्वरूप सब रूप निहार ।।
यह विधि 'भगवती' होरी खेलहू आनन्द मिलिहै ह्वै है बहार ।।
—आनन्द सुमिरनी, पृ० ३०-३१

१८५. 'सुक्खू' भजन का आनन्द सो पावे खाय जो जाति के हीरा कनी रे।
—सुक्खू भगत : आनन्द सुमिरनी, पृ० ६

१८६. अनमोल वचन, पृ० ३६

१८७. भजन-रत्नमाला, पृ० ६

१८८. सो शिव तोहिं कहत हौं अबही। सोहम् मंत्र न संशय कबहीं।
सहज सुखाकर मंत्र कहावै। जाहि जपे तें बहुरि न आवै ।।
सहज प्रकाश निरास अमानी। रहनि कहों यह अजपा जानी।
जहाँ तहाँ यह मंत्र विचारै। काम क्रोध की गरदन मारै ।।
— विवेकसार, पृ० २४-२५

१८६ स्वासे स्वासे सो सो करते त्रिकुटी को धावता।
हं हं करते स्वासे स्वासे बाहरिको आवता ।।
सो सो सो सो शक्ति मानो हं हं महादेवता। शक्ति शिव सबको घट में बाहरि क्यों धावता।
शिव शक्ति में लभ्यो सोहं कहलावता। एकइस हजार छै सौ रात्रि दिन में आवता ।।
याहि संख्या स्वास ही को बेद बुध गावता। स्वासे स्वासे सोहं सोहं घंटे घटे छावता।
जाहा दिन सोहं निकले मृत्यु ही को पावता। कहे अलखानन्द क्यौं सोहं बिसरावता ।।
—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ३३

१६०. नहीं दूरि नहिं निकट, अति नहिं कहुँ अस्थान।
बेदी पै दृढ़ गहि करै, जपै सो अजपाजान ।।
आपु बिचारै आपु मैं, आपु आपु महँ होइ।
आपु निरन्तर रमि रहैं, यह पद पावै सोइ ।।
—किनाराम : विवेकसार, पृ० २३

१६१. कोउ कहे राम राम स्वासे स्वासे माँहि हो।
राम राम रटते रटते रामहूँ भुलाहिं हो ।।
—अलखानन्द : निर्पक्ष वेदान्तरागसागर, पृ० ३४

पड़ेगा।[३७] योगेश्वरदास बाह्य संसार को 'नैहर' और आभ्यंतर जगत् को ससुराल कल्पित करते हुए सुहागिन से कहते हैं कि त्रिकुटी-मध्य में दोनों नयन लगाकर पवन को उल्टी गति

चलाकर मकड़ी के तार के समान अविच्छिन्न सुरति की डोर के सहारे चढ़कर वहाँ चलो जहाँ पिया मिलेंगे।[३८] एक अन्य सत कहते है कि अष्टदल-कमल अधोमुख रहता है। सुरति जब-जब जिस-जिस दल पर जाती है, तब-तब उस पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जब पूर्व दल पर जाती है तब जीवदया, जब अग्निकोण के दल पर जाती है तब निद्रा और आलस्य, जब दक्षिण दल पर जाती है तब मात्सर्य और क्रोध, जब नैऋ त दल पर जाती है तब मोह, जब पश्चिम दल पर जाती है तब जड़ता, जब वायव्य कोण के दल पर जाती है तब त्रिदोष, जब उत्तर दल पर जाती है तब भोग और जब ईशान कोणवाले दल पर जाती है तो अभिमान की वृद्धि होती है। साधना से इन दोषों पर विजय पाई जा सकती है।[३९]

योग की प्रक्रिया की अवस्था में 'सोहं' का जप आवश्यक होता है। वस्तुतः सोहं की अन्तर्ध्वनि का एक निरन्तर तार बँध जाता है।[४०] अलखानन्द कहते हैं कि इस प्रकार की सोहं ध्वनि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में नहीं, किन्तु उससे भी परे तुरीयावस्था में ही सुन पड़ती है। जबतक सोहं जप का अभ्यास न होगा, तबतक दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं मिटेंगे; सागर के तीर पर रहते हुए भी साधक को नीर नहीं मिलेगा, कल्पतरु के तले निवास करते हुए भी दारिद्र्य नहीं नष्ट होगा।[४१] ध्वनि अथवा शब्द कालान्तर में स्वतः और सहज हो जाता है, साधक स्वय शब्दमय हो जाता है, और शब्द ही ब्रह्म है, अतः वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसलिए शब्द का संतमत में बहुत बड़ा स्थान है।[४२] इसी शब्द अथवा अनाहत नाद की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए योग की क्रिया को 'अनाहत योग' (अनहद योग) भी कहा गया है।[४३] ब्रह्माण्ड के जिस अनुभूति-लोक में योगी अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा चित्त-वृत्ति की स्थिरता प्राप्त करता है और आनन्द का रसास्वादन करता है, उसे अनेक संज्ञाएँ दी गई हैं—'सुन्न महल', 'सुन्न सहर', 'गगनगुफा', 'गगन मंडल', 'गगन अटारी', 'सुन्न सिखर', 'अमरपुरी', 'गगन महल', 'ध्रुव-मंदिर' आदि। टेकमनराम की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

सुन्ने आया सुन्ने जायगा, सुन्ने का विस्तार।
सुन्ने सुन्न सहज धुन उपजे, कर बन्दे निरवार॥[४४]

समाधि का यह शून्यलोक घट में ही है। भक्तिन भौजाई माई कहती हैं कि—'ऐ ननदी! मैंने घर में ही अपने 'पिया' को पा लिया है। मैंने बहुत तीर्थ और व्रत किया, जोगिन बनकर वन-वन ढूँढा, लेकिन मेरा समय व्यर्थ गया[४५]। स्पष्ट है कि यहाँ घर से तात्पर्य ब्रह्माण्डगत शून्यलोक से है। रामटहल राम कहते हैं कि—

सुन्न सिखर से अम्रित टभके
हंसा पिये अघाय।[४६]

किनाराम ने शून्यलोक की समाधि की अद्वैतता तथा स्थिरता का विश्लेषण करते हुए कहा है कि जिस तरह घट के भीतर का सीमित आकाश उसके फूटने से असीम आकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार समाधि की अवस्था में श्वास प्राण में, शब्द शब्द में,

प्राण प्राण में, ब्रह्म ब्रह्म में, हंस हंस में, अविनाशी अविनाशी में, काल शून्य में, पवन पवन में, जीव शिव में, शिव निरंजन में, निरंजन निराकार में, निराकार अविगति में, अनहद अविनाशी में, और अविनाशी अपने आप में विलीन हो जाता है।[४७]

शून्य गगन में जिस दृश्यावली का अनुभव और जिस आनन्द का आस्वादन होता है, उसका संतो की 'बानियो' के आधार पर एक संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा। यहाँ इस योग-संबंधी चर्चा को समाप्त करने के पहले उस 'सुरत शब्द-योग' का विवरण दिया जाता है, जिसे गोपालचन्द्र 'आनन्द' ने अपने 'आनन्द-योग' में भक्तो के कल्याण और सुगमता के लिए सरल शब्दो में लिखा है। यहाँ उनके विवरण में से कुछ चुने हुए अंश उन्हीं के शब्दो में उद्धृत किये जा रहे हैं :—

"लीजिये बात ही बात में युक्ति भी बता दी गई, अर्थात् मन को वश में करने के लिये केवल सुरत-शब्द-योग का अभ्यास कीजिये।

"आँख, कान, ज़ुबान को बाहर की ओर से बन्द करके उन्हें अन्दर की ओर खोलिये। यहाँ आन्तरिक जगत् में अपूर्व सुख और आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार आँख अन्तर में प्रकाश देखती है। जिह्वा अन्तर का नाम जपती है। तीनो इन्द्रियो के लिये तीन काम मिल गये। अब तो मानेगा कि अब भी नही। इधर से हटे उधर को लगे। आन्तरिक जगत् के सुहावने दृश्य को देखकर, मनोरंजन बाजे को सुनकर अजपा जाप की मधुर वाणी में लीन होकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। वहाँ के मधुर गान, मनोहर दृश्य तथा अजपा जप 'सोऽहं' 'सोऽहं' शब्द श्रवण करते ही सुरत सनसनाती हुई ऊपर की ओर उठी और आकाश में लीन हो गयी। वहाँ का अनुपम दृश्य अकथनीय है, केवल अभ्यासी लोग ही उस सत्+चित्+आनन्द का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माँह।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजित नाँह॥

जाग्रत में स्वप्न का और स्वप्न में जाग्रत का दृश्य देखकर इस श्रेष्ठ मार्ग में जो आया वह फिर वापस नहीं जाता, और न तो उसे जन्म-मरण का खटका रहता है। अब प्रश्न केवल यह है कि जब अन्तर में तीन इन्द्रियाँ काम करने लग गयीं तो फिर उन पर बन्द कहाँ लगा? हालत तो पहले जैसी थी वैसे ही अब भी रही, केवल स्थान बदल गया। संसार में तीन प्रकार के ज्ञान अर्थात् प्रमाण, अनुमान और शब्द होते हैं। प्रमाण तो इन्द्रियों का ज्ञान है। (देखना, सुनना, चखना यह प्रमाण ज्ञान है)। अन्दाजा लगाना, नतीजे को देखकर कारण सोचना या विचारना अनुमान कहलाता है। इसका संबंध दिल से है। शब्द गुरु का वचन और आप्त पुरुष का कथन है, बाहिरी जगत् में ज्ञान इसी तरह प्राप्त होता है। आन्तरिक जगत् में इनके संस्कार दिल में रहते हुए अपना काम करते हैं परन्तु भेद केवल इतना ही है कि कान जहाँ बाहिरी जगत् के शब्दो को सुनता था अब आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर अनहद-शब्द को सुनता है, आँख जहाँ और दृश्यो को देखती थी अब आन्तरिक जगत् में उस प्रकाशमय ज्योति को देखती है।

गया है—'सत-लोक', 'अमरपुर', 'गैब नगर', 'सुन्न सहर', 'आनन्द नगरी', 'नूर महल' आदि। यह लोक सबसे परे, 'निरकार' से भी परे है।[४९] यहाँ 'अलख' 'अलेख' का दर्शन मिलता है। आत्मा का असल घर अमरपुर ही है, वह सिर्फ सौदा करने के[५०] लिए सौदागर बनकर इस माया के बाजार में आया हुआ है और सराय में डेरा डाले हुए है। उस दिव्यलोक को 'नूर महल' या 'गैब नगर' इसलिए कहा गया है कि वहाँ अद्भुत ध्वनि सुन पड़ती है और आश्चर्यजनक दृश्य दीख पड़ते हैं। 'सुन्न सहर', 'गगन गुफा' आदि नाम इस कारण हैं कि यह ध्वनि और ये समस्त दृश्य अपने ही 'कायागढ़' या 'कायानगर' के अन्दर विद्यमान हैं। इस दृष्टि से स्वर्ग और नरक सभी इस पिंड में ही हैं; क्योकि पिड में ही ब्रह्माण्ड है।

हम कह चुके हैं कि संत-साहित्य में 'शब्द' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। एक तो वह ब्रह्म का प्रतीक है; क्योकि राम अथवा सोहं ध्वनि सत् साधना तथा अभ्यास के अनन्तर स्वयं ब्रह्म का रूप ग्रहण कर लेती है और समाधि की अवस्था में साधक यह भूल जाता है कि उसकी सत्ता सोहं के अतिरिक्त है, अर्थात् आत्मा शब्द-ब्रह्म में मिलकर अभिन्न हो जाता है; दूसरे, शब्द सद्गुरु के मंत्र का भी प्रतीक है। सद्गुरु के महत्त्व की चर्चा हम अन्यत्र करेंगे, किन्तु यहाँ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि संत और सद्गुरु में अन्योन्याश्रय है। ऐसा संभव नहीं कि विना सद्गुरु के कोई संत हो जाय। जब साधक सद्गुरु की सेवा और सान्निध्य से अपने को पात्र साबित कर देता है, तब सद्गुरु उसे अपनी शरण में ले लेते हैं, उसे विधिवत् दीक्षित करते हैं और एक गुप्त-मन्त्र भी देते हैं, जिसे गुरु-मन्त्र कहा जाता है। शब्द का तात्पर्य इस गुरु-मन्त्र से भी है। संतो की वाणियाँ भी 'शब्द' कही जाती हैं। हमने कबीर के शब्द, रैदास के शब्द, दरिया साहब के शब्द नामक पदो के संग्रह देखे हैं। कबीर के शब्द-संग्रह को 'बीजक' भी कहते हैं। यहाँ 'शब्द' संतो की वाणी अथवा पद के ही अर्थ में है। बीजक का प्रयोग भी साभिप्राय है। वाणिज्य-क्षेत्र में बीजक (Invoice) उस पुर्जी या सूची को कहते हैं, जिसमें क्रय-विक्रय के पदार्थों का असली मूल्य अंकित है और जिसके साथ गोपनीयता का वातावरण रहता है। संत-साहित्य के जिज्ञासुओ को यह पता होगा कि अभी तक शत-सहस्र संतो की वाणियाँ ऐसी हैं जो मुद्रित नहीं हैं। वे या तो हस्तलिखित हैं या संतो के कंठ में हैं। सामान्य धारणा यह है कि ये वाणियाँ बाजार में खुलेआम बिकनेवाले सौदे के समान नहीं हैं। उनको साधारणतः गुप्त तथा सँजोकर रखना चाहिए, और उन्हें तभी प्रदान करना चाहिए जब योग्य शिष्य अथवा पात्र मिल जाय। इस तरह हम देखते हैं कि शब्द के सभी अर्थों में रहस्यमयता की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है।

प्रस्तुत प्रसंग में सरभंग-संतो द्वारा किये हुए शब्द के कुछ ऐसे विवरण दिये जाते हैं जिनका सबध शब्द-ब्रह्मवाले पहले अर्थ से है। किनाराम कहते हैं कि शब्द में और सत्पुरुष में कोई भेद नही है; वह अज, अमर, अद्वितीय, व्यापक तथा पुरुष से अभिन्न है; सद्गुरु ही उसके रहस्य को बता सकता है।[५१]

एक दूसरे पद में वे कहते हैं—

शब्द में शब्द है शब्द में आपु है,
आपु में शब्द है समुझ ज्ञानी।[५२]

शब्द अखंड ज्योति है, जो शून्यलोक में प्रकाशित है और जिसके अवबोध से कठिन-से-कठिन भव-बंधन मिट जाते हैं तथा इस प्रकार की शांति मिलती है, जिसमें केवल भाव ही भाव हैं, अभाव का नाम नहीं।[५३] यह शब्द सामान्य अर्थ में प्रयुक्त शब्द से न्यारा है। यह उस विराट् शब्द का अंग है, जो समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इसका ज्ञान 'अनुभव' से ही संभव है, किन्तु यदि ज्ञान हो गया तो उसके सहारे हम भवसागर पार सकते हैं।[५४] इस शब्द को 'सहज' अथवा 'अनाहत' कहा गया है। सामान्य जगत् में प्रत्येक ध्वनि के लिए संघर्ष तथा आघात की आवश्यकता होती है, किन्तु समाधि की अवस्था में जो शब्द गूँजता है, वह सहज अथवा स्वतः उत्पन्न होता है और अनाहत अर्थात् विना किसी आघात अथवा सघर्ष के पैदा होता है।[५५] शब्द-विज्ञान अत्यन्त रहस्यमय है। वस्तुतः यह तर्क और बुद्धि के क्षेत्र की वस्तु नहीं है, अनुभूति की वस्तु है—

शब्द मो शब्द है शब्द सो भिन्न है, शब्द बोलै कौन शब्द जानै।
शब्द के ही हेतु उठै, शब्द के ही मो बसै शब्द की चाल गहि शब्द मानै॥
शब्द को उलटि कै शब्द पहिचानलै, शब्द का रूप गहि क्यो बखानै।
किनाराम कहै शब्द की समुझि बिनु, शब्द कहै कौन शब्द टानै॥[५६]

यहाँ 'शब्द का रूप गहि क्यो बखानै' इस अंश द्वारा शब्द की अनिर्वचनीयता का द्योतन है। टेकमनराम कहते हैं कि आत्मा में गुंजित 'अनहद शब्द' की उपमा एक ऐसे सुरम्य मंदिर से दी जा सकती है, जो विना जमीन के अधार के अवस्थित है।[५७] शब्द रूपी लक्ष्य को विद्ध करना बहुत कठिन है, किन्तु नाम के प्रताप से ऐसा संभव है।[५८] साधक जब चित्त की स्थिर वृत्ति को प्राप्त करता है, तब उसके भीतर शब्द का ऐसा तार बँध जाता है कि वह कभी टूटता नहीं। शब्द एक अद्भुत अस्त्र है। और अस्त्रों के आघात से जीवित मृत हो जाता है; किन्तु शब्द के आघात से मृत, जीवित हो उठता है। वह अपनी दुर्मति खोकर और निर्भय होकर विचरने लगता है।[५९] पलटू दास कहते हैं कि हद, अनहद के पार एक मैदान है, उसी मैदान में पैर दक्षिण और सिर उत्तर करके सोना चाहिए तथा 'शब्द की चोट' को सम्हाल कर सहना चाहिए।[६०] यहाँ शब्द की अवर्णनीयता की ओर इंगित है। आनन्द ने दैनन्दिन जीवन में भी शब्द का लाभ बतलाया है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य क्रोध के आवेश में हो जाय तो तुरन्त शब्द के साथ सुरति मिलाकर अजपा-जप आरंभ करे; क्रोध स्वयं निवृत्त हो जायगा।[६१]

ध्यानावस्था में किस प्रकार का शब्द सुनाई देता है और किस तरह के अन्य दृश्य दीख पड़ते हैं, इसकी संक्षिप्त चर्चा आवश्यक होगी। स्पष्ट है कि शब्दों और दृश्यों

प्राण प्राण में, ब्रह्म ब्रह्म में, हंस हंस में, अविनाशी अविनाशी में, काल शून्य में, पवन पवन में, जीव शिव में, शिव निरंजन में, निरंजन निराकार में, निराकार अविगति में, अनहद अविनाशी में, और अविनाशी अपने आप में विलीन हो जाता है।[४७]

शून्य गगन में जिस दृश्यावली का अनुभव और जिस आनन्द का आस्वादन होता है, उसका संतो की 'बानियों' के आधार पर एक संक्षिप्त विवरण आगे प्रस्तुत किया जायगा। यहाँ इस योग-संबंधी चर्चा को समाप्त करने के पहले उस 'सुरत शब्द-योग' का विवरण दिया जाता है, जिसे गोपालचन्द्र 'आनन्द' ने अपने 'आनन्द-योग' में भक्तो के कल्याण और सुगमता के लिए सरल शब्दो में लिखा है। यहाँ उनके विवरण में से कुछ चुने हुए अंश उन्हीं के शब्दो में उद्धृत किये जा रहे हैं :—

"लीजिये बात ही बात में युक्ति भी बता दी गई, अर्थात् मन को वश में करने के लिये केवल सुरत-शब्द-योग का अभ्यास कीजिये।

"आँख, कान, जुबान को बाहर की ओर से बन्द करके उन्हें अन्दर की ओर खोलिये। यहाँ आन्तरिक जगत् में अपूर्व सुख और आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार आँख अन्तर में प्रकाश देखती है। जिह्वा अन्तर का नाम जपती है। तीनो इन्द्रियो के लिये तीन काम मिल गये। अब तो मानेगा कि अब भी नही। इधर से हटे उधर को लगे। आन्तरिक जगत् के सुहावने दृश्य को देखकर, मनोरंजन बाजे को सुनकर अजपा जाप की मधुर वाणी में लीन होकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। वहाँ के मधुर गान, मनोहर दृश्य तथा अजपा जप 'सोऽहं' 'सोऽहं' शब्द श्रवण करते ही सुरत सनसनाती हुई ऊपर की ओर उठी और आकाश में लीन हो गयी। वहाँ का अनुपम दृश्य अकथनीय है, केवल अभ्यासी लोग ही उस सत्+चित्+आनन्द का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माँह।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजित नाँह॥

जाग्रत में स्वप्न का और स्वप्न में जाग्रत का दृश्य देखकर इस श्रेष्ठ मार्ग में जो आया वह फिर वापस नहीं जाता, और न तो उसे जन्म-मरण का खटका रहता है। अब प्रश्न केवल यह है कि जब अन्तर में तीन इन्द्रियाँ काम करने लग गयीं तो फिर उन पर बन्द कहाँ लगा? हालत तो पहले जैसी थी वैसे ही अब भी रही, केवल स्थान बदल गया। संसार में तीन प्रकार के ज्ञान अर्थात् प्रमाण, अनुमान और शब्द होते हैं। प्रमाण तो इन्द्रियों का ज्ञान है। (देखना, सुनना, चखना यह प्रमाण ज्ञान है)। अन्दाजा लगाना, नतीजे को देखकर कारण सोचना या विचारना अनुमान कहलाता है। इसका संबंध दिल से है। शब्द गुरु का वचन और आप्त पुरुष का कथन है, बाहिरी जगत् में ज्ञान इसी तरह प्राप्त होता है। आन्तरिक जगत् में इनके संस्कार दिल में रहते हुए अपना काम करते हैं परन्तु भेद केवल इतना ही है कि कान जहाँ बाहिरी जगत् के शब्दो को सुनता था अब आन्तरिक जगत् में प्रवेश कर अनहद-शब्द को सुनता है, आँख जहाँ और दृश्यो को देखती थी अब आन्तरिक जगत् में उस प्रकाशमय ज्योति को देखती है।

(४)

लखु ए सज्जन सोऽहं तार ॥टेक॥
आगे में नाम देखो श्वासा विचार।
त्रिकुटी उपर जोति उजियार॥

अष्ट दल कमल फुले गुलजार।
मेरे मन मधुकर, करै गुलजार॥
इंगला पिंगला के काया निरुआर।
सुखमन बटिया के खुलु न केवार॥
नाभि कुंड बहे अमृत धार, शब्द उठै जहाँ ओकार।
तालेदास इहाँ काया निरुआर, जीति चलहुँ वहि देशवा बिरान॥

(५)

दिहलन एक जड़ी हमारे गुरु ॥टेक॥
इहो जड़िया मोही प्यार लगत है, अमृत रस से भरी।
इहो जड़िया केउ सन्त लोग जाने, लै के जपत रही॥१॥
त्रिविध तापना तन से भागे, दुर्मति दूर करी।
इहो जड़िया देखि मृत्यु डेराने, और कौन बा पुरी॥२॥
मनही भुजग पाँचो नाड़ी सन तरंग भरी।
डाइन एक सकल जग खाये, बोली देख डरी॥३॥
निशि बासर जन ताहि न बिसरै, पल चित एको घड़ी।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी सकलो ब्याध हरी॥४॥

(६)

भजन में सन्तो प्यारा है॥टेक॥
बिनु सड़सी बिनु हाथ हथौड़ी, गढ़ल सजल तइयारा है।
बिनु खम्भा - असमान खड़ा है, उसमें धागा लागा है॥
बिनु चूना के मंदिल चुनौटल, उसमें साहेब हमारा है।
कहे 'ताले' सुन 'गिरिधर' योगी, सतगुरु सबसे न्यारा है॥

(७)

सोऽहं नाहि विचारी जम्हु हो॥टेक॥
नाटा बएलवा टाट् नहिं अंगछै, छन छन देत गिराई।
गुरु के शबद लै नाथु बएलवा, हनि हनि मान्हु पेटारी॥१॥
ना हम लादो हीरा - मोती, ना हम लौंग सुपारी।
हमहुँ त लादब गुरु के सबदवा, पूरा खेप हमारी॥२॥
'तालेराम' पतिया लिखि भेजल, लक्ष्मी के भटभारी।
साहब कबीर के घर भरत है, अपने भइले बेपारी॥३॥

(८)

सद्गुरु बनिया पिंजड़ा पा लेना॥टेक॥
एक दमरी के मुनिया बेसहलो, नौ दमड़ी के पिंजड़ा।
आएल बिलाई झपट लेलक मुनिया, रोये सारी दुनिया॥

५०. नूर महल मे पैठिके, नूर महल को देख।
रामकिना निज हाल मे, पायो अलख अलेख ॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० १९, पद ५०

५१. शब्द का रूप साँचो जगत,
पुरुष शब्द का भेद कोई संत जानै।
शब्द अजर अमर अद्वितीय व्यापक पुरुष,
सतगुरु के शब्द को विचार आनै ॥
—गीतावली, पृ० ९, पद २३

५२. किनाराम : गीतावली, पृ० ९, पद २२।

५३. शब्द ज्योति जग सुन्य प्रकासा।
समुझत मिटै कठिन भव फांसा ॥
भ्रान निवृत्ति सदा तेहि जानौ।
भाव अभाव न सकौ मानौ ॥
—किनाराम : विवेकसार, पृ० १४

५४. शब्द शब्द सो मिलि रहै, शब्द शब्द सों न्यार।
शब्द निरंतर सो मिलै. रामकिना कोइ यार ॥
अनुभौ सोई जानिये, जो गति लहै विचार।
रामकिना संत शब्द गहि, उतर जाय भव पार ॥
मगन मस्त निज हाल में, ख्याल ख्याल को खण्ड।
रामकिना अनुभौ तिलक करयो ईश ब्रह्मण्ड ॥
—किनाराम : रामगीता, पृ० १७, पद ४४

५५. सतगुरु, सहज लखाय उर, सहज शब्द परिमान।
शब्दहि शब्द विचार के सत्य शब्द नित मान ॥
—किनाराम ' रामगीता पृ० ७, पद १६

५६. रामगीता, पृ० ८, पद २१

५७. बिना जमीन मंदिर उदबुद है, मूरत छबी अपार।
अनहद शब्द उठे दिन रसना, निस दिन राराकार ॥
—टेकमनराम : भजन-रत्नमाला, पृ० १५

५८. सबद के निसाना मार, नाम की दोहाई हो।
कहे दर्शन जीव, लोक चलि जाई हो ॥
—टेकमनराम ' भजन-रत्नमाला, पृ० १२

५९. सतगुरु शब्दै मारिके, मिरतक लियो जिआय।
रामकिना निरभै कियो, दुरमति दूहि बहाय ॥
—किनाराम : गीतावली, पृ० १

६०. हद अनहद के पार मैदान है. उसी मैदान में सोय रहना।
पैर दक्षिण धरे शीष उत्तर धरे, शब्द के चोट सम्हार सहना ॥
—पलटूदास : ह० लि० संग्रह, पद ५

६१. क्रोध आवै जब तो सुरत को मिलाकर शब्द
जाप अजपा का हर यक स्वाँसा पै करना चाहिए ॥
—गुलाबचन्द्र ' आनन्द : आनन्द-भण्डार, पृ० ६३

|| चौपाई ||

हृदय बसै मन परम प्रवीना । बाल वृद्ध नहिं सदा नवीना ॥139॥[36]
इंद्री सकल प्रकाशक सोई । तेहि हित बिनु सुख लहै न कोई ॥140॥
पवन बास नाभी परमाना । सहज रुप तेहि कछु नहिं जाना ॥141॥
शब्द अनाहद महँ गृह कीन्हा । जेहि लखि परै आपु तिन्ह चीन्हा ॥142॥
प्रान निरंतर महँ होइ बसई । शुभ अरु अशुभ एक नहिं रसई ॥143॥
बास ब्रह्म ब्रह्माण्ड करंता । हे शिष समुझि लेहु यह तंता ॥144॥
हंस बसे सो कहियत गगना । सदा एक रस आनंद मगना ॥145॥
बास अनूप सून्य कहँ दीन्हा । जतन जुक्ति सों एहि विधि चीन्हा ॥146॥
कमल माँह बस काल दुरंता । तेहि जानत है कोउ कोउ संता ॥147॥
काया महँ बस जीव वियोगी । इंद्रिन्ह सकल विषय रस भोगी ॥148॥
चंद्र माँह शिव बास असंका । ररंकार तहँ एकै अंका ॥149॥
देव निरंजन सुषमन माहीं । बसत वस्तु सबही घट माहीं ॥150॥

यह अत्यंत निपुण मन हृदय में बसता है, यह कभी न बालक होता है न वृद्ध, सदा नवीन बना रहता है ॥ **139** ॥ यह सभी इंद्रियों का संचालन करता है, इसकी कृपा के अभाव में कोई सुखी नहीं होता ॥ **140** ॥ पवन का वास नाभि में इंगित है, उसका रूप बिल्कुल सहज होता है, लेकिन शब्दों में वर्णनीय नहीं ॥ **141** ॥ शब्द का निवास स्थान अनंत अनहद नाद में होता है, जिसका सौभाग्य होता है वही उसे पहचान पाता है ॥ **142** ॥ प्राण अनवरोध शरीर में व्याप्त रहता है, वह शुभ अथवा अशुभ, किसी भी वस्तु का रस नहीं लेता ॥ **143** ॥ ब्रह्म का निवास ब्रह्माण्ड में होता है, हे शिष्य इस तंत्र के विधान को भली-भाँति समझ लो ॥ **144** ॥ हंस गगन में अवस्थित है, वह सदा आनंद के एक ही रस में निमग्न रहता है ॥ **145** ॥ अनूप का वास शून्य में कहा गया है, बहुत प्रयत्न करने, युक्ति लगाने की विधि से, उसे पहचाना जा सकता है ॥ **146** ॥ दुस्तर काल का वास कमल में होता है, उसे लाखों में कोई एक संत ही जान पाते हैं ॥ **147** ॥ अपने आप से पृथक जीव का वास शरीर के अंदर ही होता है, वही अपनी इंद्रियों के माध्यम से सभी रसों का स्वादन करता है ॥ **148** ॥ शिव का वास चंद्रमा में नि:शंक रूप से होता है, वहाँ केवल “रं” अक्षर की प्रतिध्वनि गूँजती रहती है ॥ **149** ॥ देव निरंजन स्वयं सुषुम्ना (नाड़ी) में वास करते हैं, इस प्रकार ये सभी वस्तुएँ इस नश्वर काया में ही विराजती हैं ॥ **150** ॥

अब गुरु क्रमानुसार शिष्य के प्रश्नों का उत्तर देना आरम्भ करते हैं। वे बताते हैं कि मन का निवास-स्थान हृदय में होता है। यह मन ही है जो सभी इच्छाओं को संचालित करता है और सभी इंद्रियों को अपने निर्देशानुसार कार्य करने को प्रेरित करता है। जब तक कि यह मन किसी साधक के अनुकूल नहीं हो जाता, उसका आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति करना कठिन है।

पवन का निवास, जो शरीर के भीतर श्वास है, नाभि केंद्र में होता है। यह वही बिंदु है जहाँ कि गर्भस्थ शिशु अपनी माता से जुड़ा होता है, और यहीं से इस पवन का संचालन प्रारम्भ हो जाता है। लेकिन इसके अतिरिक्त किसी और विधि से इसका वर्णन करना असम्भव है।

शरीर में स्थित शब्द का स्थान अनाहत नाद में होता है, जिसका स्पंदन काया में स्वयंमेव निरंतर चलता रहता है। कुछ विद्वान इस अनाहत नाद को ‘सोऽहं’ मानते हैं, क्योंकि श्वास के प्राकृतिक आवागमन की प्रक्रिया में यही अस्फुट ध्वनि उत्पन्न होती है।[37] वह जो प्राण-वायु है वह शाश्वत रूप से सर्वत्र व्याप्त रहती है। किंतु इतनी व्यापक होने पर भी वह मन तो नहीं है न, इसलिये उसे संसार और सांसारिकता के शुभ-अशुभ व्यवहारों से कुछ भी लेना-देना नहीं होता है।

सृष्टि के रचयिता ब्रह्म का निवास ब्रह्म-अंड यानी ‘ब्रह्माण्ड’ में होता है, और गुरु शिष्य को बल देकर कहते हैं कि वह इस ‘तंत्र’ को ठीक से समझ ले। यह कथन विचारणीय है। सिर उठाकर ब्रह्माण्ड के प्रतीक आकाश की ओर देखने से, या चित्र रूप में उसके नक्शे को देखने से भी, वह एक गोल पात्र, एक कटोरे के रूप में दिखता है। एक ऐसा कटोरा जो उल्टा हुआ है। ऐसा ही एक कटोरा मानव शरीर में भी है, और वह है मस्तक में कपाल का सबसे ऊपरी भाग। तंत्र, और शरीर में चक्रों का अनुसरण करने वाली परम्पराएँ, मानती हैं कि सृष्टि के स्रष्टा का निवास इसी कपाल पात्र के भीतरी भाग में स्थित सहस्रदल कमल, या सहस्रार में होता है। गुरु शिष्य को इसी स्थान का इंगित करते प्रतीत होते हैं, इसीलिये वे कहते हैं कि शिष्य इस तंत्र को भली-भाँति समझ लो।

36 तु.बड़थ्वाल 1960, 189 सं. 26। देखें परिशिष्ट।

37 देखें खरे 1935, 387-403।

नहीं दूर नहिं निकट अति नहीं कहूँ अस्थान ।
वेदी पै दृढ़ गहि करै जपै सो अजपा जान ॥199॥ [51]

यह सारी प्रक्रिया जो साधक के शरीर में ही चल रही है, न उस साधक से दूर ही है, न पास। इस अवस्था तक पहुँचने के लिये उसे बस अपने आसन पर दृढ़ता से विराजमान रहकर अजपा मंत्र का जप करते रहना है, इसी से ज्ञान का उदय होता है ॥ **199** ॥

समाधि का यह जो अनुभव है, चूँकि यह इस काया के भीतर ही हो रहा है, इसलिये इसे न दूर कहा जा सकता है, न पास। शरीर के अंदर होने के कारण दूर तो नहीं ही है, लेकिन ध्यान की उस अवस्था तक पहुँचने का मार्ग लम्बा होने के कारण, दूर लग भी सकता है। ऐसा भी नहीं है कि यह अनुभव किसी स्थान विशेष में ही होता है। यह तो काया के भीतर है, कभी भी, कहीं भी हो सकता है। इसका अनुभव पाने के लिये आवश्यक यह है कि साधक अपने आसन पर दृढ़ता से बैठे, वहाँ बहुत अधिक शारीरिक उपक्रम न करता रहे, और इस प्रकार सुख से बैठकर अपनी श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया के साथ ही उस (सोऽहं) मंत्र का अजपा जप करता रहे। वही सही ध्यान भी कहा जाएगा।

51 तु. बड़थ्वाल 1960, 103 सं. 2, “मूल चापि डिढ आसणि बैठा, तब मिटि गया आवागवनं।” अजपा-जप के लिये देखें गोरख-बानी सबदी, 7, संख्या 18 “अजपा जपै सुंनि मन धरै, पांचौं इंद्री निग्रह करै।“ सोहं-हंसा मंत्र के लिये देखें सबदी,. 17 संख्या 46 “सोहं हंसा सुमिरै सबद। तिहिं परमारथ अनंत सिध।“ प्राण संगली में भी ‘सोहं’ मंत्र का उल्लेख है। देखें, प्राण संगली-हिन्दी के पृष्ठ नं. 71 पर राम-कली–महला 1 - पौड़ी नं. 42

अैसा संम्रथु को नही किसु पहि करउँ बिनंतू
पूरा सतिगुर सेव तूँ गुरमति सोहं मंतू 42।।

प्राण संगली-हिन्दी रामकली–महला 1 - पौड़ी नं. 27
सोहं जाप जपै दिन राता। मन ते त्यागै दुबिधा भ्रांता।।27।।

नानक साहब कहते हैं कि [...] केवल सोहं का जाप दिन-रात करना चाहिए तथा मन की दुविधा त्याग कर स्वांस को आते तथा जाते नाम के साथ जाप करें। `http://kabirsahib.blogspot.com/p/265-1-2-3-1-2-3-4-17.html`.

nahī̃ dūra nahī̃ nikaṭa ati nahī̃ kahū̃ asthāna;
vēdi pai dṛṛha gahi karai japai so ajapā jāna.[60] **199**.

(that God) is neither far nor close at hand
Nor does it have any particular place;
one who stays steadfast in their posture
knows, meditating on the unchanted chant. **199**.

Thus, the Guru says, that divine being and that divine experience is not inaccessible. It is neither very far, nor is it very close because it all happens truly within this body. Its experience is not dependent on any particular place either, because it can happen anywhere and at any time. It is an experience which can be had only when one maintains their meditative posture firmly and repeats the unchanted mantra (*so-haṁ*) with every breath, maintaining an awareness of the divine being at all times, thus reaching a stage where the seeker becomes like the object of their devotion they seek so earnestly.

* गुरु वाक्य *

|| चौपाई ||

सुनु शिष अजपा जाप जो होई । तोह बुझाइ कहत हौं सोई ॥203॥
और एक कहि मंत्र बिचारा । अभिजित नखत राम अवतारा ॥204॥
सो अध्यातम महँ ठहराई । दस अवतार कथा जो गाई ॥205॥
सो शिष तोहिं कहत हौं अबहीं । सोऽहं मंत्र न संशय कबहीं ॥206॥

सुनो शिष्य, मैं तुमको समझाकर अजपा जप के विषय में कहता हूँ ॥ **203** ॥ एक और मंत्र विचार करने योग्य है। अभिजित नक्षत्र में राम का अवतार हुआ था, उनका नाम भी मंत्र-रूप है ॥ **204** ॥ उनको अध्यात्म में प्रमुख पद मिला हुआ है, वे राम, जिनकी कथा दस अवतारों की कथा में गाई जाती है ॥ **205** ॥ हाँ तो शिष्य, अब मैं तुमसे कहता हूँ, अजपा मंत्र सोऽहं है, और इसमें कोई शंका का प्रश्न नहीं है ॥ **206** ॥

पुन:, गुरु शिष्य की प्रार्थना स्वीकार करते हैं। वे चौपाइयों का उपयोग कर शिष्य को एक नहीं, अपितु दो मंत्रों से अवगत करा देते हैं। वे समझाकर कहते हैं कि सुनो, मैं तुम्हें एक और मंत्र का विचार कर के बता रहा हूँ। यह उस राम का नाम है, जिस राम ने अभिजित नक्षत्र में अवतार लिया था। आध्यात्मिक जगत में उनकी उपस्थिति, और उनका नाम, एक केंद्रीय धुरी की तरह स्थापित है। यह राम उन्हीं दस अवतारों में से एक हैं जिनका गुणगान सभी लोग करते हैं (महाकाव्य रामायण के अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में)। उन राम के नाम का ध्यान कर लेने के बाद अब मैं तुम्हें बताता हूँ, वह अजपा मंत्र 'सोऽहं' है, और तुम्हें इस विषय में कभी कोई संशय नहीं होना चाहिये।

* मंत्र – ऊँ रों सोऽहं सहं । इति विज्ञान मंत्र *

|| चौपाई ||

शिष ओंकार जानि कर लेहु । सो सस्तवनन्हि दृढ़ व्रत देहु ॥207॥
हं हृदये गहि सत्य बिचारै । रं रंकार रसना उच्चारै ॥208॥
रहै निरंतर अंतर खोई । सब तेहि महँ सब महँ है सोई ॥209॥
यह बिचार सुनि सदा दुहेला । रमै राम महँ होइ अकेला ॥210॥[54]
बरनाश्रम को भेद न राखै । बानी सत्य सहज सो भाखै ॥211॥
सहं शब्द समुझि सो गहई । जाति पाँति कुल कर्म को दहई ॥212॥
सहज मुखाकर मंत्र कहावै । जाहि जपे तें बहुरि न आवै ॥213॥
सहज प्रकाश निरास अमानी । रहनि कहों यह अजपा जानी ॥214॥
जहाँ तहाँ यह मंत्र बिचारै । काम क्रोध की गरदन मारै ॥215॥

शिष्य, इस सम्पूर्ण मंत्र की प्रथम ध्वनि ऊँकार को ग्रहण करो और तब ‘सो’ शब्द की ध्वनि पर सादर ध्यान केंद्रित करो ॥ **207** ॥ ‘हं’ शब्द की ध्वनि को हृदय में धारण करते हुए उस परम सत्य का चिंतन करो। ‘रं’ शब्द की ध्वनि का जिह्वा द्वारा उच्चारण करो ॥ **208** ॥ लगातार अपने ही अंतरतम में आत्मचिंतन में खोये रहो, क्योंकि सभी कुछ वहीं पाने योग्य है, और सभी कुछ में वही विद्यमान है ॥ **209** ॥ सुनो, यह विचार, एकांत में राम नाम में रमण करना, सदा कठिन होता है ॥ **210** ॥ इस अभ्यास में वर्णाश्रम का भेद नहीं माना जाता है, और सदा सत्य सम्भाषण ही किया जाता है ॥ **211** ॥ जो ‘सऽहं’ मंत्र को समझ कर आत्मसात् कर लेता है, वह जाति-पाँति इत्यादि के सभी कर्मों को भस्म कर देता है ॥ **212** ॥ इस मंत्र का उच्चारण मुख में स्वतः होता रहता है, जो इसका ध्यान से जप करता है वह मुक्ति पा जाता है ॥ **213** ॥ अजपा जप का अनुसरण करने वले की जीवन शैली उस सत्य के प्रकाश से आलोकित, बिना मान-सम्मान की इच्छा के, विश्व के प्रति आकर्षित हुए बिना जीने की होती है ॥ **214** ॥ ऐसा व्यक्ति जहाँ भी इस मंत्र पर ध्यान लगाता है, वहाँ वह काम-क्रोध का उच्छेदन कर देता है ॥ **215** ॥

गुरु समझाते जाते हैं, हे शिष्य, ‘ऊँकार’ को जानो, और उसका अभ्यास करो। ‘सो’ ध्वनि को दृढ़तापूर्वक आदर से अपनी स्मृति में बनाए रखो। ‘हं’ ध्वनि का, सत्य के रूप का चिंतन करते हुए, अपने हृदय में स्पंदन होने दो। अपनी जिह्वा से ‘रं’ मंत्र का उच्चारण करो। अपने मन को इधर-उधर भागने न दो, उसे अपने ही में रखकर अपने में खोए रहो, अपने में क्या घट रहा है उसी पर ध्यान दो, क्योंकि पाने योग्य जो कुछ भी है, वह वहीं पाया जा सकता है। ऐसा करना कठिन अवश्य है, लेकिन असम्भव नहीं, और अभ्यास से इसे सरलता से किया जा सकता है। इस अभ्यास को हृदयंगम करने के लिये प्रभु राम, और उनका नाम, जो स्वयं एक मंत्र है, उनमें रमे रहो। इसके लिये तुम्हें एकांत का भी प्रयास करना होगा, तभी तुम्हारा अभ्यास परिपक्व हो पाएगा।

यह तो हुई आध्यात्मिक अभ्यास की बात। लेकिन शरीरधारी साधु भी शून्य में तो रहता नहीं। उसे भी अन्य लोगों से व्यवहार करना पड़ता है। तो अब गुरु शिष्य को साधना के सामाजिक, व्यावहारिक सूत्रों का ज्ञान देते हैं, जो अवधूत मत में सर्वग्राह्य माना जाता है। वे कहते हैं हे शिष्य, तुम वर्ण पर आधारित जाति प्रथा का अनुसरण बिल्कुल भी न करना। सबके साथ न केवल समदर्शी रहना बल्कि समवर्ती रहते हुए सबसे एक समान व्यवहार करना। सदा सत्य बात ही कहना, वितण्डावाद को त्याग कर सहज रहना, ताकि सत्य का साथ तुम्हारे लिये प्राकृतिक हो जाय।

‘सहं’ शब्द को ठीक से समझ लेना। जब श्वास अंदर जाती है तो ‘सो’ की ध्वनि करते हुए त्रिकुटी की ओर दौड़ती है। जब बाहर आती है तो ‘हं’ की ध्वनि व्याप्त हो जाती है। यह प्राकृतिक मंत्र है इसलिये ऐसा सहज रूप से स्वयं होता रहता है, इसे करने की आवश्यकता नहीं होती। इसमें अभ्यस्त होते हुए, समाज में जाति-पाँति, कुल-परिवार पर आधारित भेद-भाव और विषमताओं को अपने व्यवहार में भस्म कर देना। ‘सहं’ मंत्र का जो इस प्रकार जप करता है वह सांसारिक आवागमन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार का, संसार में रहते हुए भी उससे निस्पृह रहनेवाला जीवन, मान-सम्मान को प्रश्रय न देनेवाला जीवन, एक साधु के लिये सही ‘रहनी’ होता है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी इस मंत्र का विचार करता है, वहाँ वह काम-क्रोध जैसी मनुष्य की दुर्बलताओं को धूल चटा देता है।

54 दुहेला शब्द संस्कृत के दुःख शब्द से उद्भूत है, किंतु इसका एक अर्थ कठिन या मुश्किल काम भी होता है। हमने यहाँ इस शब्द का यही अर्थ लिया है।

* गुरु वाक्य *

|| दोहा ||

अनुभव होते हि शिष्य तब बोले बचन विचारि ।
सोऽहं सतगुरु की कृपा संशय शोक निवारि ॥223॥

जैसे ही शिष्य को यह अनुभव हुआ, गुरु ने कुछ सोचकर कहा, सोऽहं मंत्र वह सतगुरु है जिसकी कृपा से सभी शंकाएँ और शोक तिरोहित हो जाते हैं ॥ **223** ॥

जब शिष्य ने अपने इस अनुभव के विषय में गुरु से कहा, तो गुरु ने उसके कथन का समर्थन किया और पुनः, कुछ सोचकर कहा, यह 'सोऽहं' मंत्र ही है जो सच्चा गुरु है, एक ऐसा समर्थ गुरु जो सब प्रकार के संशय और उनसे जनित दुःखों को अनायास ही दूर कर देता है। उससे जो सर्वव्यापकता का अनुभव होता है उससे साधक को अपने विराट स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। गुरु इस अनुभव का विस्तार से वर्णन करते हैं जब साधक को प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि वह इस सृष्टि के सभी अणु-परमाणुओं में उपस्थित है।

जा कारन जग ढूढिया सोतो घट ही या रि,
परदा दीया भरम का ताते सूझे नाहि ।''

रवि–भाण संप्रदाय के संतों ने भी कबीरजी के घटभीतर बैठे राम की बात को स्वीकार करते हुए उसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

''आतमराम अलगा नहीं रे, हुं तो बुद्धि जाणु बाल :
दिल मांहि बेठा देवता रे, दर्शन देशे दीन दयाल ।''
– भाण साहेब

''भीतर खोजे रामकु, बाहर का धावो ?
बाहर खोजे नहीं, भीतर हरि पावो ।''
– रवि साहेब

''सास उसासे समरीयें, अहोनिश लेजे नाया,
नूरत–सूरत से नीरखीये तो, धरोधर आतम रामा ।''
– खीम साहेब

''देखो खावीदका खेल, दर्शन में तो देख्या रे,
बाहीर देख्या और भीतर देख्या,
देख्या अगम अमारशा रे... ।''
– त्रिकम साहेब

''बेनी मुने भीतर सत्‌गुरु मल्या,
आज तो वरताणी छे आनंद लीला ।''
– लक्ष्मी साहेब

''बोले–बोलावे सबघट बोले,
सब घरमां तो रह्यो समाय ।''
– दासी जीवण

''गुरुजी मल्या छे रे घटडानी माई, सुरता शून्यमां समुह

रवि साहब दूसरे रूपक के रूप में ''लोहि मिटटी का बंगला'' बताते हुए मनुष्य के शरीर की रचना का रहस्य बताते हैं –

''तन बंगलो क्रिया कमठाण
सोई तो करीबर न्यारा है ।
ओहम कार की इंट लगवाई,
सोहम कार का गाराथी ।
चेतन चुनो मौंही माया का मसाला
रंग लगाया रणुकार है ।''

मनुष्य शरीर–देह की रचना के पीछे क्या रहस्य है, वह किसने बनाया है ? यह रहस्य बताते हैं । बंगले के कारीगर की प्रशंशा की है, जिसने यह देह बनायी, ओहम–जीव, सोहम–ब्रह्म, रणकार, अनाहतनाद, पंचतत्त्व, पच्चीस मजदूर पच्चीस प्रकृति, तीन गुण, नौ दरवाजे, दस खिडकी, चार चपरासी इसमें मैत्री, करुणा, मुद्रिका और उपेक्षा इस विविध जीव–वस्तु का निरूपण किया है । बंगले को यहाँ मनुष्य देह की उपमा दी गई है । मनुष्य देह की रचना का अलग–अलग वर्णन करके रवि साहब ने अपनी अद्‌भुत कौशल का परिचय करवाया है । जैसे भक्तिकाल में कवियों ने किया है । इस पंक्ति में रवि साहब ने इस बंगले के द्वारा कहा कि उसके उत्तुंग शिखर पर परम पूण्य परमात्मा बिराजमान हैं ।

इस रूपकात्मक बानी द्वारा रवि साहब ने मनुष्य शरीर में बसे तैंत्रीस करोड देवताओं के दर्शन करवाते हुए कहा कि यह शरीर नहीं ईश्वर है, इसलिए उसकी पूजा अर्चना करो । यह अद्‌भुत वर्णन माना जाता है ।

तंबाकू द्वारा 'होका' का सेवन सामान्य जन–समूह में होता है । 'होका' (हुक्का) रूपक द्वारा रवि साहब ने मनुष्य देह की सूक्ष्म भूमिका समझाई है । 'होका' में श्रीफल की कोठी है । वह एक पिंड है । इस के ऊपर चोटी है । वह मेरु मंडल है ।

धार्मिक बानियों के रूप में व्यक्त करते हैं । प्रश्नों के रूप में खीम साहब कहते हैं...

"जीरे संतों भेद अगमरा बुजोरे,
कैसे सतगुरु, क्युं कर लीखे नाम,
कहाँ उनको देखिए कहाँ है आतमराम ।"

खीम साहब पूछते हैं, प्रभु प्राप्ति के लिए सतगुरु को किस रूप में स्मरण करना और नाम धारण की बात भी करते हैं, आत्माराम ईश्वर कहां है ? और उनको हम कहाँ देखें ? इसके उत्तर में रवि साहब कहते हैं...

"श्वास–उच्छवास सतगुरु–समरिये,
घटा घट है आतमराम ।"

रवि साहब उत्तर देते हुए कहते हैं कि प्रत्येक खास में सतगुरु का स्मरण करो, अहर्निश, आठों प्रहर उनका नाम जपो, सूरत उसकी मूरत की तरह देखों, तब तुम्हारी दृष्टि में, घट–घट में ईश्वर की प्राप्ति होगी ।

प्रश्न : *"कहाँ से वीज करे झबुका,*
कहाँ से ज्योत जागे,
कहाँ सतगुरु की नोबत बाजे,
तखते कौन बिराजे ।"

उत्तर : *"आप तेज से करे झबूका,*
त्रिकटी ज्योति जागे,
गगन मंडल में नौबत वागे
तखते आप बिराजे ।"

यहाँ संतों की पारस्परिक बात के संबंध में प्रश्न की उत्तर प्रक्रिया है । यह ज्ञानगोष्ठी का महत्त्व रखनेवाली है । खीम साहब के प्रश्नों का उत्तर रवि साहब द्वारा मिलता है । रवि–भाण संप्रदाय का आगम–भेद भी ज्ञानगोष्ठी में ही आता है । सतगुरु–स्मरण, नुरत–सूरत, साधना–त्रिकुटी में ध्यान करना,

गगन–मंडल में नोबत का ताल सुनना, ओहम–सोहम से भी अलग सत् शब्द के स्वरूप को जानना । सभी प्रश्नों के उतर देते हुए अपनी बानियों में उनसे सत्य निरु@ा करने का आग्रह मिला ।

गुरु भेष का अजब खेल दिखाते हुए प्रश्न–उत्तर किया जैसे : रविसाहब और खीम साहब :

प्रश्न : ''कौन तेरी माता कौन तेरा पिता
कौन पुरुष का चेला ।''

उत्तर : ''सत मेरी माता, धर्म मेरा पिता,
आदि पुरुष का मैं चेला ।''

प्रश्न : ''किस बीध करिये सेवा स्मरण
कपी से टले काण हीरा ।''

उत्तर : ''श्वास उच्छवास करी ले स्मरण,
कटे कर्म बंधन तेरा ।''
''कहे रविराम भाण प्रकाशा
खीम सतगुरु भाण मेरा
देखो खेल गुरु अजब गेबका
नाथ निरंजन का नेडा ।''

सृष्टि के सर्जन के पीछे परमात्मा का अजब खेल है । देह मेरी माता, पिता, धर्म और आदि पुरुष भाण गुरु । श्वासोश्वास उनका स्मरण करते हैं, इससे उनके अजब रहस्य को पहचान सकोगे ।

ज्ञानगोष्ठी रवि साहब का एक मुख्य लक्षण है । ऐसी बानियों में उन्होंने योग, रहस्य, उपदेश, नामस्मरण और आत्मदर्शन के अनुभव अभिव्यक्त किये है । जीव–जगत और माया का मर्म समझाते हुए ब्रह्माण्ड में अखिल स्वामी का दर्शन करते और उनकी साधना इस ज्ञान–गोष्ठीमय बानियों में अभिव्यक्त है ।

"जोगी अजरायल अनभेद ज्ञानी,
हूँ राणी सोहम वरीया ।"

अहम जिसके मन में नहीं है, वही सोहम को पा सकता है, रवि साहब कहते हैं कि जागी हूँ, मैं छोड गई उसे मृत्यु का डर नहीं है । वह – अजरायल ज्ञानी बनकर अविनाशी को पा गए, ऐसे जोगी वासना से मुक्त हैं, इस मुक्ति से शीतल शब्दों का उच्चारण करते हैं ।

रवि साहब हठयोग के द्वारा देह शरीर का दमन करनेवाले जोगियों से कहते हैं कि .....

"काहीकुँ जोगीडा दोहीकु दमत हो,
काहीकु कष्ठत हो काया, का ।"
सून मंडल शक्ति का वासा,
तीन पुत्र जनुनी जाप,
ज्यां–ज्यां जाप है त्यां–त्यां थाय है,
ध्यान धरत ही त्यां माया का ..... ।
नाम ही रूप रहीत रविदासा,
सोहं निरंतर गीत गाय का ..... ।"

क्यों देह को कष्ट देते हो ? वह अजन्मा परमात्मा है, वह जाप करने से नहीं मिलता, जाप गलत हैं, ध्यान माया है, इंगला, पिंगला और सुषुमणा साधकर त्रिपुटी बिन्दु में ध्यान करने से परिब्रह्म न्यारा लगता है । पाँच तत्त्वों के अलग–अलग रंग हैं । निर्गुण ब्रह्म रूपरंग से रहित है । स्थूल और सूक्ष्म से ज्यादा समग्र ब्रह्मांड के स्वामी परमात्मा काया को कष्ट देने से नहीं मिलते ।

"पंच मुखे अग्नि परजाले
ऊँधे मस्तक खाये जुलाहा

'शशि सूर में, सूर शशि में अणसारे उलटावे,
नीरखे पल पल नूर निरंतर, अनहद नाद बजावे ।'

सर्व प्रथम प्राण को स्थिर करके उसकी गति को जान लेना चाहिए । इडा–पिंगला में@बहते हुए प्राण को गुरु के संकेत द्वारा उलटा करके उसे सुषुम्णा में प्रवेश कराके, मेरुदंड में से गुजरते हुए ऊँचे परबत पर ब्रह्मरन्द्र तक पहुँचना है । सदगुरु के शब्द के इशारे त्रिवेणी में तार मिलाके घट के भीतर बजते अनाहत नाद को सुनने का अनुभव करना है –

'शब्द शब्द जयां सुरत समाणी, सतनाम पहिचान रे,
दास मोरार दया सदगुरु की, चिंता मटी चोखाना रे ।'

सदगुरु के वचन के अनुसार सतवृत्त का पालन करते हैं । अंतरात्मा की आराधना करते हैं । चंचल मनको नामस्मरण में स्थिर रखकर आत्मस्वरूप की पहचान कराई गई है –

'सतगुरुए सतनाम सुनायो, सोहम शब्द में सुरत पायो,
जागृत ज्योति ज्योत जगायो, तेजमा तिमिर गिया टली रे ।'

योगवाणी के साथ में संतों ने मर्म वाणी का उच्चारण किया है, मोरारसाहेब की मरमीवाणी लोकप्रिय वाणी रही है –

'अचरज नजरे आया संतों जलमे. ज्योति जगाया,
बना मुल एक तरुवर ठाडा, डाळ पान नहीं छांया,
फळ बीन फूल बीन फलीया तीन लोक छवराया ।''

'जल–ब्रह्मरन्ध्र में ज्योति प्रकाश रही है । इस देहरूपी वृक्ष में मूल, डाल, पान, फूल, फल नहीं हैं । फिर भी मानवरूपी फल तीनों लोक में फैला हुआ है । इस आत्मारूपी पक्षी के पंख नहीं है, फिर भी वह विहार कर रहा है । इस रहस्य को समझाते हुए रवि साहेब ने कहा है –

'पांव विना चलना, चांच विना चुगना, पंख विना उड जाय,
बीना सुरत की नूरत हमारी, अनल न पहोंचे त्यांइ ।'

➢ *योगसाधना :*

प्रेमलक्षणा भक्ति का साधक सिद्ध होता है । दासीजीवण की प्रेमबानी में सूक्ष्म संवेदनाओं के साथ योगबानी, योगसाधना की सिद्धि भी प्रकट हुयी है । दासीजीवण जंगल या गुफाओं में बैठकर साधना नहीं करते थे, किंतु गुरुमुखी मंत्र के प्रभाव से अपनी साधना को साहब बना दिया और 'सोहम' को

श्वासोश्वास में भरकर नाम स्मरण किया है । प्रभुनाम के जप द्वारा प्राण योग सिद्ध किया है और अपनी सुरता को शून्य में स्थापित किया है । उसीसे कुंडलिनी शक्ति जागृत की है ।

सामान्य स्थिति में कुंडलिनी सर्पाकार में अधोमुखी होती है । जिसे 'ओहम' श्वास भरके, सोहम श्वास को छोडने के बाद, इंगला नाडी में से दाई पिंगला नाडी में बदलकर उसे सुषुम्णा नाडी में प्राणों को थोडी देर रोककर ईश्वरानुभूति होती है । इस क्रिया को समझाते हुए दासीजीवण कहते हैं कि –

"अवधू दिया नखत पर डंका रे, सो घर सजे पाया रे जी,
नाभी कमले जी नटवर चडिया, पवन पुरुष पलटायो रे जी
वंकनालकी खडकी खोली, उलटा राह चलाया रे जी ।'
"इंगला पिंगला कुषम्णा साधी त्रिवेणी मोलमें आई
कोइ जागंदा आ दिलमांय, झणंक, झालरी वागी ।"
नवे दरवाजा नवी रमत का दशमें मोल ओ देखाई,
सोइ महेल मा मेरम बोले, आप त्यारे ये घर जाय ।"

इस साधना क्रिया द्वारा गगनमंडल के शून्य शिखर के सहस्त्रदल पद्म में बिराजमान परमात्मा ज्योति स्वरूप में प्रकट होते हैं । जो अवर्णनीय हैं । ऐसी स्थिति में अनहदनाद सुनाई देता है । ऐसी अवस्था में साधक स्वयं परब्रह्म में समाहित हो जाता है । इस अनुभुति के लिए दासीजीवण कहते हैं –

जाग्रत स्वप्न सुशोभित तुरिया, उनमुनि मुंदा लागी,
अक्षरातीत आपे नर ओलख्या, तेनी मे भ्रमणा भांगी ।"

अर्थात् अक्षरातीत अविनाशी परमात्मा के दर्शन करके भय, भ्रमणा दूर हो जाती है । अंतर का अंधकार दूर हो जाता हैं । ऐसा अनुभव किसे होता है ? इसका जवाब देते हुए दासीजीवण कहते हैं कि :

"सोहम घर जावे संत सुभागी बीक कछुवे नाय !

दासीजीवण सतभीमका चरणा, अटल अभेपद थाय ।"

अर्थात्, इस सोहम् के घर में परमात्मा के दर्शन के लिए कोई भाग्यशाली ही निर्भय होकर जाता है और अपने भीतर ही परमात्मा के दर्शन करता है ।

"जी रे संतो, भेद अगमरा बुणो रे,
कही उनकूं देखिये तो घटोघट आतमाराम ।"

वैसे तो रवि साहब की भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग ही सबसे अधिक है, मगर उन्होंने तत्सम और अरबी–फारसी शब्द भी बडे उत्साह और कुशलता से प्रयुक्त किये हैं । तत्सम शब्द का प्रयोग देखिये...

"नवमी सोहं दश भी कोई, सोहं सहस सठायी सारा,
सोहं तेत्रीस क्रोड में व्यापक, सोई निज विरले निरधारा ।"

तो अरबी–फारसी शब्द भी सहजता से आकर काव्य में प्रकट हो जाते हैं ।

"अमर पियाला मारा सतगुरुजी पाया, मद मस्ताना हुँ दिपाना ।"

रस की दृष्टि से देखे तो रवि साहब की अधिकांश रचनाएँ शांत रस की हैं । निर्वेद भाव शांतरस की रचनाओं में प्रतीत होता है । शांत रस के अलावा वीर, शृंगार, अद्‌भुत आदि रस भी कहीं–कहीं दिखाई देते हैं । प्रेमलक्षणा भक्ति की कृतियों और रूपक कृतियों में संयोग शृंगार के सुचारु चित्र मिलते हैं ।

"मे पतिव्रता नार पिया की, बाहेर कबडु न जाऊँ
परखा पेरु, पियाकुं, ईहँ, आन पुरुष नीह चाहुँ रे ।"

प्रियतमा के रूप में भक्त को प्रभु के प्रति प्रीति हो गई है । तो निम्न पंक्तियों में संयोग शृंगार का सुंदर चित्र व्यक्त होता है –

"रे पतिव्रता नार पिया की, बाहेर कबहु न जाऊँ
परखा पेरु, पियाकुं हहँ आन पुरुष चाहुँ रे ।"

"रे रंकार पति और सुरति तोहागण,
अरसपरस खेले होरी हो ।

इसका कारण यह है कि गुरू की कृपा से ही परम तत्त्व की प्राप्ति होती है और सद्गुरु द्वारा प्रदत्त 'शब्द' से ही भक्ति का बीजांकुरण होता है। वह योग को दृढ़ करने की युक्ति बताकर मनुष्य को दुविधा मुक्त करने वाला है।

गुरु ही अपनी कृपा से भक्त को भ्रम मुक्त करता है। सद्गुरू की कृपा से मनुष्य के सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। साधना में गुरू का महत्त्व इसलिए है, कि शिष्य जिस मार्ग से चलकर परम तत्त्व को पाना चाहता है, गुरु उस मार्ग पर चल चुका है। उसे मार्ग की कठिनाइयों और बाधाओं का अनुभव भी है और उसने प्रभु प्राप्ति के आनन्द को भी पाया है। इसीलिए गुरु ही शिष्य का सच्चा मार्ग दर्शक हो सकता है। सभी संत इसे स्वीकार करते हैं। भगवत तत्त्व पाने के लिए गुरू आवश्यक है। सन्त कवि मोहन साह गुरु के इस महत्त्व का संकेत करते हुए कहते हैं :

बलम की सेजिया में मजवा लूटी।
सतगुरू दया मूल पद पावा, बकुलन कै संगति छूटी।
हंस-विहार करत निसुबासर, कौवन कै दोनों आँखि फूटी।
अमर सोहाग जुगन जुग सौहै, काल करम कर बंधन टूटी।
'मोहन' सब्द फुरै फुर भाखै, सुजन लिहिन मत घूँटी।। [1]

वे गुरु की महत्त्व का वर्णन करते हुए अन्यत्र कहते हैं :

पिया आये हमारी सेज भली।
जब सतगुरु ने कृपा किया, सतदृष्टि लोक की गली खुली।
चोप कै चुन्दरि प्रीति पिछोरा, सुरति सुहागिन साजि चली।
सोहंग रूप औ शब्द अटारी, तहाँ खिली एक अजब कली।
'मोहन साह' पिया संग सूते, तुमहूँ आवो मेरी अली।। [2]

गुरु की महत्ता का वर्णन करते हुए मोहन शाह कहते हैं कि गुरु की कृपा का वर्णन असीम है गुरु कृपा से तुरन्त कल्याण हो जाता है।

---

1. साँईदाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य, डॉ० राधिका प्रसाद त्रिपाठी, पृ0 124

2. वही, पृ0 110

मोहन शाह अन्यत्र कहते हैं भगवान अनंत सौन्दर्य से युक्त है, सूर्य और चन्द्र की कान्ति भी उसके सौन्दर्य के समक्ष कुछ नहीं है :

सब्द धुनि बाजै सोहंग सार ।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, तुरिया तत्तु बिचार ।

---

1. संतवानी संग्रह, भाग एक, पृ0 102
2. साँईदाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य डॉ० राधिका प्रसाद त्रिपाठी, पृ0 73
3. वही, पृ0 75

कोटिन सुन्य रोम ब्रह्मडा, सबसे न्यारा नाम अकार ।
करम अचार ज्ञान ना पहुँचै, झीनी गयल अहै टकसार ।
'मोहन शाह', झलक वह निरखत, चाँद, सुरूज छवि वार ।। [1]

वे कहते हैं उनका दर्शन पाते ही संसार का सब कुछ वैभवहीन हो जाता है :

भा उजियारा भानु उइ आये ।
मिटिगे तारा छिपी चाँदनी, भोर होत दीपक मरि जाये ।
ज्यों-ज्यों बढ़त चढ़त ऊँचे काँ, कोटिन तेज किरन झरि लाये ।
झलकै जोति पलक नहीं लागै, खूब चटकि छविछाये ।
निरमल नाम निअच्छर निरगुन, मोहनसाह देखि सुख पाये ।। [2]

सन्त महाआन्नद शाह ने ईश्वर की असीम सत्ता का निरूपण करते हुए कहा है कि ईश्वर पुष्प में वास तथा पाषाण में आग की तरह जगत में व्याप्त है और उसकी कृपा पाने पर जगत की सारी चमक फीकी पड़ जाती है :

सूरति मोहन रसिया की नैन के रंध रहता है ।
बसी जैसे पुहुप वासा, अनल पाषाण रहता है ।
वइसे ईस सीस का वासी, बूझि सूझि में आता है ।
कहता सतगुरु जोई पंथा, सोई कहै बेद संता है ।
अलख कुल खलक का वासी, दास कोई दरस पाता है ।
चमकता है चसम आगे, खसम शोभा सोहाता है ।
चन्द्र, रवि, भास, उजियारा, दिवस रजनी देखाता है ।
महाआनंद मोहन मुख, सुजन फौरम झलकाता है ।
बिना रस वासना सारो, नाम के रंग माता है ।। [3]

इसी प्रकार यारी साहब भी अनहद नाद, जिसमें सभी राग समाहित है, को निरन्तर सुनते रहते हैं :

बाजत अनहद बाँसुरी, तिरबेनी के तीर ।
राग छतीसो होइ रहे गरजत गगन गम्भीर ।। [1]

एक अन्य पद में वे कहते हैं :

बेला फूला गगन में, बंक नाल गहि मूल ।
नहिं उपजे नहिं बीनसै, सदा फूल कै फूल ।। [2]

साँईदाता सम्प्रदाय के प्रमुख संत मोहनशाह ने भी उस दिव्य महल की ज्योति और उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा है कि उसकी दिव्यता की तुलना किसी अन्य दिव्यता से नहीं की जा सकती :

बलम कर बँगला बना अजायब ।
तोफा महल कँगूरा लाखों, झलक रही दर दायब ।।
नुमाँ नूर समाँ सम रोसन, राति दिवस छवि छायब ।।
अरस अनूप जड़े अति हीरा, महा मुस्क अंतर जग लायब ।
उनकी सान दुसर ना पटतर, तहँ हरदम 'मोहन' है तायब ।। [3]

साँईदाता सम्प्रदाय के एक अन्य कवि महा आनन्द शाह ने भी अपने पदों में इसी परम आनन्द की स्थिति का वर्णन किया है :

अनहद गरजा है गगन पै, बिजली चमके गुरु का ग्यान ।
इंगला-पिंगला तत्तु बिचारौ, सुरति चढ़ी असमान ।
सोहंग शब्द झरै जहाँ निसु दिन, दरसै पुरुस पुरान ।।

---

1. संतबानी संग्रह, भाग एक, पृ0 113
2. वही, पृ0 114
3. साँई दाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य, डॉ० राधिका प्रसाद त्रिपाठी, पृ0 126

कबीर दास जी ने "पुस्तक की लेखी"की अपेक्षा "आँखों की देखी" को महत्त्व दिया है ।

सन्तों ने गुरु ज्ञान को सर्वोपरि ठहराया है । गोविन्द साहब ने ज्ञान का वर्णन करते हुए कहा है कि सद्गुर के ज्ञान के रंग में स्वंय को रंग कर उस परम ब्रह्म का परिचय प्राप्त किया जा सकता है तथा उस परम सत्ता का कृपा पात्र बना जा सकता है । अन्यत्र वे मोह माया को भंग करने में प्रमुख भूमिका गुरु की बताते हुए कहते हैं :

जब वह सुरति चैतन्यमता गुरु ज्ञान की पैठी ।
तब माया डरि जाय ठिकाने अपने बैठी ।। [1]

सन्त पलटू साहब ज्ञान के द्वारा ही मन की उदण्डता को वश में करते हैं । उनके अनुसार संसार का सारा मोह ज्ञान की तलवार से छिन्न-भिन्न हो जाता है । ज्ञान की कोटियों से तत्त्व ज्ञान को श्रेयस्कर और सर्मथ माना है । परसाद साहब ने भी तत्त्व ज्ञान की साधना को प्रमुखता दी है :

चलौ जी चलै हरि रंग और लै जब पाइ गुरू गमित देइ हेला ।
सत्य के पाप जब झूठ को छाड़ि दे उलटि के बिन्दु में नाद मेला ।।
तत्व विचार के ज्ञान को मथै जब गुरु से सरस तब हुआ चेला ।
लोक औरि वेद इन्ह दोउ को छाड़ि के दास परसाद यह खेल खेला ।। [2]

सन्त मोहन शाह ने पुस्तकीय ज्ञान को अन्धा ज्ञान कहा है । जिसमें विवेक दृष्टि प्राप्त नहीं होती है :

अन्धा ग्यान सूझि ना आवै, भूला फिरै बेकाम । [3]

---

1. गोविन्द साहब की बानी, पृ0 2
2. बावरी पंथ के हिन्दी कवि, डॉ० भगवती प्रसाद शुक्ल, पृ0 354
3. साँईदाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य, डॉ० राधिका प्रसाद त्रिपाठी, पृ0 92

साँईदाता सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त मोहनशाह का योगी, योग की कोई जानकारी नहीं रखता। वह ध्यान की धूनी लगाता है और भाग्य का भस्म रमाता है। वह आत्मतत्त्व की चिनगारी से परम ज्योति प्रज्ज्वलित कर, अमरत्व की प्राप्ति करने में पूर्णतः सक्षम है। मोहनशाह की साधना में योग का सन्निवेश उस समय होता है, जब साधक नाम जप की क्रिया को श्वास-प्रश्वाँस से जोड़ लेता है तथा अजपाजाप का प्रारम्भ हो जाता है। अजपाजाप की स्थिति में शब्द, इंगला पिंगला नाड़ियों से चालित स्थूल प्राण वायु के माध्यम से त्रिकुटी पर पहुँचता है जहाँ उसका सम्बन्ध सुषुम्ना नाड़ी से हो जाता है। सुषुम्ना में सूक्ष्म प्राणवायु का संचार होता है। शब्द को त्रिकुटी पर ले जाने का कार्य ध्यान द्वारा सम्पन्न होता है। अन्य योग साधकों की भाँति मोहनशाह ने भी त्रिकुटी को त्रिवेणी की संज्ञा दी है और इसे इड़ा (गंगा) पिंगला (यमुना) और सुषुम्ना (सरस्वती) का संगम स्थान बताया है :

पिया संग सजनी प्राग जावै।
गंगा जमुना बीच सरस्वति, नाम अछैबट चढ़ि जाबै।
त्रिकुटी धार बहै तिरबेनी, मंजन करत पाप सब भागै ।।
गगन किला प्रयाग में अनहद, ज्योति अलख एक जागै।
'मोहनसाह' करि मन निहकरमी, अजपा साधि चरन तर रहबै ।। [2]

---

[1] बावरी पंथ के हिन्दी कवि, डॉ० भगवती प्रसाद शुक्ल, पृ० 217

[2] साँईदाता सम्प्रदाय तथा उसका साहित्य, डॉ० राधिका प्रसाद त्रिपाठी, पृ० 85

पृथ्वीशाह ने भी अजपाजाप, अनहद, इंगला, पिंगला अष्टकमल आदि की चर्चा की है :

संतों प्रात भजो हरि नाम, जन्म नर सुफल करो।
अजपा चरखा घूमन लागे, अनहद सब्द झरो।
सत्त सुकृत का खूँटा गाड़ो, सोहं कलस धरो ।।
इंगला पिंगला सुखमन नारी, निसिदिन रगरि भरो।
मन में ही सूरत नहिं हाले, कलि मल आय जरो ।।
अष्टकमल उर अन्तर बिकसों, दीपक ज्ञान बरो।
गुरु पद नाक सीस धरि सेवो, तब भव जल उबरो ।। [1]

मोहन शाह ने इसे "सुखमनि सर" की संज्ञा देते हुए इसका बड़ा ही जीवन्त वर्णन किया है :

૯

તે કહીએ, તે કહીએ, સાધુ તે કહીએ, તે કહીએ –;
જે માન ગુમાન ન લહીએ, સાધુ તે કહીએ, તે કહીએ –
તે કહીએ ૦ ૧

જેને રોમ રોમ રંગ લાગ્યો,
તેના દલનો ધાંખો ભાગ્યો,
મન, વાણીથી રહે આઘો – સાધુ ૦
તે કહીએ ૦ ૨

જે આઠે પ્હોર ઉદાસી,
સાધુ ઉનમુનિના વાસી,
તેને શું કરશે ચોરાસી ?! સાધુ ૦
તે કહીએ ૦ ૩

જે મન ધ્યાન સુન્તમે ધાયે,
સોહંગ શબ્દે સમાયે,
એક રામ રામ ગુણ ગાયે – સાધુ ૦
તે કહીએ ૦ ૪

જે સુરત નૂરતને જાણે,
તે ધૂન ગન્યમાં આણે,
પછી જોગમાયા પરમાણે – સાધુ ૦
તે કહીએ ૦ ૫

મુનિ જીતા તે શું જાણે ?
ગુરુ હરિકૃષ્ણથી એ માણે,
જે ભાવ ભક્તિ પરમાણે – સાધુ ૦
તે કહીએ ૦ ૬

૧૬

શોધી લેજો રે તમે સંત સુજાણ !
શૂન્યમાં આંબો મ્હોરીઓ !

મૂળ ચક્રથી મૂળ નાંખ્યું, આંબો હવો પ્રકાશ રે ;
પાંખડે પાંખડે પરખા કીધી ને વૃક્ષ થયું ઝાડ રે ! –
પાંદલડાં રે પાંદલડાં રે ઉઘડીઆં ચાર ! –
શૂન્યમાં આંબો મ્હોરીઓ ! શોધી ૦ ૧

સોહં શબ્દ રૂપી સોટો ચાલ્યો ને ગુરુ મ્હોટા દયાળ રે ;
આંબો ઘેર ગંભીર પરવર્યો, કોઇ વીરલા પામે વાર રે ! –
જઇ ચડીઓ રે જઇ ચડીઓ રે કોઇ શૂન્ય આકાશ ! –
શૂન્યમાં આંબો મ્હોરીઓ ! શોધી ૦ ૨

શૂન્ય મંડળ સોહામણું ! ત્યાં આંબો હુવો પ્રકાશ રે,
ત્યાં અમૃતફળ નવાં નીપજે, પંખીને પ્હોંચે આશ રે ; –
પડતાં ઝીલે રે પડતાં ઝીલે રે હરિના દાસ.
શૂન્યમાં આંબો મ્હોરીઓ ! શોધી ૦ ૩

સુન્દર આંબો નિરખતાં, પ્હોંચી તે મનની આશ રે,
સાચા ગુરુ કેરા શબ્દને, તું વેડી રાખને પાસ રે ; –
પરમહંસ રે પરમહંસ રે પ્રતાપપ્રકાશ.
શૂન્યમાં આંબો મ્હોરીઓ શોધી ૦ ૪

અવસ્થાથી અળગો રહે, (ને) સુખદુઃખથી આગે;
મુનિ જીતા સત્ય કહે, તેને પાપ, પુણ્ય નહીં લાગે. ૩૩

ઓહંગ સોહંગ આત્મા, પ્રત્યક્ષ કહીએ દેવ!
મુનિ જીતા કહે સમજી, કરો સન્તની સેવ. ૩૪

ઓહંગ સોહંગ આત્મા, તે પર સુરતા આણ,
મુનિ જીતા! પરમાત્મા ઓળખ્યે, નહીં વૃદ્ધિ, નહીં હાણ. ૩૫

ઓહંગ સોહંગ વૈરાગ્ય છે, શુદ્ધ જ્ઞાનનું મૂળ;
મુનિ જીતા ચેતન બ્રહ્મ, તે સરવેનું મૂળ. ૩૬

જીવને તો વશ કરો, બોલ્યાનું શું કામ?
મુનિ નારાયણ એમ કહે, હાથમાં આવ્યા રામ. ૩૭

વાતોમાં તો વહી જઈયે, થોડું બોલ્યામાં સાર;
એકાન્તે બેસી ભજન કરીએ, તો સહેજે ઉતરીયે પાર. ૩૮

બાવા બેઠા સમાધિમાં, ભજનમાં કહાડે દન!
મોટું સાધન તે કહીએ, જે હાથમાં રાખે મન. ૩૯

જન ઉપજ્યા 'બ્રહ્મસે', દાતા, ભોક્તા બ્રહ્મ;
આપે આપકો દેત હૈ, તો કિસકો લાગે કર્મ! ૪૦

દૃષ્ટિ ઉપદેશ આપે તે મોટી કળા ,
જે થકી જંતના કંજ સીજે,
સેવતાં સુખ હોયે અતિ ઘણું,
જો સદ્‌ગુરૂ કેરૂં મન રીઝે....હરિ૦
પ્રત્યક્ષ રામ તે તત્ત્વવેતા વિશે ,
જેમ કુંડળ વિશે કનક દીસે,
મન વચન કર્મે સંતને ભજશે
અખા ! તેનું દ્વૈત દેખી મન નહિ જ હીસે....હરિ૦

અરજણ ભગત

[૧૧]

બંકનાળ રસ પિયા, યોગેશ્વર ઊલટી નાળ રસ પિયા હો જી,
પીયા અમીરસ ભયા તો અમર,ત્રિકુટી મહેલ પર તકિયા....યોગેશ્વર
નાભિકમળસે પવન ઊલટયા, દિયા દિલ્લીસે ડેરા હો જી,
ખટ ચક્ર વીંધીને ચઢિયા, ગગનમંડળ ઘર કિયા....યોગેશ્વર
તૃષા હે તનકી આશ પીવનકી, લહર લગન ઘર લહિયા હો જી
મગન ભયા મન ચઢી ખુમારી, રોમ–રોમ રમી રહિયા ...યોગેશ્વર
એક વચન જેણે સહી કરી માન્યા, એક વચન ઘર રહિયા હો જી
નૂર નિરંજન નજરસે નીરખ્યા, સોહમ વચને ઘર આયા ...યોગેશ્વર
સાચી રે બંદગી કર લો બંદા, ભજન કરો તો ભય ગઈયા હો જી,
દાસ અરજણ જીવણ કે ચરણે, જાગી તો અમર રહિયા...યોગેશ્વર

[૧૨]

મેરી નજર મોતી આયા, મૈ ભેદ અગમરા પાયા રે...ટેક
ઓહંગ સોહમના જાપ જપીને, ત્રિકુટી તકિયા ઠેરાયા,
ચલી સૂરતા કિયા સમાગમ, સુખમણ સેજ સમોયા રે....મેરી૦

(२) अर्जुन भगत

[भजन - ११]

बंकनाल रस पिया योगेश्वर, उलट नाड़ी रस पाया जी।
पीकर अमिय-रस अमर हुए हैं, त्रिकुटी महल डेरा धाया जी॥

नाभि-कमल से पवन उलटकर, दशम द्वार मन ठहराया जी।
षट-चक्रों को भेद कर ऊपर, गगन-मंडल घर पाया जी॥

तन की प्यास और पीने की आशा, लौ लगी तो घर लाहा जी।
मगन हुआ मन, चढ़ी खुमारी, रोम-रोम हरि समाया जी॥

एक वचन जिसने सत्य माना, वह निज घर में ठहरा जी।
नूर निरंजन नयनों देखा, सोहं शब्द घर आया जी॥

सच्ची बंदगी कर ले बंदे, भजन करे भय जाए जी।
दास अर्जुन कहे गुरु-चरणों में, जागे सो अमर पद पाए जी॥

[भजन - १२]

मेरी नजर में मोती आया, मैंने भेद अगम का पाया रे। (टेक)

ओंकार-सोहं का जाप जपा जब, त्रिकुटी पर ध्यान लगाया रे।
चली सुरति प्रभु-मिलन को आतुर, सुखमन सेज समाया रे॥

ख्यामदास का जीवन अत्यन्त सरल तथा आडम्बरशून्य था। भोजन के विषय में उनका नियम था कि स्थान पर जो भी सागपात, मोटा-झोटा अन्न प्राप्त हो जाय उसी से वे अपनी क्षुधा शान्त कर लेते थे। इन्होंने प्रारम्भ में ही कठोर साधनाओं द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया था। अतः उनमें अब किसी प्रकार की चंचलता शेष न थी। निरन्तर अभ्यास तथा योगियों की संगति से इन्हें यौगिक क्रियाओं का अच्छा अनुभव था। ख्यामदास की ख्याति उनके जीवनकाल में ही फैल चुकी थी। वे सत्तनामी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व योग के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे। गुरु जगजीवन साहब भी इनके संयम और योग की प्रशंसा करते थे।165

सत्तनामी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व ख्यामदास की विचारधारा यौगिक क्रियाओं से अधिक प्रभावित थी। किन्तु, जगजीवन दास जी के सत्संग तथा उपदेश के परिणामस्वरूप उन्हें जीवन के सच्चे अर्थों का बोध हो गया और उन्होंने कठोर साधना की अपेक्षा सहज-समाधि, अजपाजाप तथा नाम स्मरण को विशेष महत्त्व दिया। साधक को जीवन क्षेत्र में संलग्न रहते हुए सतत् सहज साधना में संलग्न रहने का मार्ग दिखाया। इनकी दृष्टि में अजपाजाप तथा नाम स्मरण दोनों ही आज के युग के लिए सर्वसुलभ तथा बोधगम्य विधियाँ हैं। ख्यामदास ने 'काशीकाण्ड' में लिखा है-

राजित सो मनि माल, हरखि जपै जिभ्या बिना।

तत्त तिलक कै भाल, ध्यान धरै अजपाय पै।।

यह गति ऐहै मंत्र की, बिन कर जिभ्या जाप।

उलटि साँस सोहे कहै, ईस भये फिर आप।

काया कोठी सोधि कै, हुंड़ी हृदय पसारु।

ख्याम निरन्तर बैठि कै, जब चहु तबै सखारु।।

अहलाददास जी ने अजपाजाप को ही सर्वश्रेष्ठ साधन माना है, इसके अतिरिक्त किसी अन्य साधन से साधना करना सूर्य को दीपक के समान बतलाना है। इन्होंने दोहे में लिखा है-

तेहि अजपा सम अवर मत, जो कोउ कहै सयान।

जन अहलाद सो महाजड़, रवि ले को दिप मान।।

इन्होंने विस्तार से साधकों को अजपा जाप की विधि भी बतलाई है-

अजपा जिकिरि होय बहु आनन, मन सुर सकल जपहिं मन तानन।

सब इन्द्री होय विषय विरागी, निज निज मुख अजपा अनुरागी।।

ग्यान बदन ते सुमिरहि कैसे, सब गुन गाइ नाइ प्रभु ऐसे।

दाया बदन दया जस गावै, क्षमा सुमिरि नहि शीश उठावै।।

निकट पाठ बाँचहि ब्रह्मचारी, पुनि विश्वास भास भय हारी।

सरधा मिली सयन मा बोलै, अस भजु अस भजु चित न डोलै।।

समितां मुख काइ एक कारा, अस करै अजपा सुमिरन सारा।

प्रेम आनन्द छन्द सुख गावे, चंद बदन दुति बरनि न आवे।।

साहेब अहलाददास ने कठिन योग-साधना की अपेक्षा सहज समाधि को अधिक उपयोगी तथा श्रेष्ठ माना है जिसकी विधि इस प्रकार है-

भयो सुन्य ध्यान मिटी सुद्धि माया, शब्द रूप जोगी अखंड समाया।

निराधार बास नहीं जन्म आवे, अभै झास विश्वास आलेख ध्यावे।।

मिलै एक तौ एक एकै कहावै, भये भिन्न स्वामी कि सेवा लगावै।।

कपट और चतुराई93 आदि को त्यागकर साधक को सत्यनाम की रट लगानी चाहिए। क्योंकि ये ही दो अक्षर "ततसार94 हैं। सोते-जागते, उठते-बैठते, प्रतिपल इसको स्मरण करने का सदुपदेश सन्त कवि ने दिया है।95 नाम-स्मरण ही संत-साधना का 'अजपाजाप' है। संत जगजीवन साहब इसे महामंत्र कहते हैं।96 उनकी स्पष्ट मान्यता है कि इस महामंत्र का जाप 'गुप्त-चुप्प' ढ़ग से सहज रूप से करना चाहिए।97 क्योंकि वेद, पुराण और सन्त वाणी ने यह घोषणा की है कि इस के समान और कुछ भी नहीं है।98 अगणित पापियों का नाम-स्मरण से उद्धार हो गया।99 इसीलिये जगजीवन साहब ने सतगुरु द्वारा प्रदत्त महामंत्र (सत्यनाम) को स्मरण करके सम्पूर्ण कार्य को सिद्ध हो जाने का सदुपदेश दिया है।

गोसाईंदास तुलसी की भाँति नाम को राम से बढ़कर मानते हैं-

जो राम प्रकट नहिं कर सके, सो सुमिरे भा नाम।

गोसाईंदास महिमा अमित, को करि सकै बखान।।100

देवीदास उच्चकोटि के नामोपासक संत थे। नाम के महत्त्व को बताते हुए सन्त कवि देवीदास ने कहा है कि नाम-स्मरण से पाप मुक्त होकर मानव अभय पद प्राप्त कर लेता है-

गुरु उपदेश मानि सत शब्दहि, दुइ अछर धुनि लावै।

देविदास के प्रभु जगजीवन, अभय भग्ति पद पावै।।101

इन्होंने श्वाँस-प्रश्वाँस अजपाजाप पर अधिक बल दिया है-

प्रीति परम परतीत ते, शब्द मधुर धुनि होइ।

अजपा लागि रहै नहिं छूटै अंतर मिलहि समोइ।।102

ख्यामदास की नामोपासना में अटूट आस्था थी। उन्होंने नाम को विस्मृत न करके सर्वदा स्मरण करने पर बल दिया है- "नाम बिसरै नाहिं सदहि साध लागी रहै।' ' 103 क्योंकि उनका द्दढ़ विश्वास है कि नाम सुमिरन से जीव के उद्धार के साथ-साथ सम्पूर्ण परिवार का उद्धार हो जाता है-

पाइ नाम मंत्र जेहि घट, सत्य सुमिरन जो करै।

तरै सो परिवार तारै, दास दरसन कै तरै।।104

उनकी द्दष्टि में तीर्थ, व्रत दानादि करने के बाद भी बिना नाम-स्मरण किये उद्धार होना कठिन है-

तीरथ वरत दान बहु करई, बिन वहि नाम पार नहिं परई।105

उन्होंने संसार से उपराम होकर अहर्निश राम नाम-स्मरण को महत्त्व दिया है-

राम नाम रखना रट लावा। कुल कुटुम्ब सब कहँ बिसरावा।106

इन्होंने बिना जिह्वा के अजपाजाप पर अधिक बल दिया है। उनका कहना है कि-

राजति सो मनिमाल। हरषि जपै जिभ्या बिना।

तंत तिलक कै माला। ध्यान धरै अजपा जपै।।107

है।

अस्तु, संत नवलदास के साहित्य में सर्वत्र ‘सत्यनाम’ की महत्ता स्वीकार की गयी है। नाम-स्मरण विधि नाम के अन्तर्गत प्रति दृढ़ विश्वास और उसे जीवन के सार तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। समस्त सिद्ध, ऋषि-मुनि, गोरख, शंकर, भरथरी आदि अनेक साधक उसी नाम का अवलम्ब लेकर अमरत्व प्राप्त कर सके। वही नाम सभी साधनाओं का मूलाधार है।122 कवि के अनुसार नाम के बिना सारी साधना व्यर्थ और निस्सार है। नाम के प्रति संत की सच्ची आस्था तो है ही साथ ही कवि ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ और प्रतिभा से उसकी साधना विधि का सुगम पथ बताना सच्चे संत का अति सार्थक प्रयास एवं योगदान माना जा सकता है।

अहलाददास ने अजपा जाप को सर्वश्रेष्ठ साधन माना है। इससे किसी अन्य साधन की तुलना करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान बताया है-

तेहि अजपा सम अवर मत, जो कोउ कहै समान।

जन अहलाद सो महाजड़, रवि ले को दिप मान।।123

इन्होंने विस्तार से साधकों को अजपाजाप की विधि भी बताई है-

अजपा जिकिरि होय बहु आनन। मन सुर सकल जपहिं मन तानन।।

सब इन्द्री होय विषय विरागी। निज-निज मुख अजपा अनुरागी।।

ग्यान बदन ते सुमिरहि कैसे। सब गुन गाइ नाइ प्रभु ऐसे।।

दाया बदन दया जस गावै। क्षमा सुमिरि नहिं शीष उठावै।।

निकट पाठ बाँचहिं ब्रह्मचारी। पुनि विश्वास भास भय हारी।।

सरधा मिलि सयन मा बोलै। अस भजु अस भजु चित न डोलै।।

समिता मुख काइ एक कारा। अस करै अजपा सुमिरन सारा।।

प्रेम आनन्द छन्द मुख गावे। चंद बदन दुति बरनि न आवे।।124

तोंवरदास नामोपासक सन्त थे। उन्होंने नाम स्मरण को साधना का मूल-तत्त्व माना है। उनके अनुसार सम्पूर्ण जगत् षड्रस विष तुल्य है। अतः इसे त्याग कर नाम रस का रसपान करना चाहिए-‘‘हरिदम पियहु मन नाम रस, तजु स्वाद षट रस जहर रे।’’ 125 क्योंकि नाम के रसास्वादन से दारुण दुःख दारिद्रय समाप्त हो जाता है-‘‘मिटै दुष दरिद्र दारुन-नाम की बलिहारिए।’’ 126 उनका विश्वास है कि भजन से प्राप्त प्रभु मिलन द्वारा साधक जीवन से मोक्ष प्राप्त कर लेता है-

यह मिलन भज संजोग सो हिल मनुजि तन सुमिरे तरे।।127

नहिं कबहुँ कुपथ पग, हरिनाम भजन कराहिरे।।

निरडंभ पाषंड ते रहित, दुखाद सुनि गम साहिरे।।

दया धर्म सुभाव सीतल, संत के गुन आहिरे।।

नहिं हर्ष प्रभुवा पाइ, धन दुष परे न बिलखाहिरे।।130

शिवनारायणदास भी उच्चकोटि के नामोपासक सन्त थे। उनका कथन है कि सत्तनाम-सत्तनाम रट लगाने से बहुत दिनों के बड़े से बड़ा पाप धुल जाता है-''बहुत दिनन के मल चलि जैहैं, सत्यनाम रट लाय।'' 131 उन्होंने अजपाजाप के महत्त्व को स्वीकारते हुए अनवरत नाम स्मरण पर बल दिया है-

न कर चलै न जिह्वा डोलै, अजपा तार लगावै।

नाम निअक्षर अंतर में सुमिरौ, अजपा जिगर लगाय।132

उनका दृढ़ विश्वास है कि मन लगाकर निरन्तर नाम सुमिरन से जीव को आवागमन से मुक्ति मिल जाती है-''शिवनारायण जेहि घर नाम सुमिर, भव पार तरी।'' 133 वे घट के भीतर अनहदनाद श्रवण करने पर विशेष बल देते हैं-

अनहद बाजा निस दिन बाजै, सुनहु बैठ स्थाना।134

संत फकीरदास श्रेष्ठ नामोपासक सन्त थे। इनका कहना था कि जुगल अंक सिद्धि दायक है। इन्होंने अजपाजाप पर अधिक बल दिया। उनका मत है कि संसार में जीवित रहकर सत्तनाम को भूलना नहीं चाहिए-

यहि जिन्दगानी जब तक रहै जग माहीं। तब तक सत्तनाम बिसारै नाहीं।।135

सन्त रघुनन्दनदास की नाम-साधना में पूर्ण आस्था है। नाम-मन्त्र को विश्वासपूर्वक धारण कर सुमिरन करने वालों को उन्होंने धन्य कहा है-

नाम-मन्त्र विश्वास करि, जो सुमिरै नर-नारि।

रघुनन्दन धनि नर वह, जे पग धरहि पसारि।।136

उनका कहना है कि दो अक्षर को अहर्निशि स्मरण करने से सुखानुभूति होती है-

दुइ अक्षर रसना रट लावै। दिन अरु रैन जागि सुख पावै।।137

उनके अनुसार सत्तनाम के समान कोई मन्त्र नहीं है तथा सतगुरु चरण में ध्यान लगाने के सदृश्य कोई साधना नहीं है। सत्तनाम स्मरण किये बिना कल्याण होना कठिन है-

सतनाम सम मन्त्र नहिं, सतगुरु पद सम ध्यान।

अर्जुन्ह रेख खचाय कहा, तेहि बिन नहिं कल्यान।।138

सुरति-शब्द-योग

योगाभ्यास की विभिन्न रीतियों में सुरति-शब्द-योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। निर्गुण पन्थी सभी सन्तों ने इसी रीति को अपनाया है। इसी को सन्तों की सहज साधना, मन्त्रयोग तथा लययोग भी कहा जाता है। इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए 'कल्याण' के साधनांक में कहा गया है कि जिस-योगाभ्यास में शब्द की धारणा की जाती है, उसे सुरति शब्द योग अथवा शब्द योग कहते हैं।186 इस साधना में शब्द का किसी वाह्य मंत्र से कोई मतलब नहीं है। घट के अन्दर और बाहर एक निरन्तर सहज ध्वनि होती रहती है, जिसको अनाहत अर्थात् बिना किसी आघात के उत्पन्न ध्वनि कहते हैं।187 गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर अभ्यास करने से इस ध्वनि का श्रवण किया जाता है।188 उसी के माध्यम से चढ़कर चित्त नाद में विलीन हो जाता है।189 सुरति को स्रोत से व्युत्पन्न मानते हुए इसका अर्थ 'चित्तवृत्ति का प्रवाह' भी कहा गया है।190 'हठयोगप्रदीपिका' में भी चित्त के नाद में लय होने का वर्णन किया गया है।191 गोरखबानी में भी 'अवधू सबद अनाहद सुरति सो चित्त' के द्वारा शब्द को अनाहद नाद एवं सुरति को चित्त कहा गया है।192 इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि 'सुरति शब्द योग' का तात्पर्य 'नाद में चित्त का लय होना' ही है।

जगजीवन साहब का सुरति-शब्द-योग निर्गुण पन्थी सन्त कवियों के मतानुकूल है। इसके सम्बन्ध में सन्त कवि ने सहज मार्ग का अनुसरण किया है। सहज मार्ग को अपनाते हुए कहते हैं कि जिनकी सुरति सत्य में विलीन हो जाती है वे प्राणी अमर हैं तथा उनके समान अन्य कोई नहीं है।193 जिनकी सुरति मूर्ति में मिलकर एकमेव हो जाती है वे जग से न्यारे होकर संसार से विरक्त हो जाते हैं। जग में रहकर भी वे जग के मोह-मायादि प्रपन्चों से अलग हो जाते हैं।194 ऐसे लोग भौतिक कष्टों और दुःखों से सर्वदा के लिए छुटकारा पा जाते हैं।195 नाम के प्रति सुरति जुड़ जाने के पश्चात् मन का पाप196, भ्रम,197 मोह198 और विकार199 आदि दूर हो जाता है। इस प्रकार इसके माध्यम से मन से संशय दूर करके प्रकाशवान अव्यक्त की शोभा को निरखने का सन्देश कवि ने दिया है।200 जिनकी सुरति 'मुरति' में मिलकर उसी में विलीन हो जाती है वे 'मुरति' तुल्य हो जाते हैं, अर्थात् वे प्रभु में समाहित होकर प्रभुमय हो जाते है और उनमें प्रभु का वास हो जाता है।201 विश्वासपूर्वक निश्चित चित्त से युगल चरणों में ध्यान लगाकर सुरति डोरी को पुष्ट करना चाहिए।202 क्योंकि ऐसा अभ्यास करने से सन्त जन हरि-दर्शन में सफल हो जाते है।203 इसीलिये सन्त जन ऐहिक सुखादि की ओर से मुख मोड़कर परम तत्त्व में ध्यान लगाए रहते हैं।204

संत देवीदास योग की क्रियाओं के पूर्ण मर्मज्ञ थे। यद्यपि निराकार उपासकों ने योग, तप, व्रत आदि शारीरिक कठोर क्रियाओं की कटु आलोचना की है, किन्तु इनकी रचनाओं में योग का अंश दर्शनीय है। त्रिकुटी, इंगला, पिंगला, सुषमना, चौदह महल, शून्य लोक, सहस्रदल कमल, कुण्डलिनी, आदि योग के पारिभाषिक शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। इन्होंने 'गीता' में श्री कृष्ण द्वारा कहे गये वाक्य-युक्ताहार विहारस्य.....। को अपने जीवन में

(ग) सोवत जागत बिसरै नाहिं। रमत भ्रमत रहो नामहिं माँहि।। -वही, पृ. 341

96. (क) अजपा जपु दुइ अक्षर, घट मा जिभ्या नहिं डोलावहु रे।

देऊँ उपदेश मंत्र यह साँचा, सोई मन महँ गावहु रे।। - महाप्रलय, पृ. 1

(ख) जा जप करै दुइ अक्षर, घट मा जिभ्या नाहिं डोलावे रे।

माला लेइ न लेइ सुमिरनी, आपुहि जानि छपावै रे।। - ककहरानामा प्रथम, पृ. 4

(ग) अजपा जाप नाम के करई-परमग्रन्थ, पृ. 41

(घ) मन तुम जपहु अजपा जाप मंत्र राति दिन छूटै नहीं।

पकरहु डोरी पोढ़ि करि के चरनन से छूटे नहीं।। - परमनाम, पृ. 13

(ङ) अजपा जापत रहे निसिदिन, कबहूँ छूटि नहिं जाई। - शब्दसागर, पृ. 19

(च) अजपा जपत रहै बिन जिभ्या, कबहुँ नाहिं बिसरावे।

-जग. सा. की बा. पहला भाग, पृ. 101

(छ) अजपा जपत रहे बिन जिभ्या, मधुर मधुर मधु पावे। -जग. सा. की बानी, भाग-2, पृ. 40

97. (क) अन्तर नाम रहे रट लागी। गुप्त जक्त मा रहिये। - शब्दसागर, पृ. 71

(ख) सत्तनाम अंतर धुनि लागी, बास किहे संसारा।

ऐसे गुप्त चुप्प ह्वै सुमिरहु, बिरले लखै निहारा।।

-जग. सा. की बा., भाग पहला, पृ. 57

(ग) जगत भाव सुभाव देखि चलि, गुप्तहि अंतर रहे। - जग. सा. की बा. भाग-2, पृ. 98

(घ) नाम तैं रहेउँ सुरति मन लाये। जहा रहें तहँ गुप्त छुपाये।। -परमग्रन्थ, पृ. 41

(ङ) दुह अक्षर समान नहिं कोइ। वेद पुराण संत कहँ सोइ।।

- जग. सा. की बा., भाग-2, पृष्ठ-58

98. तरे अनन्त गने नहिं जाई। जे आए नामहिं सरनाई।। - अषविनास, पृष्ठ-141

99. काहे को दृढ़हु भटकहु भाई। सत्तनाम गुर दीन्ह बताई।।

अब विश्वास गहे दिढ़ सोई। महामंत्र भज सब सिधि होई।। -परम नाम, पृ. 15

12:46

2. कुंडलिनी और जठराग्नि का मिलन

कुंडलिनी शक्ति मूलाधार चक्र (रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले हिस्से) में सुप्त अवस्था में होती है। योग ग्रन्थों (जैसे *हठयोग प्रदीपिका*) के अनुसार:

> जब प्राणायाम के द्वारा 'अपान वायु' को ऊपर की ओर और 'प्राण वायु' को नीचे की ओर खींचा जाता है, तो ये दोनों वायु नाभि मंडल (जठराग्नि) पर आकर टकराती हैं। इस हवा के झोंके से जठराग्नि अत्यंत प्रचंड हो जाती है। इस प्रचंड अग्नि की गर्मी जब नीचे बैठे कुंडलिनी नाग तक पहुँचती है, तो वह जागृत होकर ऊपर (सुषुम्ना नाड़ी में) उठने लगती है।

यानी, **जठराग्नि ही वह माचिस की तीली है जो कुंडलिनी रूपी महा-ऊर्जा को सक्रिय करती है।**

3. ब्रह्माग्नि (संतों की परम अग्नि)

जब कुंडलिनी शक्ति जठराग्नि की गर्मी से जागृत होकर रीढ़ की हड्डी से होते हुए सबसे ऊपर **'सहस्रार चक्र' (मस्तिष्क के शीर्ष)** पर पहुँचती है, तो वहां साधक को 'ब्रह्म ज्ञान' या आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

इस अवस्था में जो ऊर्जा प्रकट होती है, उसे ही संत **'ब्रह्माग्नि'** या **'ज्ञानाग्नि'** कहते हैं। भगवद्गीता में भी श्री कृष्ण कहते हैं:

> *ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।*
> (अर्थात: ज्ञान रूपी अग्नि समस्त कर्मों और अज्ञान को जलाकर भस्म कर देती है।)

Ask Gemini

Flash

क्या बता सकते हैं तीनों बंद और सभी मुद्राएं कुनी को कैसे जगा करके ऊपर पहुंचाती हैं?

योग और प्राणायम की भाषा में, **तीनों बंद** (त्रिबंध) और **विभिन्न मुद्राएं** शरीर की सुप्त ऊर्जा—जिन्हें आप **कुनी** कह रहे हैं, जिसका सही नाम **कुंडलिनी (Kundalini)** है—को जाग्रत करके ऊपर (सहस्रार चक्र तक) पहुँचाने में एक अत्यंत वैज्ञानिक और ऊर्जावान भूमिका निभाते हैं।

इसे समझने के लिए हमें ऊर्जा के प्रवाह और इन ताला-चाबियों (बंद और मुद्राओं) के विज्ञान को समझना होगा:

1. तीन बंद (त्रिबंध) कैसे काम करते हैं?

योग में 'बंद' का अर्थ है **लॉक (Lock) या रोकना**। जब हम ऊर्जा को किसी विशेष स्थान पर रोकते हैं, तो उसका दबाव बढ़ता है, जिससे वह ऊपर की ओर गति करती है।

- **मूल बंध (Root Lock):**
    - **कैसे लगाते हैं:** मलद्वार और जननांगों के बीच की मांसपेशियों (पेरिनियम) को ऊपर की ओर सिकोड़ना।
    - **काम:** यह हमारे शरीर की अधोमुखी (नीचे की ओर बहने वाली) ऊर्जा यानी **अपान वायु** को ऊपर की ओर मोड़ देता है। कुंडलिनी

राग मङ्गल।

सतगुरु की ले सरनि करो हरि ध्यान ही।
काम क्रोध मोह लोभ बिड़ारो मानही॥
त्याग जगत की गैल अमर पद कूं चलो।

कागनकी मति छोड़िं साध संगति रलो॥
उत्तम है निज नाम रटन निस दिन करो।
सोहं सोहं होय सुरति हिरदे धरो॥
जित अनहद का देस बास ह्वां किजिये।
झिलमिल जोति अपार निरख सुख लिजिये॥
आगे सुन्न अस्थान काल को भै नहीं।
परमहंस कोई संत जु पहुँचत है तहीं॥
रामरूप गुरुदेव लखायो देस है।
सिद्धराम रल मिले रहो नहीं भेस है॥ ४३॥

राग काफ़ी।

देखा अजब तमासा जोर आगिनि जल माहिं लगी॥
तेल बाति बिन दीपमालिका बिन सूरज भया भोर॥
गूंगा राग छतीसौं गावैं बहरा सुन सुख पावै॥
पिंगल निरत करै अति छवि सों आंधा लख मुसकावै॥
ऊपर कूप तलै खड़ी मालन बिन नेजू जल काढ़ैं॥
सींचै बेल फलै बिन फूलों जड़ काटे सूं बाढ़ैं॥
सुता पिता की जोय भई जहां माकूं पूत खिलावै॥
समझैगा कोई संत विवेकी मूरख भेद न पावै॥
मुरदे मौति करी बस माहीं बाड़ि खेत कूं खाई॥
सिद्धराम या पद की करनी गुरु रामरूप बताई॥ ४४॥

सहज योग का साधन अत्यन्त सूक्ष्म सरल और पूर्ण योग प्राप्ति का अन्तिम एवं पूर्ण साधन है। इस में तो केवल श्वास में, प्राण सञ्चालन में वृत्ति को अचल बना देना पड़ता है, प्राणों का जो व्यापार बाहर को हो रहा है उसे आन्तरिक वन्धा बना कर उसमें तन्मय हो जाना पड़ता है।

सांसारिक दुःख और सुख का कारण केवल मन है, इस का चञ्चल स्वभाव ही यत्र तत्र इधर उधर भ्रमाता है, यही जन्म मरण के चक्र में घुमाता है। इसकी चञ्चलता को मेट

देने का प्रधान साधन प्राण संघर्ष ही है, श्वास में तन्मय होना ही है। जब इस मन रूपी पिशाच पर प्राणों का प्रहार बारम्बार होता रहेगा तब यह स्वतः ही अचञ्चल बन जायगा, शान्त हो जायगा।

संसार में प्रचलित समस्त प्रकार के उत्तम साधन इस मन रूपी मत्त गयन्द मस्त हाथी को काबू में करने के अर्थ ही किये जाते हैं। इसका चाञ्चल्य मिट जाने से स्वतः ही वासना का क्षय हो जाता है, पूर्णतः समता शान्ति और स्थिरता प्राप्त हो जाती है, द्वैत भाव समूल नष्ट हो जाता है। अद्वैत भाव की प्राप्ति हो जाती है, अपने से भिन्न कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता।

अतः सहज योगी बनो "मणि पूरक चक्र नाभि कमल से उठ कर मेरु दण्ड द्वारा सुषुम्ना नाड़ी के आधार पर चल कर शिखर लोक में पहुंच कर पुनः नाभि स्थान में आने वाले 'श्वास' में अपनी वृत्ति को निश्चल करो और नेत्रों को नासिकाग्र भाग पर स्थिर करो"।

करवाता है, इसीके बल पर तो मनुष्य स्थित प्रज्ञ हो सकता है। यही तो शरीर का अन्तिम धातु है, समस्त शरीर को बलिष्ठ स्वस्थ, चैतन्य और चिरायु रखने वाला है, यही एक सर्व पदार्थ है अतः इसको अखण्ड, शुद्ध, बलिष्ठ और निर्दोष बनाओ। मेरे वचन पर विश्वास करो कि "जो अखण्ड ब्रह्मचारी है वह बिना किसी प्रकार के साधन किये ही मुक्त है"।

आहार विहार के सुधार से ही वीर्य रक्षा हो सकती है। अतः आहार विहार का सुधार करो।

आहार विहार सुधरा, वीर्य की रक्षा हुई, प्राण सञ्चारण में वृत्ति स्थिर हुई, मन की चञ्चलता मिटी समता प्राप्त हुई और हो गया बस आत्म दर्शन, निर्वाण पद की प्राप्ति, जीवन मुक्ति नित्यानन्द का अनुभव और पूर्ण हुआ "सहज योग" हो गई अमृत पद की प्राप्ति।

अतः श्री गुरु देव की दया प्राप्त करके आहार विहार का सुधार करो और उचित मार्ग से चलने वाले श्वास में समगति से वृत्ति को तन्मय करदो। देश काल और पात्र की तथा अन्य प्रकार के साधनों की इस में कोई अपेक्षा नहीं। बस यही मेरा अन्तिम और सर्व श्रेष्ठ उपदेश है और यही योग, भक्ति, वैराग्य आदि का सार तत्व है। इस प्रर विश्वास करो, अवश्य ही तुम्हारा कल्याण होगा।

३ मणि पूरक चक्र — है। यह कमल नीले वर्ण और दश दल का है। इस कमल में प्रधान नाड़ियां इड़ा, पिंगला और इनके मध्य सुषुम्ना नाड़ी हैं। इस कमल में समान वायु का निवास है। समस्त शरीर को इसी स्थान से पोषण मिलता है अतः इसके अधिष्ठाता देव विष्णु हैं।

समान वायु हृदय में से प्राण और गुदा से अपान का आकर्षण करती रहती है। प्राण और अपान वायु के मिलने का नाम ही श्वास है। यही प्राण अपान का मेल (श्वास) नाभि कमल से मेरु दण्ड होता हुआ शिखर में पहुंचता है और तत्वों की गति के अनुसार (आकाश तत्व के प्राधान्य में श्वास बाहर नहीं आता, वायु में १२ अंगुल, अग्नि में ४ अंगुल, जल में १६ अंगुल और पृथ्वी में ८ अंगुल) मात्रा में नासिका द्वारा बाहर आता है। समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक महा प्राण और पिण्ड शरीर स्थित अल्प प्राण की नाभि मूल में एक ग्रन्थि पड़ी हुई है। जिस समय यह ग्रन्थि खुल जाती है उसी समय श्वास प्रश्वास की गति रुक जाती है और शरीर मृतक हो जाता है।

मनुष्य शरीर बाणवें क्रोड श्वास का स्थान है। आहार विहार के उचित रहने और समगति से श्वास चलते रहने से

ही इतने श्वास मनुष्यों को आ सकते हैं। अधिक निद्रा लेने वाले ज्यादा परिश्रम करने वाले, वीर्य नष्ट करने वाले, धातु उप धातुओं की भस्म तथा उष्ण पदार्थों को खाने वाले इन्द्रिय लौलुप और चिटौरे मनुष्यों के श्वास शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। सुषुम्ना नाड़ी जो कि श्वास का मार्ग है अनुचित आघात से जर्जर हो जाती है अतः मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

होती है। पिण्ड ब्रह्माण्ड का रूप एक हो जाता है, समस्त संसार अपने रूप में दिखाई देता है या रज्जु वत सर्प का नाश हो जाता है। अपने रूप के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता।

इसी स्थान से सदा सर्वदा अमृत का श्राव होता रहता है। जिस समय यह अमृत टपकना बन्द हो जाता है, शरीर की मृत्यु हो जाती है। यही स्थान शरीरस्थ समस्त धमनियों का अन्तिम स्थान है। यह शरीर रूपी वृक्ष का मूल है। यह अमृत का उर्ध्व मुख कूप है जिस में सुरति रूप है पनिहारी रात दिन पानी भरती है।

जिन सौभाग्य शाली आत्माओं की वृत्ति बिना साधन किये ही इस अमर लोक में लवलीन हो जाती है, वे धन्य हैं। प्राचीन कर्म के प्रबल प्रभाव से ही ऐसा होता है। इस स्थान पर वृत्ति सुरति का स्थिर हो जाना ही निर्विकल्प या सहज-समाधि कहलाता है। समस्त साधन इसी की प्राप्ति के अर्थ किये जाते हैं।

उपर्युक्त चक्र जितने २ दल के हैं उन दलों पर जो वर्ण बतलाते हैं ये केवल उन दलों के द्योतक हैं। जिस २ चक्र का शरीर में जो २ कार्य हैं उसके अनुसार ही देवताओं की कल्पना की गई है। वास्तव में तो इन स्थानों पर वृत्ति की धारणा से जितने गुण उत्पन्न होते हैं यही इनके दल हैं।

'शंकर' सत, पथ में रमो, दूर होय भव रोग ॥११॥

अर्थ—योग शास्त्र के परम गौरव रूप कुण्डलनी का स्थान मूलाधार चक्र है। यह अपान वायु के साढे तीन चक्र सर्पाकार शक्ति है। इसका मुख नीचे की ओर है। इसने सुरति अर्थात् सूक्ष्म ज्ञान तन्तुओं को अपने मुख में ग्रस रखा है। सुरति के ठिकाने से अपान का यह कुण्डल खुलता है और नाभि स्थान में प्राण वायु से मिल जाता है। सुवृत्तियाँ जागृत हो जाती है और सोहं अर्थात् श्वास के मार्ग मेरु दण्ड स्थित सुषुम्ना मार्ग से शिखर की ओर चलती है। इस प्रकार अभ्यास करते २ आत्मस्थान के दर्शन होते हैं अर्थात् ब्रह्म द्वार खुल जाता है सुरति शिखर में टिक जाती है। सदा सर्वदा शिखर से झरने वाले अमृत को सन्त जन इस क्रिया से प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा होने से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं परन्तु बुद्धिमान को चाहिए कि इन सिद्धियों के प्रालोभन में उलझे नहीं।

वीरता धारण करके प्रेम पूर्वक साधन करता रहे और ब्रह्म स्थान के भीतर प्रवेश करे। ऐसा करने से सत्य रूप अर्थात् अपने रूप का दर्शन हो जाता है और संसार में व्याप्त जन्म मरण रूपी क्लेश मिट जाता है। मैं और तू का भाव नष्ट हो जाता है। आत्मैकता उत्पन्न होती है। काल, कर्म और गुण आदि के प्रभाव से रहित हो कर सर्वदा ब्रह्म रूप में

तन्मय हो जाता है। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि हे चतुर साधु गण, सोहं शब्द में सुरति को स्थिर करके गगन लोक में समा जाओ। बस मेरे अनुभव से यही "कुण्डलनी जाग्रण" क्रिया है।

तन्मय हो जाता है। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि हे चतुर साधु गण, सोहं शब्द में सुरति को स्थिर करके गगन लोक में समा जाओ। बस मेरे अनुभव से यही "कुण्डलनी जाग्रण" क्रिया है।

आशय

मूलाधार में निवास करने वाली अपान वायु की स्वच्छता आवश्यक है। आहार विहार की पवित्रता से जब शरीर मल का उचित रूप में विसर्जन होता है तब वृत्तियों में शुद्धता आती है। अपान वायु अपने शुद्ध एवं सूक्ष्म तत्व से सञ्चालित होती है और इसके जो साढे तीन चक्र हैं वह उर्ध्व मुख होते हैं। अर्थात् अपान वायु को पवित्रता से स्वास्थ्य बल, पवित्र बुद्धि और आधे में स्वच्छता यह गुण प्राप्त होते हैं। विकसित होते हैं। तब वृत्तियाँ पवित्र होकर मन को निश्चल करती हैं तब सुरति स्थिर होती है। ऐसा करने से सुरति अर्थात् कुण्डलनी उर्ध्व मुखी रूप को प्राप्त होकर दशम द्वार तक पहुंच कर स्थिर हो जाती है और आत्म तत्व में स्थिरता होती है। यह है कुण्डलनी का सूक्ष्म ज्ञान।

तात्विक बात यह है कि अधोमुख कुण्डलनी का अर्थ है बहिर्मुख वृत्तियां और कुण्डलनी जागरण का अर्थ है बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाना, कुण्डलनी उर्ध्वमुख होकर शिखर में प्रवेश करने का अर्थ है वृत्तियों को अर्थात् सुरति को आत्म तत्व में स्थिर करना।

20:07

४ तुरिया 'वस्था	जब तुरिया बनने लगे, होय कोष आनन्द । ब्रह्म नाड़ि के आश्रय, कोष रहित निर्द्वन्द ॥

तुरियावस्था अमृत गावे, नाभि कमल में स्थान चितावे ।
महा करण है शरीर याका, वाणी परा भेद है वाका ॥
चित से है चैतन्य सदा ही, आप आप कुछ पूजा नाहीं ।
पाचों कोष यहां नहीं राजे, निशदिन सन्त गगन में गाजे ॥
नाभि शिखर बिच सोहं जापा, जपत रहे छूटे निज आपा ।
बंक नाल सोहं का वाटा खुले शिखर में वज्र कपाटा ॥
ऋतु है एक नहीं दिन रैना, देख प्रकाश थकत है नयना ।
निर्गुण भाव आप को पावे, चहुंदिशि अपना रूप लखावे ॥
'अमृत' मिले शान्त हो जावे, गुणा तीत निश्चल पद पावे ॥

तुरिया में कुछ काल तक, रमण करे जो धीर ।
केवल में केवल रहे, तुरिया जागृत वीर ॥
भाव नहीं अपना बने, मन वाणी थक जाहिं ।
'अमृत' अनुभव से मिले, कहन सुनन से नाहिं ॥

आशय—जगत के झंझटों से घबड़ाने पर जब आत्मा को इससे उपराम होता है, तब आनन्द की खोज में भ्रमण करता हुआ मनुष्य श्री गुरु देव की शरण में पहुंचता है और शान्ति की याचना करता है। यदि अपने सुकृत्यों के उदय होने का समय आ गया हो और गुरु देव कृपा करके आत्म चिन्तन

तब तुरियावस्था बनने लगती है। इस समय आत्मानन्द के बल पर ही रहने वाला महा कारण शरीर अर्थात् आनन्दमय कोष होता है। ब्रह्म नाड़ी सुषुम्ना का पूर्णतः आश्रय मिल जाने पर साधक इस में तन्मय होता है। प्राणों का स्थान नाभि से शिखर तक रहता है। इस अवस्था में चित्र के बल पर चैतन्य अवस्था रहती है। इस अवस्था में परावाणी अर्थात् संकल्प शून्य भाव रहता है। नाभि से शिखर तक ही जब प्राणों का व्यापार मेरु दण्ड द्वारा होता है और सोहं सोहं जप अखण्ड रूप से चिरकाल तक होता रहता है तब तुरिया अवस्था परिपक्वता को पहुंचती है।

इस समय पञ्च कोष का अभाव हो जाता है, गुणातीत भाव अर्थात् आत्म भाव उदय होता है। जगत प्रपञ्च नष्ट होकर केवल अपना ही रूप रह जाता है। मैं, तू का झंझट दूर हो जाता है। ऋतु, काल कर्म आदि नाश को प्राप्त हो जाते हैं। वासना का पूर्णतः क्षय हो जाता है। इस अवस्था का नाम कैवल्य अवस्था होता है इसी को जीवन मुक्ति कहते है। इस जागृते तुरिया को प्राप्त हो जाने पर द्वन्द नष्ट हो जाता है, निर्द्वन्दता आ जाती है। इस अवसर का वर्णन करने में मन, वाणी, वचन विलास समर्थ नहीं है केवल अनुभव में आने की बात है।

जागृत अवस्था में जागृत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था वर्तती है। स्वप्न में स्वप्न और जागृत तथा सुषुप्ति वर्तती है। ऐसा

शरीरस्थ प्राण अपान के एकत्व को। योगी जन नाद श्वास कहते हैं या यों कहें कि "सोहं" शब्द नाद का रूप है। शरीर के प्रत्येक रोम में नाद व्याप्त है। इसी को अजया जाप कहते हैं। प्राण का बाह्य व्यापार, बहिर्मुख वृत्तियाँ जितनी

अन्तर्लीन होती है या यों कहें कि नाद को जितना ज्यादा सुना जाता है प्राण का व्यापार अन्तर में ही किया जाता है उतना ही आत्मानन्द प्राप्त होता है।

इस नाद को अवस्था साधन और स्थान के भेद से दश प्रकार का माना गया है। हृदय चक्र से प्राण और आधार चक्र से अपान वायु का आकर्षण और संकुचन करने से जब नाभि कमल में मणि पूरक चक्र में इनका योग होता है तब सोहं शब्द बनता है।

प्राण अपान का मेल हो नाभि में नाद सुने जैसे बोलत पक्षी।
वृत्ति टिके कुछ काल तहां तब ऐसे सुने जैसे गूंजत मक्षी॥
सुरति जो चक्र अनाहद आवे नाद रु शंख का शब्द समक्षी।
कण्ठ में बीणा औं ताल का शब्द है, आज्ञा में शब्द सुने सोही दक्षी॥
मुरली नगाड़ा पखावज बाजत त्रिकुटि के मांहि सुने सोही पूरा।
मेघ सी गर्जन होत सदा, ताको गगन के मध्य लहै सोही पूरा॥
'अमृत' नित्य कलोल करें, जाने युक्ति से पाये दसों विधि तूरा।
जीवन मुक्त है साधु सोई जासे होय कभी नहीं 'शंकर' दूरा॥

नाभि कमल में प्राण अपान वायु को एक करके वृत्ति को ठहराने सुरति जमाने से कुछ काल में शब्द सुनाई देता है जैसे पक्षी चह चहा रहे हों। इसके कुछ काल तक सुनते रहने से इसी स्थान पर मक्खियों के गुञ्जार जैसा नाद सुनाई देता है। यह प्रथम और दूसरा नाद है।

नाभि कमल में प्राण अपान वायु को एक करके वृत्ति को ठहराने सुरति जमाने से कुछ काल में शब्द सुनाई देता है जैसे पक्षी चह् चहा रहे हों। इसके कुछ काल तक सुनते रहने से इसी स्थान पर मक्खियों के गुञ्जार जैसा नाद सुनाई देता है। यह प्रथम और दूसरा नाद है।

जब हृदय कमल में वृत्ति को, सुरति को ठहराई जाती है तब नाद अर्थात् घण्टा और शंख का शब्द सुनाई देता है यह तीसरा और चौथा नाद है।

जब कण्ठ में सुरति कुछ काल तक स्थिर होती है तब वीणा और ताल का शब्द सुनाई देता है यह पांचवां और छटा नाद है।

जब सुरति आज्ञा चक्र में स्थिर की जाती है तब मुरली नगाड़ा और पखावज का शब्द सुनाई देता है। यह सातवां आठवां और नवां नाद है।

जब सहस्रदल कमल पर सुरति स्थिर होती है तब मेघ या सिंह गर्जना के समान सब्द सुनाई देता है। यह दशम नाद है। जो शूरवीर संन्त इस दशम नाद को प्राप्त कर लेता है वह सदा सर्वदा अमृत के सरोवर में आनन्द लेता है।

इस प्रकार युक्ति पूर्वक साधन करके जो सन्त दश प्रकार के नाद सुनता रहता है वह जीवन मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है। ऐसे सन्त से कल्याण रूप शंकर भिन्न नहीं है अर्थात् वह शंकर रूप है।

जहं असाधु की रात वहाँ जागत है साधू।
आप आप में लीन, रहे नहीं तनिक प्रमादू॥
अमृत निश्चय धार शीघ्र विषयन से भागन।
जान लेय जो भेद कहा है सोवन जागन॥६॥

(७)

शंकर पाँचों तत्व के, मुख्य २ हैं स्थान।
तिनका मैं वर्णन करूँ, सुनो सन्त धर ध्यान॥
सुनो सन्त धर ध्यान, पाद जंघा लों धरती।
जङ्घ नाभि पर्यन्त स्थान जलका यों कह श्रुति।
नाभि कण्ठ बिच अग्नि है, कण्ठ भृकुटि वायुत्व॥
भृकुटि शिखर तक नभ स्थल शंकर पाँचों तत्व॥७॥

(८)

मालु वायु को खींच कर, नाभि कमल में लाय।
इड़ा पिंगला त्याग दे, सुषुमन ध्यान लगाय॥
सुषुमन ध्यान लगाय, नासिका नयन मिलाओ।
आवत आवत श्वाश माहिं, निश दिन मन लाओ॥
कहते 'अमृतनाथ' प्राप्त हो पूर्ण आयु को।
साधन करते सन्त शुद्ध कर मूल वायु को॥८॥

(९)

वीर्य पतन मत होने दे, दृढ कर आसन लाय।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तज, तुरिया नेह लगाय॥

साधन

काया मन अरु वचन से, झूठे जाने भोग।
क्षीण होय तब वासना, नष्ट होय सब रोग॥

सत्य वचन सत् का व्यवहारा, शील स्वभाव कुमति से न्यारा।
क्षमा वन्त हो धीरज धारे, हो सन्तोषी लोभ निवारे।
दया, धर्म दृढ आसन धारी, होवे हृदय तितिक्षा भारी।
ब्रह्मचर्य का पालन करना, दीन विलोक दुःख को हरना।
हो निर्मोह मान को त्यागे, तजे दम्भ, सत्पथ अनुरागे।
आत्म रूप सब जग को जाने, ऊँच नीच का भेद न माने।
रहे अहिंसक भय कुछ नाहीं, संशय रहित भाव चित माहीं।
सदा गुरु-मुखि आज्ञा कारी, योग युक्ति से भव भय टारी।
शत्रु मित्र सब को सम जाने, राग द्वेष का भाव न आने।
समदर्शी हो दृढ विश्वासी, सदा रहे निर्लेप उदासी।
मन को मार सुधार वचन को, समता हित कर सदा यतन को।
खान-पान व्यवहार सुधारे, कम सोवे निद्रा को मारे।
अजपा मंत्र जपे दिन रैना, रखे नासिका ऊपर नैना।
'अमृत' होय अमर गति उनकी, सुरति लगी सोहं में जिनकी।

त्यागो व्यर्थ प्रपञ्च, गुरु की शरण गहो तुम ॥
'सोहं' साधन आत्म दरश का मुख्य बताया।
खान, पान, व्यवहार सुधारे सुख से काया ॥७॥

[८]

काम, क्रोध अरु लोभ को, त्याग देय सो सन्त।
पण्डित वही कहावते, यों कहते गुण वन्त ॥
यों कहते गुण वन्त, यही तीनों दृढ़ शूरा।
इन्हें मारदे वही जगत में मानव पूरा ॥
'शंकर' इनसे बच रहे, वह पाते सुख धाम।
बिरले बड़ भागी तजें, लोभ, क्रोध अरु काम ॥८॥

[९]

तरुणाई के जोश में, ऐंठे मत रे क्रूर।
काचा भांडा एक दिन, होय धूर की धूर ॥
होय धूर की धूर, गन्दगी के इस घर की।
मत मन ममता करे, अरे, इस काया नगर की ॥
जीर्ण होय जब देह, दूर हो सब चतुराई।
चार दिनों की रात, चाँदनी यह तरुणाई ॥९॥

[१०]

कहने भर को जगत है, वास्तव में कुछ नाहिं।
ज्योति चमकती, ईश की, शंकर कण कण माहिं ॥

घट कमलों को छेद युक्ति से, सुनता अनहद तूरा।
इड़ा, पिङ्गला सम कर राखे, हो सुषुमन के घूरा ॥१॥
हो लय लीन अमीरस पीवे, कर द्विविधा को दूरा।
घाट त्रिवेणी बाट ब्रह्म की, लाभ करे पद ❀ रूरा ॥२॥
निर्मल करणी भव दुख हरणी, समदर्शी सांई पूरा।
आवा गमन मिटावे अपना, होय प्रेम रस चूरा ॥३॥
त्यागे भेद, खेद को टाले, दूर करे मति क्रूरा।
जीवन मुक्ति लहे सोदी 'अमृत' पावत है निज नूरा ॥४॥

[४]

साधो घट में गङ्गा न्हाओ।
यामें न्हाये पाप दूर हो, जन्म मरण विनशाओ।
दया तीर सन्तोष नीर है तामें गोता लाओ।
काम, क्रोध, मद, मोह मैल को, धोकर दूर हटाओ ॥१॥
अड़सट तीरथ चार धाम सब, घट गङ्गा में पाओ।
हो तन्मय चढ़ नाव भक्ति की, अमर लोक को धाओ ॥२॥
शिखर लोक से अमृत टपके, गुरु सेवा से पाओ।
रैन दिवस अविराम वेग से, पीवत नाहिं छकाओ ॥३॥
नाभि शिखर विच लहर उठत है, तामें मन को लाओ।
'अमृत' गङ्ग अथाह नीर है, घाट त्रिवेणी पाओ ॥४॥

❀ सुन्दर।

प्राणायाम के जो लाभ और रूप आपने बतलाये हैं वह व्यावहारिक तर्क संगत एवं सरल हैं।

प्राचीन लेखानुसार श्वास को रोक कर बैठने को आप प्राणायाम नहीं मानते। यह तो अस्वाभाविक-अप्राकृतिक और कष्टदायक है ऐसा आपका कथन है श्वास को समगति से

ही चलाते हुए-अर्थात् एक मिनिट में १५ श्वास इसमें तन्मय होने में ही आत्मानन्द मिल सकता है। यह तो प्रत्यक्ष बात है। अकारण श्वास की गति को रोकना और उससे आध्यात्मिक लाभ की आशा रखना अव्यवहार्य और अज्ञान है।

कुण्डलिनी शक्ति के सम्बन्ध में आपने जो अनुभूत एवं युक्ति संगत सारभूत विवेचन किया है वह तर्क संगत एवं प्राकृतिक है। आपके विवेचनानुसार चिरकाल से सोई हुई, विषयासक्त और बहिर्मुख वृत्ति को चैतन्य, दिव्य और अन्तर्मुखी बनाने से ही तो आत्मानन्द मिल सकता है, अमरलोक प्राप्त हो सकता है अमृतपान मिल सकता है। सुरति ठिकाने आना इसी का तो नाम है। यह बहिर्मुख वृत्ति ही तो सर्पिणी कुण्डलिनी है।

सुषुम्ना नाड़ी ही मेरु दण्डाश्रित मालाकार श्वास का आधार है। इसमें तन्मय होने से ही मन रुक सकता है, आत्मानन्द प्राप्त होता है और "जीवो ब्रह्मनंवा परः" सूत्र साथक होता है।

योग—सहज योग की पूर्णावस्था ही तो आत्म साक्षात्कार है। आपका कथन है कि इसके बिना वेदान्त की बातें बनाना ढोंग है, प्रपञ्च है एवं मिथ्या है।

समाधि के सम्बन्ध में आपके विचार बहुत क्रान्तिकारी है इसमें आपका यह कथन है कि वास्तविक समाधि वही है

आइए संतों की दृष्टि से समझते हैं कि 'सुरति' क्या होती है, इसका मन से क्या संबंध है, और साधना में इसका क्या महत्व है:

१. सुरति क्या है? (संतों की परिभाषा)

साधारण भाषा में सुरति का अर्थ है **'ध्यान', 'स्मरण', 'भीतरी चेतना' या 'मन की एकाग्रता'**।

- **व्युत्पत्ति:** संत मत के विद्वान मानते हैं कि 'सुरति' शब्द संस्कृत के **'स्मृति'** (याद रखना) या **'सु-रति'** (परमात्मा में सच्ची प्रीति/लगाव) से बना है।
- जब हमारे मन की बिखरी हुई सारी वृत्तियाँ (विचार) सिमटकर किसी एक बिंदु पर—विशेषकर आंतरिक शब्द, नाम या परमात्मा पर टिक जाती हैं—तो मन की उस महा-एकाग्र अवस्था को संत **'सुरति'** कहते हैं।

२. क्या सुरति को मन मान सकते हैं? (मन और सुरति का संबंध)

इसे पूरी तरह 'मन' तो नहीं कह सकते, बल्कि इसे **'मन की दिव्य और एकाग्र अवस्था'** कह सकते हैं। संतों ने मन और सुरति के संबंध को बहुत सुंदर ढंग से समझाया है:

- **मन की दो अवस्थाएं:** संतों के अनुसार हमारे भीतर चेतना के दो रूप हैं—एक **'मन'** और दूसरी **'सुरति'**।

तब परमहंस भी मुस्काए, क्या लेना और हमने क्या देना।
मन हमने आज से मूंड लिया, माथा हजाम से मुंडवा लेना।।
तब सहजयोग के मार्ग का, बाबा जी से उपदेश लिया।
और प्राण-अपान मिलाने का भी, बाबा ने आदेश दिया।।
तब दिल में प्रभु के चाह उठी, थी घट आकाश में उड़ने की।
और नाम रूप से ऊपर जा, उस सच्चिदानन्द में जुड़ने की।।
फिर छप्परा, बक्सर के बन में, जाकर एकांत निवास किया।
जहां शेर बघेले फिरते थे, उन मित्रों में जा वास किया।।
इक रोज़ शिकारी आए वहां, और देखा मंच पर चढ़ करके।
शेरों चीतों से खेलते हैं, नांगे बाबा आगे बढ़के।।
देखा पक्षीवत् उड़ते हैं, आकाश में यह नांगे बाबा।
और थोड़ी मंज़िल जाते हैं, फिर इससे नहीं आगे बाबा।।
यह ख़बरें छप्परा बक्सर में, झट माई पुरुष फैलाने लगे।
उस नांगे बाबा के दर्शन-हित, तब लोग अधिक ही आने लगे।।
तब परमहंस बाबा आए, यह कौतुक देख समझाने लगे।
आकाश में पंछी भी उड़ते जो, प्रभु को सहजे दिखलाने लगे।।
कहा अपने हित सब हो ही चुका, अब जाओ लोक उपकार करो।
मोह-माया में सोते हैं सभी, उनको मोह से बेदार करो।।
कई रामरूप कई रामयाद, कुछ राम ही राम बुलाने लगे।
जो रामनौमी को जन्म लिये, इस कारण राम कहलाने लगे।।

सन् 1863 में जब आपकी अवस्था 17 वर्ष की हुई तो लाला साहिब की धर्मपत्नी का भी देहान्त हो गया। उनका दाह संस्कार करके आपने मन में विचार किया कि 'परमात्मा ने तुमको स्वतन्त्र किया है। अब इस ओर तुम्हारा कोई संस्कार दिखाई नहीं देता।' अब आपको पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई और गुरु का भेष जो भीतरी था, वह प्रगट कर लिया। आप छप्परा से बक्सर की ओर चल पड़े। वहां पहुंचकर आपने गंगाजी में स्नान किया तथा धोती इत्यादि जो कुछ वस्त्र पहने हुए थे, सब वहीं छोड़ दिए और केवल एक लंगोट धारण कर लिया। आप बक्सर से अकबरपुर के जंगल की ओर चल पड़े। वहां से नौहट्टा गांव में पहुंचे। वहां एक रात ठहरे। दूसरे दिन गांव वालों ने आपको पालकी में बिठाकर विदा किया। लगभग दो कोस चलकर आपने लंगोट इत्यादि भी त्याग दिया और बिल्कुल नग्न हो गए–

तने-उरयानी से बेहतर नहीं दुनियां में लिबास।
यह वोह जामा है कि जिसका नहीं सीधा उल्टा।।

(49)

वणज करहु वणजारिहु, कर लो नाम की कमाई ।
सच्ची रास परलोक की, अन्त में होय सहाई ।।
स्वाँस-स्वाँस में नाम सुमिर लो, सच्चे सुख की खान ।
मानुष-जन्म का लाभ यही है, पावै पद निर्वाण ।।

(50)

बड़े भागों से तुझको, यह मानुष - जन्म है मिला ।
यह दुर्लभ अवसर मिला है, इसको यूँही न गँवा ।।
संतों की संगति में आकर, नाम और भक्ति का सच्चा धन कमा ।
न कर देर इसमें, जल्दी से ले अपना काम बना ।।
नाम और भक्ति की कमाई कर ले, जन्म सफल हो जायेगा ।
आवागमन का चक्कर मिट जाये, मुक्ति पदारथ पायेगा ।।

(51)

कर्म ऐसा होना चाहिये कि जीवन में खुशहाल हो जाये ।
सन्तों की संगत और भक्ति की कमाई से,
परलोक भी बहाल हो जाये ।।

(52)

आदमी का जिस्म क्या है मानिंद पानी का इक बुलबुला ।
चंद स्वाँस की ज़िन्दगी है इसमें भजन-भक्ति का लाभ उठा ।।
मानुष-जन्म का बार-बार ऐसा अवसर फिर मिलेगा नहीं ।
प्रभु-भक्ति की कमाई कर ज़िन्दगी का असली मक़सद है यही ।।

सोहं सोहं के पहरे रक्खे, अपनी हद फैलाई।
काया कोट किले के अन्दर, बैठे ये चार सिपाही। 1।
दिल की जीत कर लीनी दिल्ली लीनी अगम सवाई।
मनको जीत के लिया आगरा, दक्षिण भिक्षा पाई। 2।
पांच पचीस किले चढ़ मारे, माही की नाल जमाई।
गगन मंडल घर उनका डेरा, शून्य ध्वजा फहराई। 3।
ब्रह्म लोक में गऊ चराई, ठण्डा नीर पिलाई।
गोरक्ष नाथ सतगुरु का चेला खुशी मगन हो जाई। 4।

भजन 33

(राग - चलत)

खोज लेणा ब्रह्म विचार, नाम निज हीरा पाया है। टेर।
धरती का तो गुरू कागज बणाया सात समन्दर स्याही।
बासक नागरी कलम बणाई, हरि गुण लख्यो न जाई। 1।
ले कागज लिखवा न बैठयो, निर्गुण भजन लिखाई।
प्रेम जोत के आस पास में, मुनिजन ध्यान लगाई। 2।
दस दरवाजा फिर कर आया, रमता नजर नहीं आया।
सुरता नुरता मेरे दोउ पनिहारि, सुरत गगन ठहराया। 3।
पाथ पसारूं मेरे हाथ न आया, गठरी मांय समाया।
पवन से साधो कहिए पतला, धुआं से अति झीणा। 4।
चार चरण जती गोरक्ष बोल्या, निर्गुण भजन चढ़ाया।
उप्त खुप्त रा किया निवेड़ा, वोही जोगेश्वर पूरा। 5।

भजन 40

(राग - आसावरी)

जोगी जोगाराम सादो रे, जोगी अविनाशी सादो।
बैठया अविनाशी सादो, गगन में नाद बाजे झीणा। टेर।
गुरुजी धरती घड़िया आमर घड़िया, घड़िया मेर सुमेरा।
सीपां सेती माणक घड़ियां, जिसमें निपजे हीरा। 1।
बंक नाल रस धोरा लाग्या, सुखमण क्यारी न पाले।
इण क्यारी में कांई-कांई निपजे, ज्यांरी खबर मंगाले। 2।
त्रिवेणी टक साल मंडी छः, हीरा खरा कराले।
असल नकल का धोका हो तो, संता में परखाले। 3।
अष्ट कंवल पे बत्तिस पांखड़ी, श्वेत बरण एक भौरा।
सोहन शिखरगढ़ अधर सिंहासुण, ह्वां सत गुरुजीरा डेरा। 4।
नौ देवी और दसूं देवता, अगम पंथ न ध्याले।
मच्छंदर प्रताप जती गोरख बोल्या, तीन लोक पर जोले। 5।

भजन 41

(राग - आसा)

कर थारी देही में दीदार अवधू, काया मंजन सार भाई। टेर।
बोलते रा खोज करना जी, शील शब्द हिरदे में धरना।
काया की यम डन्ड भरना, उतर पैली पार,
अवधू काया मंजन सार भाई। 1।
शिखर भीतर नाद बाज्या जी जन्म मरण भवकाल भाग्या।

नाभी कमल निकलंजी रा बासा, चार वेद ब्रह्मा चाला।
शिव शक्ति मिल सहेज बिछावे, ओहं सोहं दोय प्याला। 2।
है वो घट घट है वो प्रगट, सब घट से स्वामी न्यारा।
उण धणिया से लागी म्हारी आसा, कटे कर्म का जाला। 3।
गोरखनाथ अवधूता मिलिया, सब में किया उजियाला।
मोर मुकुट ज्यारे शीश बिराजे, गावे किशन पुरी बाला। 4।

भजन 51

(राग - आसावरी)

पढ़ियां गुणिया पंडित जोसी (जी) जब थारी भक्ति रीख
वर पड़े हो उल्ट सुलट ज्यांरा ध्यान धरे हो। टेर।
पाणी रा हरि ने पिंड बणाया सप्त धात रा बन्ध धरी हो।
नाभ द्वादस त्रिकुटि गिगना, सोवनी शिखर बहुरंग बसे हो।
बहु रंग आगे री खबरया करना जी। 1।
पांच पचीस गुण तीनू रचिया जी,
ओहंग सोहंग ओकार धरया हो।
ओहंग सोहंग आगे, अविगत अविनाशी जी,
अविगत आगे कौन भया हो।
अविगत आगे की खबरया करना जी। 2।
चार वेद पर सुक्षम रचिया जी,
क्षर अक्षर दोय हरफ धरया हो।
जन अक्षर अनघड़ है न्यारा,
अनघड़ आनेरी खबरया करना जी। 3।

शब्द नाम निज मूल है, जल विच भलके शूरा।
तारा में चन्दा झिलकाया, पुने ऊगे पूरा। 1।
जमी आकाश दोनू नाहीं, ना कोई पवना पाणी।
सात द्वाप नो खण्ड भी नाहीं, ना कोई जाण अजाणी। 2।
धंधुकार वहां सुन्न नाही, ना कोई हलता चलता।
दस अवतार वहां कुछ नाहीं, रचिया इण्ड प्रकाश। 3।
इण्ड फूट ब्रह्माण्ड रचिया, ऐसा अलख अपारा।
हरि ओहम के बाही बोला, जिण से ही पवन पसारा। 4।
ओहं सोहं दोनू साधल्यो, जब पावो करतारा।
तूम्बी नाथ गुरु गम कर निरख्या, हरि भज उतरो पारा। 5।

भजन 3

(राग - आसा)

साधो भाई थांरी चौरासी टल जाई, सब में राम समाई। टेर।
सतगुरु बिना समझ नहीं पावे, भवसागर के माई।
तीन लोक से निवकर चलणा, एक दिन हंस बिलाई। 1।
शील शब्द से सुरत लगाले, परम पुरुष मिलं जाई।
मांन सरोवर खूब नावणां, पलक पलक के माई। 2।
शूरा होके सनमुख ज्यूझे, खट दरशण के मांई।
अपरमपार तार नहीं तोड़, आवागमन नई आई। 3।
सास उसास सुमरणी सादो, सैना ही सैन मिलाई।
तुम्बी नाथ गुरु निजकर परस्या, शिव मार्ग के माई। 4।

जागृत स्वप्न सुषोपति तीनों, ये सब निश्चे जाना।
तुर्या साक्षी चेतन पाया, मात लगे नही काना। 2।
सप्त भोम निरणे करि जोया, माया यथार्थ ज्ञाना।
आतम एक अखण्ड अविनाशी, ब्रह्म ज्ञान पद पाया। 3।
तुर्या देश ब्रह्म ज्ञान लखो, ब्रह्म लखे मस्ताना।
उदयनाथ बलिहारी सतगुरु की, पाया ठीक निशाना। 4।

भजन 4

(राग - आसा)

साधो भाई तुर्या पद मस्ताना,
आवे नहीं जाय उत्पत्ति नहीं परले, लगे नहीं काल कबाना। टेर।
परोक्ष अपरोक्ष ब्रह्म ज्ञान लखे तब, मिट जावे खेंचा ताना।
अहं अस्मि ब्रह्म थिर थाया, तुर्या पद गलताना। 1।
जीव ईश का भेद मिटाया सोहं अस्मि थिर माना।
अक्षर अमर अखे परिपूर्ण, शुद्ध ब्रह्म समाना। 2।
नहीं समीप नहीं दूरा जानों, नहीं बाहिर नहीं छाना।
वार पार प्रकट नहीं गुप्ता ब्रह्म ज्यूं का त्यूं ठाना। 3।
सतगुर मोपे कृपा कीनो, जिनसे पाया म्याना।
उदयनाथ तुर्या पद पाया, उग्या ज्ञान उर भाना। 4।

भजन 5

(राग - धमाल ताल पहाड़ी)

आत्म ज्ञान बताओ ब्रह्मज्ञानी, बात कहो साँचा घर की।
जिनको सतगुरु पूरा मिलिया, खबर पड़ी निह अक्षर की। टेर

दीक्षित होकर दिल्ली में वापस आने के उपरान्त उन्होंने उन्नीस से इकतीस वर्ष की अवस्था तक दिल्ली की एक पहाड़ी गुफा में कठोर तपस्या और योग–साधना की। उनके इन बारह वर्षों की योगाराधना के क्रम का विस्तार के साथ वर्णन करते हुए श्री चरणदास के परम विश्वस्त शिष्य श्री जोगजीत इस प्रकार कह रहे हैं –

यम अरू नियम पहिले आराधे। चौरासी आसन फिर साधे।।
प्राणायाम किया विधि सेती। प्रत्याहार सँभाला हेती।।
और धारना का अंग धारा। शून्य ध्यान में मन को मारा।।
अठवीं अंग समाधि लगाई। पाप पुण्य की व्याधि मिटाई।।
पाँचो मुद्रा भी सधि आई। तीनों बन्ध सधे सुखदाई।।
महाबन्ध साधा बल जोधा। पाँचों वायु लई परमोधा।।
प्राण जो और अपान मिलाई। सुषुमन मारग माँहिं चलाई।।
षट् चक्कर को छेद करि, चढ़े गगन को धाय।
परमानंद समाधि में, दसवे रहे समाय।।[139]

अपने गुरू के इस योगसिद्धि रूप का वर्णन चरनदास जी के शिष्य गुरूछौना जी ने इस प्रकार किया है –

गंग जमुन के बीच, जहाँ निज डेरा दीना।
मन माता बहुरूप, खैंचि अपवस कर लीना।।
उठा सबद घनघोर, नूर अनहद धुनि बाजा।
जीते पाँच पचीस, भयो सब पूरन काजा।।
अष्ट जोग कूँ साधि तुम, भये रूप अद्भुत बरन।
जन छौना परनाम करि, सु चरनदास तारन तरन।।[140]

इस विस्तृत भूमिका का लक्ष्य मात्र इतना ही बताना है कि श्री चरणदास द्वारा प्रचारित साधना मार्ग में योग को साधना का अनिवार्य तत्व माना गया है और यह उनकी प्रेमाभक्ति का आवश्यक सोपान है। इस सम्प्रदाय का साहित्य योग सम्बन्धी वर्णनों से भरपूर है। सगुणपरक उक्तियों से भी ज्ञान और योगपरक उक्तियों की मात्रा

कहने की आवश्यकता नहीं कि मात्रा, यति, गति, अर्थ आदि की दृष्टि से उक्त दोहे का तृतीय पाठ अन्य दो की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। ऐसा प्रतीत होता है कि १८१६ वि० के लिपिकर्ता ने कदाचित् मूल ग्रन्थ, जो कि १८०६ वि० के पूर्व रचा गया था, से प्रतिलिपि की थी। आपपाठ स्पष्टत परवर्ती सशोधन को इंगित करता है।

मुद्रित 'भक्ति सागर' (ग्रन्थ-विशेष) मे 'इड़ा पिंगला शून्य शिखर मे मच्छिता' अश नितान्त असम्बद्ध तथा अप्रास्तविक है जबकि 'हठजोग' या 'जोगसार' या 'जोग' नामक प्रतियो में सुसम्बद्ध तथा प्रास्ताविक। अब हस्तलिखित प्रतिलिपि के आदि, मध्य तथा अवसान की कतिपय पक्तियां अवलोकनीय है --

आदि -- नदराम बिनती करे। सुनो हंस गुरुदेव ।। तुंम ही दाता मुक्ति के। जोग जुग्ति कहि देव।

मध्य--(क) नदा कहै सुनोंह गुरदेवा ।। मन के जीत न के कह भेवा ।।

(ख) याह सब जुगति बताये कर मो मन को अग्यान हर ।।
नदराम बिनती करै सु मम मस्तक पर हाथ घर ।

(ग) याह सभ जुगति बताय करि कृपानिधि गुन उच्चर्यरो ।
कहै नंदराम गुरदेव जी सु भौनिधि मे सकर हरो ।।

(घ) कहै नदराम आधीन ह्वै

अवसान-- नागनि अकाशि के शै चढै सो विध्य यह कहि दीजीयै ।।
नंदराम विनती करै सो किरपा मोपरि कीजीऐ ।।

पुष्पिका -- ईती श्री स्वामी चर्नदास कृतं जोगाभ्यास सनाप्ति ।। संबत। १८०६। ज्रेषे आषाढ़ बदी २ चद्रबासे जोगभ्यास लिषते जसु ।। विराह्मन टुकणाका सुभ भवतु ।।१।। [1]

---

१. हठयोग (ह) । पत्र-२३ । आकार- ६ " x ५ " ५" । पंक्ति(प्रति पृष्ठ)-१३। अक्षर(प्रति पंक्ति)-२१ । परिमाण- ३६२। काव्य-रूप--पद्य । प्रारूप- प्राचीन । स्वरूप- पूर्ण । अवस्था--जीर्ण,शीर्ण, कटी-फटी । पाठ- मध्यम । कागज- देशी (खुरदुरा) । लिपि- देवनागरी । प्रतिलिपिकाल- १८०६ वि०। प्रतिलिपिकर्ता- जसु ब्राह्मण।प्राप्ति-स्थान- हिन्दी संग्रहालय,हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग।ग्रन्थांक-३-१९ २१६६।१।

(४) मन्त्र योग

तन्त्र ग्रन्थों मे शिव और शक्ति अथवा नाद और बिन्दु के मिलन के प्रति मन एक सरल उपाय बताया गया है और वह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र 'सोहं' है । मनुष्य के श्वास के बाहर जाते समय हकार की ध्वनि होती है और अन्दर जाते समय सकार की ध्वनि होती है । दोनों ध्वनियां मिल कर 'हंस' बन जाती है । अजपा-जाप के प्रति उन्ही शब्दों से बना विपरीत मन्त्र 'सोहं' अत्यन्त महत्वपूर्ण है । गुरु के आदेश से योगी सुषुम्ना में उसी 'सोहं' मन्त्र का मनन करता है, और इस 'सोहं' का जाप ही मन्त्र-योग कहलाता है । हंस सभी प्राणियों में निवास करता है । वास्तव में वह प्राण और अपान वायु की ग्रन्थि है । इसी के निरन्तर ध्यान रखने को अजपा कहते हैं । एक दिन में प्राणी इक्कीस हजार छह सौ बार सांस लेता है । साथ ही इतनी ही बार 'स' तथा 'ह' की वह पुनरावृत्ति करता है । यह संख्या मतानुसार विशेष दशा में अन्तर भी रख सकती है । योगी को इसके विपरीत 'सोहं' का जाप करना चाहिए और क्रमशः अधोलिंग आत्मलिंग और ज्योतिर्लिंग पर ध्यान लगाना चाहिए । अधोलिंग मुलाधार मे स्थित है, आत्मलिंग अनहद में रहता है और ज्योतिर्लिंग दोनों भुवों के मध्य स्थित है । अस्तु साधक अजपा जाप में ही नाद का अनुभव करता है । अजपा को हंस विद्या भी कहते हैं ।

अजपा जाप -- हंसनाद उपनिषद् में 'सोहं' धारणा के साथ-साथ अजपाजाप का पर्याप्त महत्व माना गया है । हृदय-कमल के बीच सोहं का ध्यान करके सुरति में साधक अजपा जाप करे और चौबीस घण्टे की इक्कीस हजार छह सौ सांसो में यदि वह लगातार सोहं जाप कर लेगा तो वह स्वयं ब्रह्म हो जायेगा --

> हृदय कमल के माहि ध्यान सोहं करे । वाहि की अजपा जानि, सुरति मन ले धरे ।।
> बिनहि जपे जप होय, सु सांची बातहो । सहस इक्कीस अरु छस्से जहां दिनरातही ।।
> याको कोये ध्यान होत है ब्रह्म ही । भारे तेज अपार जाहि सब मर्म ही ।।[१]

---

१ मसा०इ० १५६ ।

रचयिता (हंसनाद उपनिषद्) की अजपाजाप तथा सोहं धारणा अत्यन्त प्रबल थी और स्थान-स्थान पर उसने विभिन्न रूपों मे अभिव्यक्ति पायी है । एक अन्य स्थान पर वह कहता है --

अजपा ही के जाप को, सिद्ध भयो जब जान । पहुचे या स्थान ही, रहे न दूजा ज्ञान ।।[१]

और इन पंक्तियों में जैसे उन्होंने अजपा के अन्तिम लक्ष्य को तादात्म्य ही मान लिया था । वस्तुतः अजपा या हंस धारणा भी तादात्म्य लाभ का एक श्रेष्ठ उपाय है ।

हंसनाद उपनिषद् के रचयिता ने अपनी शब्द तन्मयता में हंस-धारणा तथा हंस मन्त्र को ही कहीं-कहीं पूर्ण ब्रह्म मान लिया है --

अब मैं बरणों हंस और परमहंस ही । जो समझे ह्वै ब्रह्म जाय सब दृश ही ।।
हंस हंस जो मन्त्र जो अर्थ पहचानिये । वह मैं हूं यह को निश्चय करि जानिये ।।[२]

उपर्युक्त पंक्तियों में हंस-मन्त्र का अर्थ वह मैं हूं की लगाने से सोहं की धारणा का भी रूप स्थिर हो जाता है अर्थात् इसी 'ह'-'स' की ध्वनि से उत्पन्न हंस धारणा में सोहं मन्त्र का जाप भी सम्मिलित है ।

वचन सुनकर वह सतगुरु से दीक्षा लेने के लिए उतावले हो गए। अब वह इसी इंतज़ार में रहने लगे कि कब उन्हें पूर्ण सतगुरु मिलेंगे जो उन्हें सच्ची भक्ति का मार्ग दिखाएँगे। उन्होंने कई ब्राह्मण, योगी, जैन मुनि, संन्यासी, दरवेश आदि से प्रभु–प्राप्ति की युक्ति के बारे में पूछा, परंतु उन्हें कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। तब उन्होंने सतगुरु के मिलाप के लिए परमात्मा से प्रार्थना की, ताकि उनका जीवन कहीं सांसारिक धंधों में ही व्यर्थ न बीत जाए और वह प्रभु के दर्शन से वंचित न रह जाएँ।

लेकिन रामस्नेही संप्रदाय के अनुयायियों का मानना है कि एक दिन दरिया साहिब भागवत और उपनिषदों का पाठ कर रहे थे, तभी उनकी नज़र 'गुरु महिमा' विषय पर ठहर गई। इसी के फलस्वरूप उन्हें सतगुरु की शरण में जाने की प्रेरणा मिली और साथ ही साथ मन में तड़प पैदा हुई। तब गुरु से मिलाप के लिए उनकी हालत विरहिणी जैसी हो गई।

वह प्रभु के विरह में इतना तड़प उठे के खाना–पीना तक भूल गए और सतगुरु की खोज में इधर–उधर भटकते हुए उन्होंने कई यात्राएँ कीं। परमात्मा बड़ा दयालु है, वह भक्त की सच्ची लगन देखकर उसकी मनोकामना को अवश्य पूरा करता है। अचानक एक दिन संत प्रेमदास जी ने वि. सं. 1769 की कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन दरियासाहब को राम–राम की दीक्षा प्रदान की। उस समय दरिया साहब की आयु 36 वर्ष थी।

प्रेम दास जी शब्दमार्गी थे, इसलिए उन्होंने अपने शिष्य दरिया को सुरत–शब्द योग के ज़रिये प्रभु–प्राप्ति की युक्ति सिखाई। उन्होंने दरिया को राम–नाम सुमिरन द्वारा अपने मन को बाहरी वृत्तियों से समेटकर अंतर में एकाग्र करने का उपदेश दिया। जैसे–जैसे उसकी साधना गहरी होती गई, उसकी सुरत राम–नाम यानी शब्द से जुड़ने लगी और अन्त में शब्द में समाकर शब्द का ही रूप हो गई। यही आत्मा का परमात्मा में समा जाना है:

राखे सुरति शब्द ही माहीं। शब्द छाँडि कहुँ अन्त न जाहीं।
तब रसना सिर छूटे धारा। चलै अखँड नहि खँडे लगारा।।

अपने सतगुरु से मिलाप करते हुऐ दरिया साहब कहते हैं:

सोता था बहु जन्म का, सतगुरु दिया जगाय।
जन दरिया गुर सब्द सौं, सब दुख बिलाय।।

सतगुरु ने मुझे जन्म से जोड़कर जन्म–जन्मांतर की गफ़लत की नींद से जगा दिया, जिससे मेरे सारे दुःख–दूर हो गये।

सतगुरु की दया–मेहर से दरिया साहब अपनी साधना में बिना किसी रुकावट के आगे बढ़ने लगे। एक वर्ष और सात माह के थोड़े समय में दरिया साहिब की आंतरिक साधना सफल हो गई। इस संदर्भ में वह कहते हैः "किरपा कर चरनों लिया, मेटा सकल जंजाल।।" गुरु ने कृपा करके मुझे अपनी शरण में ले लिया जिससे मेरे सारे जग–जंजाल मिट गए। जीते–जी परमात्मा में समा जाने के अनुभव का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है:

दरिया सूरति सर्पनी, चढ़ी ब्रह्म के माँय।
जाय मिली परब्रह्म से, निरभय रही समाय।।

धीरे–धीरे सारे मारवाड़ में दरिया साहिब की महिमा होने लगी। परिवार की ज़िम्मेदारी निभाते हुए भी वह भक्ति में लीन रहते थे। उनके सहज भक्ति मार्ग से लोग बड़े प्रभावित हुए। धीरे–धीरे उनके अनेक शिष्य बन गए। दरिया–पंथियों का विश्वास है कि दरिया साहब के जन्म से 100 वर्ष पहले दादू साहब ने यह भविष्यवाणी थी:

रचनाओं की प्रामाणिकता प्रकरण मे) सिद्ध कर चुका हूँ, यह नन्दराम की ही रचना है । जहा तक इसके नामकरण का प्रश्न है , मैं सर्वाधिक प्राचीन प्रति (१८०६ वि०) के अन्त मे उपलब्ध पुष्पिका के आधार पर इसका नाम 'जोगम्यास' अधिक उचित समझता हूं । पुष्पिका इस प्रकार दी हुई है --

संवत ।१८०६। ग्रीषे आषाढ बदी २ चन्द्रवासे जोगम्यास लिषते जसू ।।।छ०।

इस ग्रन्थ का रचना-काल, उपर्युक्त पुष्पिका के आधार पर १८०६ वि० से पूर्व अर्थात् १८०४ वि० माना जा सकता है ।

यह ग्रन्थ गुरु-शिष्य संवाद के रूप मे लिखा गया है । ग्रन्थारंभ मगलाचरण से हुआ है । फिर शिष्य की समस्याओं का समाधान करते हुए गुरु ने योगाभ्यास करने की रीति समझायी है । इसमें खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी, उन्मनी मुद्राओं, मन और पवन पर यथोचित नियंत्रण, शून्य शिखर में प्रवेश, षटचक्र भेदन-प्रान, अपान आदि को मिला कर वक नाल शुद्ध करके प्राणायाम साधना, इस विधि से आकाश में प्रवेश करके पूर्ण ब्रह्मत्व की प्राप्ति आदि का वर्णन है । उदाहरण --

नन्दराम बिनती करै सुनो ईस गुरदेव ।
तुम ही दाता मुक्ति के जोग जुग्ति कहि देव ।।
ईड़ा पिगला सुषमनि धारो। आसन वज्रागनी टारो ।
द्वादस अगुल गहो बेध षट चक्र कीजै ।
बज बाजै अनहद तूर जहा मन निज करि दीजै ।।
षेचरी मुद्रा त्रकुटी आवै । अमृत पीवै महा सुष पावै ।। । छ० ।

o o o

याह सब जुगति बताये कर मो मा को अग्यान टर ।
नदरांम बिनती करै सु मम मस्तक पर हाथ धर ।। । छ० ।

इसमें दोहा, चौपाई, सोरठा तथा छप्पय छन्द प्रयुक्त हुए हैं । काव्य में कोई विशेष सौष्ठव परिलक्षित नही होता । यत्र-तत्र अप्रयत्नज रूपेण अनुप्रास, रूपक, उपमा, अन्योक्ति आदि की छटा दिखायी देती है ।

(३) शब्द -- यह इनके विविध विषयों से सम्बन्धित अनेक राग-रागनियों से युक्त ४१ पदों का संग्रह है । पदों में कोई गति नहीं है । भाषा साधारण है । देखिए --

० राग मालसरी ०

राम नाम है सार सोई भज लीजे रे ।
षट सासत्र हरि नाम बतावें बेद पुरान न बषानी ।
सकल सरोमन नाम कहायो साधक हैं मुन ज्ञानी ।।
जप तप तीरथ जोग करो बहु काज सरै नहि कोई ।
माषै निरजल बरत करै जो नाम समान न होई ।।
पाहन तिरे पात तरवर ज्यो मिहमा कहियन जाई ।
र रा कहत गज आन छुटायो म मा कहन न हि पाई ।।
अजामेल पापी जग जानै ताहि बिवान चढायो ।
कह्यो दैत सुत राम नरायन अमरलोक पद पायो ।।
मूल बस्त्र सुमरन है भाई सो सतगुर बतलायो ।
प्रेमगलतान चरनदास क्रिपा सूं रसनां हरगुन गायो ।।१२।। ।१

- ० -

श्रीपाद बाबा महाराज के मार्गदर्शन में तैयार हुई वह विशिष्ट पुस्तक जिसमें प्राणायाम, स्वर विज्ञान (Breathing Science), और कुंडलिनी योग की गुप्त व व्यापक चर्चा है, उसका नाम **"प्राण-अपान अनुसन्धान" (Prana-Apana Anusandhan)** है।

यह पुस्तक मुख्य रूप से उनके द्वारा स्थापित **'ब्रज एकादमी'** (Vraj Academy) द्वारा प्रकाशित शोध ग्रंथों की श्रृंखला का हिस्सा है। इस पुस्तक के मुख्य यौगिक और वैज्ञानिक बिंदु नीचे दिए गए हैं:

1. प्राण और अपान वायु का समन्वय

इस ग्रंथ में हठयोग के मूल सिद्धांत—प्राण (भीतर आने वाली सांस) और अपान (बाहर जाने वाली सांस) के संतुलन पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बात की गई है। बाबा महाराज का मानना था कि जब प्राण और अपान वायु का नाभि चक्र पर मिलन होता है, तभी कुंडलिनी शक्ति जागृत होने का मार्ग प्रशस्त होता है।

2. स्वरोदय विज्ञान और प्राणायाम

पुस्तक में सांसों के चलने के नियम (इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी) का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण है। इसमें विभिन्न प्रकार के प्राणायामों (जैसे कुंभक, भस्त्रिका और नाड़ी शोधन) के अभ्यास के समय शरीर के भीतर होने वाले जैविक परिवर्तनों (Biological Changes) को वैज्ञानिक चार्ट्स के माध्यम से समझाया गया है।

संका नाहि करो काही की, हम से बड कोउ नाही हो ।
पलटू दास क्वन है दूजा, हमहीं हैं सभ माही हो ।। [1]

+ + +

इमि करि पूर्ण नाम ते मीन्हा, ज्यों प्रतिबिंबु घट परगट दीन्हा ।
घट फूटे फिरि जाई समाई, तब प्रतिबिंबु खोजे नाहि पाई ।। [2]

+ + +

अदुभुत बल बिराग मत, ब्रह्म ज्ञान निर्लेप ।
आपु चिन्है औरे चिन्है, आतम दरसी देव ।। [3]

+ + +

सभ घट बासी अचल अद्वैत अविनासी हो रामा । [4]

+ । +

नाभि सुगंध नासिका बासा, चरचत फिरे बहु दिसि घासा ।
दूजा देखो दरपन माही , छवि जनु एक बहुरि किछु नाहीं ।। [5]

+ + +

रमिना राम तुम अतर जामी ।
सोह अजपा जापे हो ।।
अद्वै ब्रह्म निरंतर बासी । [6]
प्रगट रूप निज ढापे हो ।।

+ + +

एकै जीव बसै सभ माही, देह धरे दिवतीय गनाही ।
सो देही बिनसै दिन पाई , एकै ब्रह्म बसे सब ठाई ।। [7]

1- पलटू बानी भाग 2, पृ071
2- ज्ञान रत्न 115 9, 115 10 --- दरिया
3- दरिया सागर 117 0 - दरिया
4- प्रेम तरंगिनी भाग 3, शब्द 258
5- धरनी दास की बानी पृ0 51
6- मीरा शब्दावली पृ0 21, शब्द 11
7- भक्त शिवाराम, उनका- भक्ति जमाल- मत और परम्परा -पृ0295
--डा0शोभनाथ लाल।

शब्द- सुरति योग -

इसी को सहज-साधना भी कहते है।सन्तो ने सृष्टि की उत्पत्ति शब्द से मानी है। उनके मतानुसार सर्वत्र इस शब्द की ध्वनि गुंजित है और हमारे शरीर में भी यह शब्द ध्वनि विद्यमान है जिसको सन्तो ने ''अनाहत नाद'' नाम से अभिहित किया है। मानसिक वृत्तियो को अन्तर्मुख करने पर यह नाद सुनाई पड़ता है। इन्द्रियाँ जो स्थूल दृष्टिगत होती हैं, वस्तुत. अपने सूक्ष्म रूप मे मानसिक शक्तिया हैं । इन सभी शक्तियो का केन्द्र बिन्दु अन्त करण है। मन, बुद्धि,चित्त और अहंकार ये चार अन्त करण के भेद है ।ये चारो स्थूल- शरीर की वस्तु है, अत भौतिक है। मन एक प्रकार से भौतिक और आध्यात्मिक चेतना के सीमा-बिन्दु पर है। 'सुरति'

1- भीखा शब्दावली, 1

2- पलटू बानी, भाग 1, पृ0 62

3- भक्ति जैमाल- अध्याय 47, पृ0 212- हस्तलि0सं0- डा0 शोभनाथ लाल

स्रोत शब्द का अपभ्रंश है । दर्शन ग्रंथो मे स्रोत का तात्पर्य चित्त वृत्ति- प्रवाह है । चित्तवृत्तियो का यह स्रोत या प्रवाह भौतिक विषयो की ओर प्रवहमान है। जब मन अन्तर्मुख होता है और सासारिक विषयो से हटकर आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होता है तब जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए उत्सुक हो उठती है। वह इस समय सांसारिक विषयो से निरपेक्ष होती है । अत यह जीवात्मा का निर्मल रूप है। सन्तो की विशिष्ट शब्दावली में इसी निर्मल स्थिति को 'सुरति' कहा गया है। चित्तवृत्तियो का प्रवाह जो जगत के विविध विषयो के साथ प्रवहमान था शब्द ब्रह्म की ओर उन्मुख हो जाता है। गुरु के उपदेश या प्रबोध के प्रभाव से जब साधक इस अवस्था मे आ जाता है तभी उसे पिंडव्यापी अनाहत नाद सुनाई पड़ता है। इसी नाद के सूत्र को धारण कर बीच की अनेक भूमिकाओ को पार कर 'सुरति' या चित्तवृत्ति-प्रवाह शब्द ब्रह्म मे लय हो जाता है।[1] साधको को परम ज्योति के दर्शन होते हैं ।

सन्तो ने शब्द- सुरति योग की चर्चा स्थल- स्थल पर किया है। सन्त शिवनारायण ने स्पष्टत घोषित किया है कि मुझे अपने स्वरूप का तात्विक ज्ञान शब्द- सुरति से ही हुआ था -

जब प्रभु मोर छुड़ावहु चिंता मै हरष्म गुन गावौ ।
शिवनारायन शब्द- सुरति धरि निज रूप दर्शन पावौ ।।[2]

सन्त पलटू दास ने शब्द- सुरति योग का वर्णन करते हुए लिखा है कि शब्द ही मूल एवं शाखा है ।शब्द का ज्ञानी ही उसका तत्व समझ सकता है।यथा -

सबदै मूल है, सबदै साखा, सबदै सबद समाना ।
पलटू दास जो सबद बिवेकी, सबद के हाथ बिकाना ।।[3]

1- शिवनारायण सम्प्रदाय और उसका साहित्य, पृ0 225-डा0रामचन्द्र तिवारी।

2- शब्दावली, पृ0 67, सबद 226

3- पलटू बानी, भाग 3, पृ0 6

निम्नलिखित है --

सुरति समानी सार शब्द में, निरति रही लवलाई ।
प्रेम पियारी रटै पिया को, यह जिव पुलकित जाई ।।[1]

\+ + +

लगावो मन शब्द मे सुरति मकुरिया ।
फीनी डगरिया उरध लागे डोरिया, अनहद शब्द फसावे मकरिया ।
बायें व दहिने को फीर्रैना रस्थिया, मध्ये सुरंग चढी चलि जइया ।
सुरति मकरिया चढी है अटरिया, मनही के जाल मने लिपटइया ।।[2]

\+ + +

अपना पिया के मै होइबो सोहागिन- अहे सजनी ।
मइया तजि सइया संगे लागबि - रे की ।।
सइया के दुअरिया अनहद बाजा बाजे- अहे सजनी
नाचै ले सुरति सोहागिन --- रे की ।
गंग जमुन केरा अवघट घटिया हो- अहे सजनी ।
देखहु सतगुरु सुरति क नइया हो- अहे सजनो ।।
जोगिया दरसे देखे जाइब - रे की ।।
दास कबीर यह गवले लगनिया हो- अहे सजनी ।
सतगुरु अलख लखावल ---- रे की ।।[3]

\+ + +

सबद के निशाना मार, नाम की दोहाई हो ।
कटे दर्शन जीव, लोक चलि जाई हो ।।[4]

1- धर्म दास शब्दावली, पृ0 2
2- प्रेम तरंगिनी, भाग 3, शब्द 12
3- कबीर शब्दावली, भाग 4, पृ0 19 ।
4- भजन रत्न माला, पृ0 12- टेकमन राम ।

गौतमऋषि करि चाव ऋषीश्वर पै गये ।
संत सुजातजु नाम बहुत आदर किये ॥
गौतम स्तुति करी बहुतही प्रीति सों ।
फिरि पूंछी यह बात जु लघुता रीति सों ॥
परमेश्वर पहिंचान मोहि समुझाइये ।
मुक्तहोन के पन्थ सबै जु दिखाइये ॥
ह्वैकर बहुत प्रसन्न ऋषीश्वर बोलिया ।
गौरा अरु महादेव की चरचा खोलिया ॥
सब देवन के देव महादेव हैं सही ।
उपनिषदैं जो वेद कि गौरा सों कही ॥
सो मैं तुमसों कहौं प्रीति के भाव सों ।
तुमहूं नीके सुनो अधिकही चाव सों ॥
गुप्त महा यह भेद हिये में राखिये ।
जो जड़ मूरख होय तासु नहिं भाखिये ॥

दो० हरिभक्ता अरु गुरुमुखी, तप करने की आस ।
सतसंगी सांचा यती[1], ताहि देहु चरन्दास ॥

अष्टपदी ॥

अब मैं कहौं सँभाल सुरत ह्यां दीजिये ।
यह तौ अचरज कथा श्रवण सुनि लीजिये ॥
यही श्वास कहि हंस आय अरु जाय है ।
पूरा सतगुरु मिलै तौ भेद लखाय है ॥
जो कोउ याको समझि करै अरु ध्यानहीं ।
ऋद्धि सिद्धि सुखहोहिं जु उपजै ज्ञानहीं ॥
अन्त मुक्तिही होय अभैपद में रहै ।

1 योगी ॥

अब मैं कहौं सँभाल सुरत ह्यां दीजिये।
यह तो अचरज कथा श्रवण सुनि लीजिये॥
यही श्वास कहि हंस आय अरु जाय है।
पूरा सतगुरु मिलै तो भेद लखाय है॥
जो कोउ याको समझि करै अरु ध्यानहीं।
ऋद्धि सिद्धि सुखहोहिं जु उपजै ज्ञानहीं॥
अन्त मुक्तिही होय अभैपद में रहै।

१ योगी॥

बहुरो जन्म न होय परम आनँद लहै॥
अब मैं वरणों हंस और परमहंसही।
जो समझै है ब्रह्म जाय सब संशही॥
हंस हंस जो मंत्र अर्थ पहिंचानिये।
वह मैंहूँ यों कहै निश्चय करि जानिये॥
यह मंतर सब माहिं सदाही भरि रह्यो।
कोटिन में कोइ जानि ध्यान सोइ धरि रह्यो॥
जैसे काठ में आगि तिलों में तेल है।
तैसे सब घटमाहिं इसी का मेल है॥
दो॰ दूध मध्यज्यों घीव है, मेहँदी माहीं रंग।
यतन बिना निकस नहीं, चरणदास सो ढंग॥
जो जानै या भेदको, और करै परवेश।
सो अविनाशी होत है, छूटै सकल कलेश॥

अष्टपदी॥

अनहद शब्द अपार दूर सों दूर है।
चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है॥
ताहि निःअक्षर जानि और निष्कर्म है।
परमातम तेहि मानि वही परब्रह्म है॥
हृदय कमल के माहिं ध्यान सोहं करै।
वाहि को अजपा जान सुरति मन लै धरै॥
बिनहिं जपे जप होय सुसांची बातही।
सहस इक्कीस अरु छस्सै जहां दिन रातही॥
थाको कीजै ध्यान होत है ब्रह्मही।
धारै तेज अपार जाहि सब भर्महीं॥
वा पटतर कोइ नाहिं जु यौंहीं जानिये।
चन्द सूर्य अरु सृष्टि के माहिं पिछानिये॥
सो वह तेज अपार आपको मानिये।
११

निश्चय अरु वहि सांच जु मनमें आनिये॥
जब लग वाही भेद जो जाना था नहीं।
जीवातम अरु हंस होरहा था तहीं॥
जभी अगोचर भेद जु मनमाहीं लहा।
परमातम परमहंस रूप निश्चय भया॥
१० जो जीवातम सो भया, परमातम अरु ब्रह्म।
वाकी सरवर को करै, पाई परै न गम्य॥
पहुँचै ना वा तेज को, कोटिकोटि ही भान।
चरणदास कोइ जानहीं, ताको निर्मलज्ञान॥

अष्टपदी॥

दो० खुलै नवा जब नादही, लक्षण यह पहिंचान ।
सूक्ष्म होय जित तित गमन, करै धरै जो ध्यान ॥
काहू हीकी दृष्टि सों, चहै अगोचर होन ।
होय सकै दीखैं नहीं, वह सब देखै जौन ॥
जैसे सुर सबको लखैं, उन्हैं न देखै कोय ।
रणजित कहै अस्थूलहो, चाहै सूक्षम होय ॥

अष्टपदी ॥

दशवीं खुलै जो नाद परे सोहंपरे ।
पारब्रह्म होइजाय ध्यान ताको करे ॥
ध्यानी को मन लीन होय अनहद सुनै ।
आप अनाहद होय वासना[1] सब भुनै ॥
पाप पुण्य छुटिजाय दोऊ फल ना रहैं ।
होय परमकल्याण जु त्रैगुण[2] ना गहैं ॥
होवै बोध स्वरूप तेज ह्वै जात है ।
अटक रहै नहिं कोय सबै ठां समात है ॥
अज अविनाशी शुद्ध पवित्तर सत्तही ।
होवै आनँदरूप परम जो तत्त्वही ॥
निर्विकार निर्लेप और निर्बानहीं ।
आनँद सबको देत आपको जानहीं ॥
या ध्यानी को नाम जु ॐकार है ।
सब नामनमें बड़ा किया जु विचार है ॥
याको ऐसे मानै कि वह जो मैंहीं हूँ ।
रूप नाम गुण जान कि यह सब वाहीसूं ॥
दो० करतै अनहद ध्यानही, ब्रह्मरूप ह्वै जाय ।

१ मनकी इच्छा २ सत् रज तम ॥

जिनके हाथ परो जिय मेरो घेरा घेरी बहु दुख पायो॥
एकघरी मोहिं छोड़त नाहीं लहरि चढ़ायके बहुत नवायो।
कपि ज्यों घर घर द्वार नचावे उत्तम हरिको नाम छुटायो॥
अबके शरणि गही है तुम्हरी चरणहिंदास अयाने।
किरपा करि यह व्याधि छुटावा गुरु शुकदेव सयाने॥

राग धनाश्री॥

अब मैं सतगुरु शरणै आयो।
बिन रसना बिन अक्षर बाणी ऐसोहि जाप सुनायो॥
काम क्रोध मद पाप जराये त्रिबिधि ताप नशायो।
नागिनि पांच मुई सँग ममता दृष्टिसूं काल डरायो॥
किरिया कर्म अचार भुलाना ना तीरथ मग धायो।
समझो सहज बचन सुनि गुरु के भर्म को बोझ बगायो॥
ज्यों ज्यों जपूँ गरकहों वामें वह मों माहिं समायो।
जग झूंठो झूंठो तन मेरो यों आपा नहिं पायो॥
वाकूं जपे जन्म सोइ जीते सोहम् शुद्ध बतायो।
चरणदास शुकदेव दया यों सागर लहर समायो॥

राग सोरठ॥

गुरुदेव हमारे आवो जी।
बहुत दिनों से लगी उमाहो आनंद मंगल लावोजी॥
पलकन पंथ बहारूं तेरो नैनन परि पग धारोजी।
बाट तिहारी निशिदिन देखूं हमरी ओर निहारोजी॥
करौं उछाह बहुत मन सेती आंगन चौक पुरावोंजी।
करूं आरती तन मन वारूं बारबार बलिजावोंजी॥
दे परिक्रमा शीश नवाऊं सुनि सुनि वचन अघाऊंजी।
गुरु शुकदेव चरणहूंदासा दर्शन माहिं समाऊंजी॥

राग हिंडोलनो ॥

झूलत हरिजन सन्तभक्ति हिंडोलने ।
ररा ममा दृढ़खंभ रोंपे प्रेम डोरी लाय ।
टेक पटरी बैठि सजनी अतिअनन्द बढ़ाय ॥
ध्यानके जहाँ मेघ बरसैं होय उमँग हुलास ।
गुरुमुखी जहाँ समझ भीजैं पूरण हरिके दास ॥
बुद्धि विवेक विचारि गावैं सखी सहेली साथ ।
अगमलीला रटैं सजनी जहां ब्रह्मविलास ॥
परमगुरु श्रीजनक झूलैं झूलैं गुरु शुकदेव ।
चरणदासी सखी सदा झूलैं कोइ न पावै भेव ॥

राग हेली ॥

और न मेरे कोय हेली ।

प्राणपियारे लालजी ॥ रोम रोमरोम वेई रमेरी अरी हेली तन मन व्यापक सोय ॥ जित देखों तित लालकोरी अरी हेली दूजा नाहीं और ॥ आदि अन्त है लालजी सर्वमयी सबठौर ॥ देश काल सबलालहैं री अरी हेली अर्धऊरध है लाल। दहिने बायें लालजी दशोंदिशा में लाल ॥ सोवतही में लालहैं री अरी हेली जाग्रतहीमें लाल। माहिं सुषोपति लालजी तुरियाही में लाल ॥ ज्ञान ध्यान सब लाल हैं री अरी हेलीलालही गुरु शुकदेव चरणदासी है लालकी बिरला जानै भेव ॥

जो होवै हो हरिदास हेली एते कुलतारै वही ॥ फल न मुक्तिचाहै नहींरी अरी हेली भक्ति करै निर्वास॥ बीस चार कुल ददा केरी अरी हेली बीस नाना के जान। सोलह कुल ससुरारके द्वादश सुता बखान ॥ बहनी के ग्यारह तरैरी अरी हेली दश भूवा के पार। मौसी के कुल आठही वेद कहत हैं चार ॥ अष्टादश

सांचा हरि का नाम है, झूठा यह सन्सार।
शुकदेव कहैं चरणदास ये, सुमिरन करो बिचार॥
दश इन्द्रिन को खेंच के, अभय अमर फल चाख।
सहजहि सुमिरन होत है, तामें मन को राख॥
मान सरोवर देह में, मुक्ताहल जो श्वास।
चुगिये हंस स्वरूप हो, खुले कर्म की गांस॥
अजपा को यह अर्थ है, बिना जपे ही होत।
कछुवा की ज्यों सिमिट कर, तहां लगावो गोत॥
आवत ही को देखिये, जाते को जु निहार।
ऐसे सुरति लगाइये, चरणदास हिय धार॥
सकारे तन सींचिये, हकारे सुख होय।
ऐसे सुमिरन सत्य को, जाने बिरला कोय॥
नाभी से तो उठत है, फिर ता माहिं समाय।
या को भेद अपार है, सतगुरु देहि बताय॥
नाभि नाशिका माहि कर, घाल हिंडोला झूल।
उपजे अति आनन्द ही, रहे न दुख का मूल॥
ब्रह्म सिन्धु की लहरि है, ता में नान्ह समोय।
कलिमल सब छुट जायँगे, पातक रहे न कोय॥
अष्ट शत तीरथ तो विषे, बाहर क्यों भटकाय।
चरणदास यों कहत हैं, उलटा ही घर आय॥
स्वांसा सम्हल बिचार कर, तहां करो विश्राम।
तातें हरि ही हरि कहो, आवत कहिये श्याम॥
स्वांसा लेवे नाम बिन, सो जीवन धिक्कार।
स्वांस २ में राम जप, यही धारना धार॥
उलट पलट जप राम ही, टेढ़ा सीधा होय।
याका फल नहिं जायगा, बहुत हिलावे कोय॥

जो जो इन सों देखिये , तिन की निश्चय हान .
गुरु शुकदेव सुनावैरे , अरे हेला समझ चरणही दास ;
अपने ही परकाश में , आप रहा परकाश .

हिंडोला

झूलत गुरु मुख सन्त , अलख हिंडोलने .
नाभी त्रिकुटी खम्भ में , रोपे सोऽहं डोरी लाय ;
सुरति पटली बैठी सजनी , क्षण आवे क्षण जाय .
मन मनसा दोउ लगे झूलने , धारना लिये संग ;
ध्यान झोटे देत सजनी , भलो लागो रंग .
सखी सहेली सिमिट आईं , पींग पींगन नेह ;
बूंद आनँद सब भिगोईं , सघन बरसे मेह .
चारु वाणी खड़ी गावैं , महा रंगीली नार ;
मुक्ति चारों मालिनी , जहां गुह गुह लावैं हार .
त्रिगुण बगला उड़न लागे , देख बादल लय ;
संग पिय के सदा झूले , तातें लगे न भय .
चरणदास को नित झुलावे , इस झूले शुकदेव ;
शिव सनकादिक नारद झूलें , कर कर गुरु की सेव .

अथ सर्व अंग राग मंगल

मन रोगी भयो पिंड की कुबुधि विकार सों ;
बाढ़ी व्यथा अपार लोभ के भार सों .
कर्म भरो मति हीन क्षीण छल सों छयो ;
पांच पचीसों घर मोह मद ने दह्यो .
कैसे यह दुख जाय कै पूछन को चल्यो ;
तब पूरण गुणवन्त वैद्य सतगुरु मिल्यो .
कर गहि कियो विचार कह्यो समझायके ;
जो कुछ तेरो रोग सो देहों बताय के .

2. सोहं और आत्म-बोध का छंद (सोरठा/दोहा)

सोहं सोहं धुनि उठे, गगन मण्डल के द्वार।
जुगता नन्द निहारिया, आपा बीच अपार॥

- भावार्थ: जब साधक की सुरति (ध्यान) भृकुटी के मध्य यानी गगन मंडल (सहस्रार चक्र) पर टिकती है, तो वहाँ स्वतः 'सोहं-सोहं' की ध्वनि गूंजने लगती है। जुगता नंद जी कहते हैं कि तब साधक अपने भीतर ही उस अपार परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है।

3. अनहद नाद और अंतःकरण शुद्धि (चौपाई/पद अंश)

अजपा जपै सु अनभै रहै। सोहं शबद निरंतर कहै॥
उलटि अपान प्रान सों आनै। तब सोहं का निरनय जानै॥

- भावार्थ: जो साधक अजपा (बिना जीभ हिलाए सांसों का जप) जपता है, वह निर्भय हो जाता है। जब प्राण और अपान वायु का संतुलन होता है (प्राणायाम द्वारा), तब जीव को 'सोहं' शब्द के वास्तविक रहस्य का ज्ञान होता है।

4. गुरु कृपा का छंद

गुरु किरपा ते पाइया, सोहं शबद अनूप।
मिट गया भरम जुगता कहे, भया जोत स्वरूप॥

- भावार्थ: गुरु की कृपा से ही मुझे 'सोहं' जैसा अनुपम और दिव्य शब्द (मंत्र) प्राप्त हुआ है। जुगता नंद जी कहते हैं कि इस मंत्र के मिलने से मेरे मन का सारा भ्रम मिट गया और मेरी आत्मा स्वयं प्रकाश (जोत)

ननु सर्वत्रायं नियमः किं संभवेन्न वा ? इत्याशङ्क्याह

हृद्येष प्राणरूपस्तु सकारो जीवनात्मकः ।
विन्दुः प्रकाशो हार्णश्च पूरणात्मतया स्थितः ॥२२३॥

यद्यपि सस्थानतया सकारस्य दन्ता उदयस्थानं हकारस्य च कण्ठस्तथापि प्राणात्मजीवनरूपत्वात्सकारो हृद्युदेति हकारश्च प्रकाशात्मकत्वात्सर्वत इति ॥२२३॥

एतदुपसंहरन्नन्यदवतारयति

उक्तः परोऽयमुदयो वर्णानां सूक्ष्म उच्यते ।

सूक्ष्मश्च त्रिधेति, तत्र सूक्ष्मसूक्ष्मं तावदुदयमाह

प्रवेशे षोडशौन्मुख्ये रवयः षण्ठवर्जिता ॥२२४॥
तदेवेन्द्वर्कमत्रान्ये वर्णाः सूक्ष्मोदयस्त्वयम् ।

षोडशेति, अपानवाहस्यानन्दप्राधान्यात्; अत एव परोदयेऽप्यपानवाह एव षण्ठवर्णानामुदय उक्तः । 'औन्मुख्ये' इति निर्गमे । तेनापाने प्रत्येकं सचतुर्भागमङ्गुलद्वयमुदयः प्राणे पुनरङ्गुलत्रयमिति । तदेव वर्णानां षोड-

---

इसके अतिरिक्त दूसरे नियम की चर्चा कर रहे हैं—

हृदय में प्राण रूप जीवन प्रदान करने वाला सकार सदा सन्निहित रहता है। विन्दु और ह कार प्रकाश रूप से प्राणवाह में रमण करते हैं। 'ह' कार पूरणात्मक माना जाता है। 'स' का उच्चारण स्थान यद्यपि दन्त है और हकार का उदय स्थान कण्ठ! फिर भी इनका प्राणवाह प्रक्रिया में बड़ा महत्त्व है। इसी लिये स कार अजपा जाप क्रम में प्राण प्रद बनता है। हकार से बाहर जाकर प्राण शरीर की घटी प्राणशक्ति को पूरित करता है॥ २२३ ॥

यह पर-वर्णोदय का प्रकरण था। अब सूक्ष्म-वर्णोदय की चर्चा कर रहे हैं—

सूक्ष्म भी तीन प्रकार का होता है। १—सूक्ष्म-सूक्ष्म २—सूक्ष्म स्थूल और ३—सूक्ष्म। प्राण-प्रवेश अपानवाह में होता है और औन्मुख्य निर्गम रूप प्राणवाह में होता है। इसलिये अपान में २¼ अंगुल प्रत्येक वर्ण लेता है। १६

'प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहंभावो हि कीर्तितः ।'
(अ० प्र० सि० २२) इति ॥ २३८ ॥

एतच्चापानोदयेऽप्यतिदेष्टुमाह

शिवशक्त्यविभागेन मात्रैकाशीतिका त्वियम् ।
द्वासप्ततावङ्गुलेषु द्विगुणत्वेन संसरेत् ॥ २३९ ॥

शिवशक्त्योरविभाग इति, बिन्दुनादात्मप्राणापानोभयमेलनायामित्यर्थः । एकाशीतिरित्युपलक्षणं, तेन चतुरशीतिरपि । द्विगुणत्वेनेति, षट्त्रिंशतोऽङ्गुलानाम् ॥ २३९ ॥

एतदुपसंहरन्नन्यदवतारयति

उक्तः सूक्ष्मोदयस्त्रेधं द्विधोक्तस्तु परोदयः ।
अथ स्थूलोदयोऽर्णानां भण्यते गुरुणोदितः ॥ २४० ॥

अथ इत्यानन्तर्ये । गुरुणोदित इति सर्वशेषः ॥ २४० ॥

इसी के सहकार में सूक्ष्म अपर वर्णों का उदय कैसे होता है, यह बतला रहे हैं—

प्राण चार क्रम में अहमात्मक अद्वैत प्रकाश का विश्रान्ति धाम हृदय और द्वादशान्त में उदित होता है। सोऽहं में 'ह' कार से प्राण बाहर जाता है और 'सो' से प्रवेश करता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि 'सो' से प्रवेश कर जाने पर पूर्णिमा की विश्रान्ति के बाद जब प्रतिपदा शुरू होती है तो प्रथम स्पन्द 'अ' का ही होता है। द्वादशान्त में 'ह' चिति विन्दु से समन्वित होकर अहमात्मक उल्लास का प्रतीक बनता है। अ० प्र० सि० २२ भी "अहं भाव को हो प्रकाश विश्रान्तिधाम मानता है" ॥ २३८ ॥

प्राणवाह के साथ अपानवाह की स्थिति का दिग्दर्शन करा रहे हैं—

दोनों चार ७२ अङ्गुल के होते हैं। 'विन्दु' रूप प्राण 'नाद' और रूप अपान के सम्मेलन स्थल दो ही हैं। १—बाह्य द्वादशान्त और २—ऊर्ध्व। अमा और पूर्णिमा। इन्हीं के बीच में गमागम होता है। इसी में ८१ अर्द्धमात्रायें संसृति प्राप्त करती रहती है। इसमें शिव और शक्ति का विभाजन नहीं किया जा सकता ॥ २३९ ॥

प्राणग्रासक्रमावाप्तकालसंकर्षणस्थितिः ॥ २२ ॥
संविदेकैव पूर्णा स्याज्ज्ञानभेदव्यपोहनात् ।

हजार दो सौ प्राणचार की आंशिकता परिलक्षित होती है। पर-धाराधिरूढ योगियों को तो इससे भी आगे ६४ गुणित चारीयांश १३ लाख बयासी हजार ४ सौ तक परिलक्षित होते हैं। पन्द्रह प्राणगत तिथियों में $\frac{१}{२}$ + १५ + $\frac{१}{२}$ = १६ काल भाग होते हैं। इसी में उक्त सारा आकलन होता है ॥ १९-२० ॥

प्रश्न है कि इस से योगियों को लाभ क्या ? इसका उत्तर दे रहे हैं—

साधक आमावस्य-पौर्णमास के प्राणापानवाह को २१६०० चारात्मकता की सूक्ष्मता का आकलन करते-करते प्राणपर विजय पा लेता है। यह यत्नज स्थिति विकसित होते होते समाप्त हो जाती है और पूरे प्राणचार का ग्रास हो जाता है। सामान्यतया कोई भी व्यक्ति एक श्वास को १-१ मिनट बढ़ाते हुए लेने और १-१ मिनट बढ़ाते हुए बाहर करने का अभ्यास करे और धीरे-धीरे स्वात्मस्थ होकर श्वास चार का पर्यवेक्षण तटस्थता पूर्वक करने लगे, तो ऐसा करते-करते निश्चय ही श्वास का ग्रास हो जाता है। इस तरह साधक प्राण जेता बन जाता है ॥ २१ ॥

इससे भी क्या लाभ ? प्राण-जेता बन जाने पर उसके पल्ले क्या पड़ा ? इसका उत्तर दे रहे हैं—

ज्ञानभेदापोहनमेवोपपादयति

तथा हि प्राणचारस्य नवस्यानुदये सति ॥ २३ ॥
न कालभेदजनितो ज्ञानभेदः प्रकल्पते ।

कालस्य हि साक्षात् प्राणोऽधिष्ठानमिति प्राणस्यानुदये कालोऽपि नोदियात्,—इति तस्याभावात् तज्जनितोऽपि ज्ञानस्य भेदो न भवेत्,—

इति युक्तमुक्तम् 'एकैव पूर्णा संवित्स्यात्' इति ॥ २२-२३ ॥

ननु प्राणग्रासक्रमेण कालस्यापि ग्रासो वृत्तः,—इति तदाहितश्चेत्संविदि भेदो नास्ति तज्ज्ञेयाहितो भविष्यति येनेदं नीलज्ञानमिदं पोतज्ञानमिति विभागः,—इत्येतावतैव कथमेकत्वमस्याः सिद्धयेद् ? इत्याशङ्कयाह

संवेद्यभेदान्न ज्ञानं भिन्नं शिखरिवृत्तवत् ॥ २४ ॥

नहि एकान्ततः संवेद्यभेदः संविदं भिन्द्यात् एवं हि तत्तद्गृहाणां नामादिवेद्यभेदेऽपि कथमेकमेव नगरादिज्ञानं स्यादित्युक्तं 'शिखरिवृत्तवत्' इति। उन्नतप्रदेशावस्थितस्य हि पुंसस्तत्तदाभासमय एक एव प्रकाशो भवेदिति भावः। यदाहुः

प्राण ग्रास कर लेने पर कालसंकर्षणी स्थिति आ जाती है। एक पूर्ण संविदैक्य का भाव दृढ़ हो जाता है। काल जनित भेदभाव विगलित हो जाते हैं। नया प्राणचार उदित नहीं होता। परिणामतः पूर्णज्ञान का बोधात्मक महा प्रकाश भासमान हो जाता है ॥ २२-२३ ॥

1. सोहम् और आत्म-ज्ञान पर (परमात्मा और स्वयं की एकता)

जब पीरो को सोहम् साधना के जरिए यह बोध हुआ कि परमात्मा कहीं बाहर नहीं बल्कि उनके अपने ही भीतर है, तब उन्होंने लिखा:

> *"बाहर ढूंढन क्यों जावे बंदे, अंदर ही रब्ब पाया है।*
> *सोहम् शब्द दा सुण के डंका, भरम दा पर्दा लाया है।"*
> *(अर्थ: ऐ इंसान, तू ईश्वर को बाहर क्यों ढूंढता है, वह तो तेरे भीतर ही है। जब से सोहम् शब्द का डंका मन में बजा है, तब से अज्ञान और भ्रम का पर्दा हट गया है।)*

2. मजहब और सामाजिक बंधनों को तोड़ने पर

जब मुल्ला-काजियों ने उनकी पृष्ठभूमि और महिला होने के कारण उनकी साधना पर सवाल उठाए, तो उन्होंने सोहम् (अद्वैत) के बल पर करारा जवाब देते हुए कहा:

> *"कौण हिंदू ते कौण मुसल्मान, ए तां जग दे झेड़े ने।*
> *सोहम् दे विच सब इक होए, दूर कीते सब नेड़े ने।"*
> *(अर्थ: कौन हिंदू है और कौन मुसलमान, यह तो दुनिया के फालतू के झगड़े हैं। सोहम् की साधना में आकर सब एक हो गए हैं, और सारे भेद-भाव मिट गए हैं।)*

3. गुरु गुलाब दास की महिमा और शब्द-साधना

उनके लिए सोहम् साधना का मार्ग खोलने वाले उनके गुरु बाबा गुलाब दास ही थे। उनकी महिमा में वे लिखती हैं:

गए हैं।)

3. गुरु गुलाब दास की महिमा और शब्द-साधना

उनके लिए सोहम् साधना का मार्ग खोलने वाले उनके गुरु बाबा गुलाब दास ही थे। उनकी महिमा में वे लिखती हैं:

> *"गुलाब दास ने बख्श्या मोक्ष, दित्ता सच्चा ज्ञान री।*
> *'सोहम्' शबद कमा के पीरो, पा लिया निज स्थान री।"*
> *(अर्थ: गुरु गुलाब दास ने मुझे सच्चा ज्ञान देकर इस बंधन से मुक्त कर दिया। अब पीरो ने 'सोहम्' शब्द की कमाई (निरंतर साधना) करके अपना वास्तविक आत्म-स्थान पा लिया है।)*

4. अंतर्मुखी साधना पर (मस्जिद-मंदिर का खंडन)

सूफी और अद्वैत रंग में रंगी पीरो ने बाहरी कर्मकांडों की जगह सांसों की आंतरिक साधना (अजपा जाप) को प्रधान बताते हुए कहा:

> *"मक्के-काशी क्युं भटके जग, दिल दा महरम अंदर है।*
> *श्वास-श्वास विच 'सोहम्' बोले, एहो सच्चा मंदर है।"*
> *(अर्थ: दुनिया मक्का और काशी क्यों भटकती है, दिल का हाल जानने वाला परमात्मा तो अंदर ही है। जब हर सांस में 'सोहम्' गूंजने लगे, तो यही शरीर सबसे सच्चा मंदिर बन जाता है।)*

संत पीरो की ये पंक्तियाँ यह साफ दर्शाती हैं कि उनकी कविताएँ केवल आध्यात्मिक नहीं थीं, बल्कि उनमें एक शोषित महिला का अपने आत्म-गौरव को पुनर्जीवित करने का ज़बरदस्त साहस और विद्रोह भी शामिल था।

पृष्ठभूमि से आईं संत पीरो (पीरो प्रेमन) थीं, जो बाबा गुलाब दास की शिष्या और आध्यात्मिक संगिनी बनीं. भारत के विभाजन यह संप्रदाय मुख्य रूप से हरियाणा के क्षेत्रों में आकर बस गया. +1

गुलाबदासी संप्रदाय की प्रमुख पुस्तक कौन सी है?

इस संप्रदाय के दर्शन और इतिहास को समझने के लिए दो प्रमुख ऐतिहासिक पुस्तकें/रचनाएँ सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती हैं:

1. **'गुलाब चमन' (Gulab Chaman):** यह स्वयं बाबा गुलाब दास द्वारा रचित ग्रंथ है (जो 1881 में लाहौर से लिथोग्राफिक प्रिंट में प्रकाशित हुआ था). इसमें संप्रदाय के अद्वैत दर्शन, वेदांत के सिद्धांतों और गुरु-शिष्य परंपरा का विस्तृत विवरण है. +1
2. **'एक सौ साठ काफ़ियाँ' (Ik Sau Sath Kafian):** यह बाबा गुलाब दास की शिष्या संत पीरो द्वारा रचित काफ़ियों का संग्रह है. इसे इस संप्रदाय का सबसे व्यावहारिक और क्रांतिकारी ग्रंथ माना जाता है, क्योंकि इसमें सोहम् साधना के साथ-साथ तत्कालीन रूढ़िवादी समाज के खिलाफ उनके संघर्ष की पूरी कहानी दर्ज है. +1

पीडीएफ (PDF) कैसे देखें?

सुरक्षा नीतियों और कॉपीराइट नियमों के कारण मैं सीधे लाइव पीडीएफ फाइलों को यहां प्रदर्शित या डाउनलोड लिंक के रूप में साझा नहीं कर सकता।

यदि आप इन ऐतिहासिक पुस्तकों की पीडीएफ या उनके मूल पाठ (Text)

Ask Gemini

Flash

कहीं से प्रकाशित नहीं है। भीखा साहब की रचनाओं में उनके आत्मनिवेदन का भाव बहुत स्पष्ट रूप से मिलता है–

दुराग्रहीमनः–

जप तप भजन सकल है बिरथा, व्यापक जबहि बिसारे।
भीखा लखहु आपु आतम कंह, गुनना तजहु खमारे।।[133]

अंतर्ध्वनिः–

बाजत अनहद नाद गहागह, धुधुकि धुधुकि सुरझीना।
अंगुली फिरत तार सातुहं पर, लय निकसत भिन भीना।।
आदि शब्द ओंकार उठतु है, अटुट रहत सब दीना।
लागी लगन निरंतर प्रभुसों, भीखा जल मन मीना।।[134]

प्रेम का सौदाः–

अजपा जाप अकथ को कथनों, अलख लखन किन पाय।
भीखा अबिगति की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय।।[135]

साखीः–

शब्द नाम गुरू एक है, करता करम अधीन।
देह आतमा द्वै नहीं, जीव ब्रह्म नहिं चीन।।
जोग जुक्ति अभ्यास करि, सोहं शब्द समाय।
भीखा गुरू परताप तें, निज आतम दरसाय।।[136]

20. संत सहजोई बाई – संत सहजोईबाई के विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह अपने जीवन भर क्वाँरी एवं ब्रह्मचारी रहीं थीं और अपने गुरू के पास रह करके उनके सत्संग से हमेशा लाभ उठाती रहती थीं। सहजोबाई ने सहज प्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की थी उसी ग्रन्थ में उन्होंने अपना आत्म परिचय दिया है कि इनका भी जन्म अपने गुरू चरणदास की भाँति दूसर (वैश्य कुल में हुआ था)। इनके पिता जी का नाम हरिप्रसाद जी है। इनकी पुस्तक में यह भी लिखा मिलता है कि सं0 1800 के फाल्गुन मास (शुक्ल पक्ष) की अष्टमी तिथि को बुद्धवार के दिन इन्होंने उसकी रचना शुरू की थी तथा दिल्ली नगर के प्रतिछितपुर (कदाचित परीक्षितपुर नामक किसी भाग) में उसकी समाप्ति हई थी।

इनका सहज प्रकाश ग्रन्थ बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसमें इनकी प्रगाढ़ गुरू भक्ति संसार की ओर से पूर्ण विरक्ति तथा साधु, मानव–जीवन, प्रेम, निर्गुण–सगुण भेद, नाम–स्मरण जैसे विषयों पर व्यक्त किये गये इनके विचारों का अच्छा

21. संत दयाबाई – दयाबाई का दूसरा नाम दया कुँवरि भी है। इनके ग्रंथ दयाबोध से पता चलता है कि ये संत चरणदास की शिष्या थीं और उसकी रचना इन्होंने सं0 1818 की चैत सुदि 7 को की थी। यह ढूसर (वैश्य) जाति की थीं। संत दयाबाई एवं संत सहजोबाई दोनों गुरू बहने थीं, और अपने गुरू के साथ दिल्ली में रहा करती थीं। इनकी रचना दयाबोध के साथ विनय मालिका नाम की एक अन्य छोटी सी पुस्तक भी बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित हुई है। जिसके रचयिता का नाम दयादास था। दोनों के संपादकों ने दयाबाई और दयादास को अभिन्न माना है जो असंभव नहीं मालूम पड़ता है। इसके विषय में और कुछ भी विदित नहीं होता है।

विनय मालिका के अन्तर्गत प्रदर्शित कि गई एकान्त निष्ठा का भाव तथा इनके आत्म निवेदन का दैन्यपन इनके सच्चे हृदय के परिचायक हैं। इनके आत्म समर्पण में, एक निराश्रित की शक्तिहीनता के साथ–साथ अपने इष्ट के प्रति दृढ़ विश्वास का सहारा भी मिलता है। विनय मालिका भी भाषा में दयाबोध से कहीं अधिक प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति है। इनकी रचनाओं में गुरू–भक्ति के अतिरिक्त, प्रेम, वैराग्य, अजपाजाप आदि विषयों का वर्णन अन्य संतोंकी ही भाँति दीखाई पड़ता है–

साखी :–

गुरू किरपा बिन होत नहिं, भाव भक्ति विस्तार।
जोग जज्ञ जप तप 'दया', केवल ब्रह्म बिचार।।

स्वांसउ स्वांस बिचार करि, राखै सुरति लगाय।
दया ध्यान त्रिकुटी धरै, परमातम दरसाय।।[139]

22. सन्त रामचरन – संत रामचरन का जन्म सं0 1776 को सूरसेन अथवा सोड़ा गाँव के जयपुर राज्य के अंतर्गत ढूंढाण प्रदेश में हुआ था। इनका पहले का नाम रामकृष्ण था। यह बीजा वर्गीय वैश्य जाति के थे। यह अपनी आयु के इकतीसवें (31) वर्ष में इन्होंने किसी रात को सपने में किसी महात्मा द्वारा नदी में बहने से बचा रहे थे। आँख खुलने पर घटना की सत्याता में विश्वास करते हुए यह उस महात्मा की खोज में निकल पड़े थे और दांतड़ा जाकर सं0 1808 में कृपाराम जी से गुरूदीक्षा ले ली थी। यह कृपाराम जी स्वामी रामानन्द की परम्परा के प्रसिद्ध अग्रदास की 5 वीं पांचवी पीढ़ी के संतदास के शिष्य थे। संत रामचरन ने सं0 1808 में वैराग्य लेकर गूदड़ धारण कर लिया था। किन्तु वहाँ इन्हें पूर्ण संतोष न मिल सका और इन्होंने निजी अनुभव के अनुसार मत निश्चित किया था। अन्त में शाहपुरा में आकर रहने लगे और वहीं पर इन्होंने अपने मत–प्रचार का प्रधान केन्द्र स्थापित

मन ही की माला रहती है।[४५]

अजपाजाप का विधान इस तरह है कि साधक पद्मासन में बैठने के उपरान्त अन्तर्दृष्टि साधकर श्वास में श्रुति जाग्रत कर अजपा का जाप करे। यह जप बिना जिह्वा, बिना माला, बिना मन के अन्तर स्मरण है। इस अजपा सोहं जप से त्रिविध ताप मिट जाते हैं। इसीको दादू ने सहज धुन की डोर कहा है।[४६]

यही सोहं शब्द नाद में शब्द - ज्योति के रूप में बदलकर शून्य के अन्धार में प्रकाशित होने लगता है और यही परम तत्व तथा आत्म-तत्व के अभेद का वाचक बन जाता है।[४७]

संतों के सहज -जप पर जो सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, वह था वैष्णव प्रभाव। वैष्णव-सम्प्रदाय में राम या हरि आदि का जप तथा स्मरण आदि का विधान किया गया था और उससे गोलोक की प्राप्ति बतलाई गई थी। कबीर ने वैष्णव प्रभाव को परम अपार माना। इसलिये उन्होंने कहीं - कहीं तो राम का माहात्म्य सोहं की अपेक्षा अधिक स्वीकार किया है।

४५- मन माला तहं फेरिये जहं दिवस न परसे रात।
तहां गुरु बाना दिया सहजे जपिये तात।
सुरति सदा सन्मुख रहै, जहां जहां लौलीन
सहज रूप सुमिरन करै, निहकर्मी दादू दीन।
- दादू दयाल की बानी, १, पृ० ७७,८०।

४६- दादू डोरी सहज की यों आगों घर घेरि।
- दादूदयाल की बानी १, पृ० १०६।

४७- पारब्रह्म भगवान अंस हमरे कहवाये,
हमहीं सोहं शब्द ज्योति हूवै सुन्न में आये।
- पलटू साहब की बानी, पृ० ८२

४८- कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ
बावन आखिर सोधि करि, ररै ममैं चिलाइ।
- कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४८।

इस नाम-जप को श्वास के मध्यम-पथगमन के साथ अवधारण कर सिद्ध किया जाता है। तत्व के परामर्श होते रहने से श्वास इस मध्यम - पथ का गमन करता है और तब नाम-जप प्रत्येक श्वास के साथ प्रयत्न के बिना ही चलता रहता है, यही सहज-जप है। जप की सायास क्रिया के अभाव में भी यह जप होता रहता है, इसीलिये इसे अजपाजाप भी कहा जाता है। इस समय आत्मा का तत्व के साथ ऐक्य हो जाने से 'सोऽहम् सोऽहम्' की ध्वनि स्वतः श्वास के साथ निःसृत होती है। इतना ही नहीं सहजो बाई हंसा और सोहं का तारु बीनकर उसपर सुरति को चढ़ाने - उतारने को ही सहज-सुमिरन कहती हैं।[५४]

दादू ने योगियों के अजपाजाप के विषय में भी लिखा है जिसमें मन ही माला है, जो सुरति की डोरी में ग्रथित है और बिना हाथों के सहारे हो जिसे श्वास निशि-वासर जपा करता है।[५५] दादू श्वास-प्रश्वास के साथ तत्व-पर

५१- वेद शास्त्रजन चिवावहि तरण कउ संसारु
करम धरम अनेक किरिआ, सम ऊपरि नाम अचारु।
- ग्रन्थ साहब, पृ० ४०५

५२- सुन्दर ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ६६८

५३- नामरस अमरा है भाई, कोउ साध संगति तें पाई।
- गुलाल बानी, पृ० २३।

५४- सहजो बानी, पृ० ३७।

५५- सतगुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोय
बिन हाथों निसदिन [illegible] जपै, परम जाप यूं होय।
- दादूदयाल की बानी।

ऐसी अवस्था में पहुंच कर साधक यदि साधना छोड़ भी दें, तो साधना उसे नहीं छोड़ती है ।[1]

सुरति के भली प्रकार, स्थिर होने पर अमृत स्त्राव होने लगता है तथा जीवात्मा उसको पीकर परितृप्त हो जाता है, गगन में बिजली चमकने लगती है और प्रकाश हो जाता है । यह प्रकाश त्यों-त्यों बढ़ता है ज्यों-ज्यों सुरति सत् पुरुष के द्वार की ओर बढ़ती जाती है, वहां अनाहद नाद भी सुनाई पड़ती है ।

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के अनुसार मन को वश में करने के लिये सुरति ‡शब्द योग‡ का अभ्यास करना चाहिये । सुरत शब्द योग की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि आंख, कान, जुबान को बाहर की ओर से बन्द करके उन्हें अन्दर की ओर खोलिये । यहां आन्तरिक जगत् में अपूर्व सुख और आनन्द मिलेगा। इसी प्रकार आंख अन्तर में प्रकाश देखती है । जिह्वा अन्तर का नाम जपती है । इस प्रकार तीनों इन्द्रियों को अलग-अलग काम मिल गए । एक से हटे तो दूसरी ओर लगे । आन्तरिक जगत् के सुहावने दृश्य को देखकर, मनोरंजन बाजे को सुनकर अजपा-जाप की मधुर वाणी में लीन होकर हृदय प्रफुल्लित हो जाता है । वहां के मधुर गान मनोहर दृश्य तथा अजपा जाप सोऽहं-सोऽहं शब्द श्रवण करते ही सुरत सनसनाती हुई ऊपर की ओर उठी और आकाश में लीन हो गई । वहां का अनुपम दृश्य अकथनीय है । केवल अभ्यासी लोग ही उस सत् + चित्त् + आनन्द का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं ।[2]

इस सम्बन्ध में महात्मा कबीर ने ठीक ही कहा है कि सुरति के निरति में समा जाने से फिर अजपा में ही जाप होने लगता है ।

---

1. सन्तमत में साधना का स्वरूप : डा0 प्रताप सिंह चौहान, पृ. 58.

2. सन्तमत का सरभंग सम्प्रदाय : डा0 धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृ. 75.

बोध होता है तब सुरति जगती है । साधक स्वयं को परिपूर्ण या ब्रह्मस्वरूप पाता है उसी क्षण साधक के भीतर अहर्निश एक नाद गूंजने लगता है "अहम ब्रह्मडिस्म" । बिना कहीं गए मंजिल मिल जाती है ।[1]

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सुरति शब्द योग की वह प्रक्रिया है जिसमें साधक बाह्य जगत् से चित्त वृत्तियों को समेट कर उन्हें अन्तर्मुखी कर लेता है । इसमें अपनी स्मृति का प्रकर्ष शब्द श्रवण में दिया जाता है अर्थात् मन की बहिर्मुखीवृत्ति आभ्यन्तर में होने वाले शब्द में नियोजित की जाती है ।

सन्त कबीर ने शब्द साधना की महत्ता को स्वीकार किया है-

साधो शब्द साधना कीजै ।
जेहि शब्द ते प्रगट भये सब, सोई गहि लीजै..... ।[2]

निरति के सम्बन्ध में संक्षेप में कहा जा सकता है कि निरति साधना की वह अवस्था है जिसमें सुरति या स्मृति बिना अभ्यास के निरन्तरता प्राप्त करती रहती है और शब्द के साथ इस प्रकार सहजता प्राप्त कर लेती है कि उसे निरालम्ब की स्थिति कहा जा सकता है ।

सुरत शब्द योग को सन्त गुरु रविदास जी ने भी इसी रूप में लिया है -

सुरत शब्द जउ एक हों, तउ पाइहिं परम आनन्द ।
"रविदास" अतरं दीपक जरइ, घट उपजई ब्रह्म आनन्द ।।[3]

---

1. गीता दर्शन-अध्याय : 18 : भगवान श्री रजनीश, पृ. 338.
2. कबीर साहब की शब्दावली, पृ. 4 शब्द-7, वेल वेडियर प्रेस प्रयाग ।
3. रविदास दर्शन : आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, पद-77 पृ. 80.

या अमर वारुणी भी कहा गया है। इसका मूल स्रोत सहस्त्रकमल दल या सहस्त्रार है। खेचरी मुद्रा में अभ्यास द्वारा इसकी प्राप्ति होती है। जिससे शरीर अजर अमर हो जाता है।[26]

सोहं:
=====

"सोऽहम्" का अर्थ है "वही" {परब्रह्म} मैं हूँ"। सोऽहं जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रतिपादक है।

गुरू नानक देव ने सोऽहं जप के संबंध में अधिक तो नही कहा है। एकाध स्थल पर सोऽहं के प्रति अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे वेदान्ती दृष्टिकोण के सर्वथा अनुकूल है। इनकी वाणी में सोऽहं संबंधि जो बातें मिलती हैं, उसके प्रति अपार निष्ठा परिलक्षित होती हैं-

सोहं आपु पछाणिऐ सबहि भेदि पतीआई ।।9।।।।

कहीं कहीं गुरू नानक देव ने सोऽहं जप का स्पष्ट निर्देश भी किया है-

नानक सोऽहं हंसा जपु जापहु त्रिभवण तिसै समाहि
{ मारू की वार, महला ।}

अर्थात् हे हंसा {जीवात्मा} सोऽहं का जप करो। उसी {जप} में त्रिभुवन समाए हैं।

गुरू नानक ने नाम स्मरण को बड़ा महत्व दिया है इनके अनुसार

---

26. नानक वाणी, मारू महला ।

सन्त कबीर ने भी ऐसी दशा का वर्णन किया है यथा-

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै।[75]

शनैः शनैः आराधक की यह दशा उसका जीवन ही बन जाती है। ऐसा होने पर वह स्मरण की तृतीय भूमिका में पदार्पण करता है, जहाँ अजपा जाप भी छूट जाता है और उसे अपनी श्वास-प्रश्वास के साथ एक अद्भुत नाद का आभास होने लगता है। सन्तों ने इस ध्वनि को अनाहत अथवा सोहं आदि शब्द के द्वारा व्यक्त किया है । तथा उसे स्वयं परम तत्व माना है - यथा-

"सोहं हंसा एक समान"

इसकी विस्तृत व्याख्या योग प्रकरण में की जायेगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बावरी पंथ में किसी मंत्र विशेष को अनुप्राणित करके उसके द्वारा किसी ऐहिक कामना की सिद्धि अभीप्सित नहीं। इसी से इस पंथ में अन्य पन्थों के समान मंत्रों की किसी विशिष्ट परम्परा के दर्शन नहीं होते।

भीखा साहब ने एक स्थान पर स्वीकार किया है कि उनके कि उनके गुरु ने इ उन्हें केवल अजपा जाप का उपदेश दिया है:-

तू है जोगी जना ब्रह्म रूप लख जिय अपना[76]

मैं नाही निज साहब आपै कहु इक पेर परयो इतना[77]

---

75. सन्त वा0 सं0 भाग-2 पृ. 96
76.
77.

तुरसी के इन अवतरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास के समान तुरसी भी कलियुग में रामनाम को `कामधेनु` समझते हैं इसीलिए वह साधना का सर्वश्रेष्ठ साधन है। उस नामस्मरण से ही समस्त पूजा विधानों का फलप्राप्त हो सकता है। तुलसीदास के समान संत तुरसी भी `राम` नाम के इन दो अक्षरों का महत्व प्रतिपादित करते हैं जिसमें वे `र` और `म` इन दो अक्षरों को ज्ञानानंद की वर्षा करने वाले बादल के रूप में चित्रित करते हैं -

`बादल बरसन लागे दोय।
ररौ ममौ उर माँहि उमगि कै, जल थल डारे धोय।।
उनै आई घटा ज्ञान की, दामिणि दमकत सोय।
प्रीति पवन चलि हरि जल बूठौ, अमृत धार समोय।।
तपन मिटी, तन मन भयो सीतल, सुरति सुधारस मोय।
नष सिष नगरी आनंद उपनौ, सुण बिलसै सब कोय।।
दुरमणि मिटि, सुरमणि उपजानौ, दुण दलिद्र गये षोय।
तुरसी आदि अंत अमैता, मंगल गावै लोय।।`[१]

इस प्रकार राम नाम के दो अक्षर ही वास्तव में काया-नगरी में ज्ञान की घटा उमड़ने और आनंद की वर्षा होने के कारण होते हैं। नाम के इन दो अक्षरों का महत्व तुलसीदास जी ने भी निरूपित किया है जो हमारा चिर-परिचित अंश है-

`एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोय।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोय।।`[२]

इस प्रकार नाम के इन अक्षरों का माहात्म्य निरूपित करने की कल्पना में भी तुलसीदास जी और संत तुरसी भावना की समान सतहों पर खड़े दिखाई देते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कल्पना के इस तादात्म्य में दोनों कवियों में पर्याप्त समानता है। अत: यह स्वत: सिद्ध है कि तुरसी का नाम

१- निरंजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी : डा० भगीरथ मिश्र, पृ०६४।
२- रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो सं०२०।

५०६

सुरति - शब्द-योग- साधना

सन्त बुला साहब ने सुरति-शब्दयोग की भी साधना का अभ्यास किया था। उनकी उक्त साधना की अनुभूति का भी आभास उनकी रचनाओं से मिलता है।[1] "इस शरीरमें दो आत्मा हैं, एक शुद्ध ब्रह्म हैऔर एक मन या माया के चक्कर में फँसी हुई जीवात्मा है। ब्रह्म शब्द रूप तथा जीवात्मा सुरति रूप है। शब्द रूप ब्रह्म की ध्वनि इस शरीर में ही स्थित नाना लोगों में भिन्न प्रकार से सुनाई देती है। ओम्, सोहं, तथा ररंकार इत्यादि शब्द पृथक-पृथक लोकों के प्रतीक हैं। शब्द तथा सुरति का एकीकरण या शब्द में सुरति का लय कर देना ही सुरति-शब्द-योग कहा जाता है। अभ्यास की प्रथम अवस्था में सुरति तथा शब्द एक दूसरे से पृथक रहते हैं परन्तु धीरे- धीरे दोनों का तदाकार हो जाता है या सुरति शब्द में लय हो जाती है"।[2] सुरति को त्रिकुटी तक ले जाना साधारण कार्य नहीं है। मन भागतारहता है इसलिये इसे एकाग्र करने में समय लगता है। वह धीरे- धीरे थकित होता है। इसलिये त्रिकुटी तक पहुँचने में साधक

---

१ शब्दसार, पृष्ठ ८ ,शब्द ४ ।

२ डा० राधाकृष्ण सिंह, सन्त पलटूदास और पलटू पन्थ,पृष्ठ ९९,-१०० ।

को पिपीलिका-गति से आगे बढ़ना पड़ता है। त्रिकुटी के बाद साधक तीव्र गति से आगे बढ़ता है क्योंकि वह माया के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर हो जाता है। इसलिये इसे विहंगम गति कहते हैं। निम्नोक्त पंक्तियों में बुला साहब के सुरति-शब्द-योग की साधना का परिचय मिलता है। वे हिंडोला पर झूलते- झूलते उस गगन-तट पर पहुँच जाते हैं जहाँ श्वेत एवं आज्वल्यमान प्रकाश विद्यमान है। उस अप्रतिम प्रकाश में अपने को समाविष्ट करने की और वहाँ से प्रत्यावर्तित न होने की भी बात उन्होंने कही है। देखिये -

सतगुरु नावल अवर हिंडोलना।
हम धन झूलब सुघर हिंडोलना।।
झूलत झूलत गइलुं गगनहिं तटना।
तहवाँ साधन को अवरना।।
सेत सुहावन जगमग देखलना।
तहंवा प्रान हमार समौलना।।
जन बुल्ला गावल निगम हिंडोलना।।[1]

मन बैरागी हो , प्रभु गति लखहि न कोई ।।
है कुंभक पूरक घर रहना , रेचक संयम देई ।
त्राटक ताड़ी लगलि केवारी , राम नाम जपि लेई ।।[1]

यद्यपि हठयोग-साधना की भाँति 'सहज साधना' कष्टसाध्य नहीं है , इसमें ध्यान, धारणा , समाधि तथा ज्ञान-साधना की भी आवश्यकता नहीं है, तीर्थ, व्रत, नियम-पालन आदि की अनिवार्यता नहीं है , फिर भी सन्त बुला साहब के साहित्य का अनुशीलन करने पर यह बात मन में नहीं बैठती कि उन्होंने कबीरदास प्रवर्तित सहज-साधना को अपने सम-सामयिक निर्गुणोपासक सन्तों की भाँति महत्व प्रदान किया है । उनके साहित्य का बहुलांश उनकी साधना-पद्धति के विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण में ही प्रणीत हुआ है । उनका साहित्य मुख्य रूप से इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुंडलिनी-उत्थापन , अनहदनाद श्रवण तथा सुरति-निरति-योग की व्यंजना करता हुआ प्रतीत होता है ।

अजपा-जाप

बुला साहब ने अजपा-जाप की साधना पर बल दिया है । उन्होंने इस साधना के माध्यम से आत्म-स्वरूप को खोजने का संकेत किया है । उन्होंने साधकों को चेतावनी दी है कि आत्म-स्वरूप की खोज किये बिना उनको अभीष्टसिद्धि की उपलब्धि नहीं हो सकती है । देखिये -

बटोही खोजहु क्यों नहिं आप । सुमिरहु अजपा जाप ।।
बिनु खोजे कहुं राह न पैहो । कोटिन करहु विलाप ।।
निकटहि राम नाम अभिअंतर । जानहि जाहि मिलाप ।।
हाजिर हजूर त्रिवेनी संगम , झिलिमिलि नूर जो जाप ।।
जन बुल्ला महबूब नूर में , यारी पीर प्रताप ।।[2]

---

१ शब्दसार , पृष्ठ ३, शब्द ८ ।
२ वही , पृष्ठ ५, चेतावनी-१ ।

बुला साहब की रचनाओं से ध्वनित है कि उन्होंने स्वयं अजपा-जाप की साधना की थी, केवल उन्होंने उसका उपदेश ही नहीं दिया था । उन्होंने अपने अजपा-जाप के साधना-काल की अनुभूति को स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है ।

सामहिं उगवे सुर भोर ससि जागई ।
गंग जमुन के संगम अनहद बाजई ।।
अजपा जापहि जाप सोहं डारि लागई ।[1]
बुल्ला तामें पैठि जोति में गाजई ।।

सन्त पलटू साहब उसी को ज्ञानी कहना उचित समझते हैं जिसकी कमठ जैसी दृष्टि हो। कमठ सूखी जमीन पर अण्डा देता है, और स्वयं पानी में रहता है परन्तु वह ध्यान से ही अण्डा सेता है। जिस प्रकार पनिहारिन अपने सिर के ऊपर गागर रखती है, परन्तु उसका ध्यान घड़े पर ही होता है। उसी प्रकार ज्ञानी पुरूष भी इस संसार के जीवों में निवास करता है, परन्तु प्रत्येक क्षण उसका मन बह्म में ही लीन रहता है और उसकी दृष्टि उसी अरूप का रूप देखती रहती है। जिस प्रकार सर्प चरता रहता है परन्तु उसका ध्यान मणि पर केन्द्रित रहता है उसी प्रकार साधक अहर्निश ब्रह्म का अनुभव करता रहता है यद्यपि वह सांसारिक कार्यो में लीन रहता है। यह भी कहा जा सकता है कि वह सांसारिकता रूपी कीचड़ से जीवन सामग्री ग्रहण करता हुआ भी कमला की भॉति निर्लिप्त रहता है।[23]

कमठ दृष्टि सोई ज्ञानी अवधू बारम्बार बखानी।
अण्डा कमठ देता है सूखे आप रहत है पानी।
दृष्टि सेती अण्डा वह सेवै अण्डा में सुरति समानी।।
ज्यों पनिहारिन के सिर गागर, ऐसी चतुर सयानी।
चित वाको गागर मारग में मुख से बोलै बानी।।
चरै भुजंग दृष्टि है मणि पर सुरति रहे अरूझानी।
ऐसा ध्यान धरे जो कोई ताको कहिए ज्ञानी।।
सब में रहे सबन से न्यारा, ऐसी मति जिन ठानी।
पलटूदास करैवे सब कुछ सुरति रहे अलगानी।। [24]

सच्चे गुरू से प्राप्त ज्ञान द्वारा मनुष्य के अज्ञान का पर्दा हट जाता है तथा उस पारब्रह्म परमेश्वर के रूप की अनुभूति होती है जिसके लिए साधक का मन अहर्निश तड़पता रहता है। इस अद्वितीय अनुभूति के बाद मन के समस्त कल्मष धुल जाते हैं एवं सभी धोखे मिट जाते हैं। साधक की सहज समाधि लग जाती है एवं शक्ति से शिव का तादात्म्य होने लगता है। इससे हृदय महल में बिना तेल वाली एवं दीपक के आलोक फैल जाता है तथा भक्त दिन रात भजन में लीन होकर परम आनन्द की प्राप्ति करता रहता है।

परदा अन्दर का टरै देखि परै तब रूप।
देखि परै तब रूप मिटै सब मन का धोखा।
परै शब्द टकसार बहुत चोखे से धोखा।।
योगजीत जब होय भूमिका ज्ञान की पावै।
लागे सहज समाधी, शक्ति से शिव बनावै।।
महल करै उजियार तेल बिनु दीपक बाती।
परमानन्द आनन्द भजन में दिन औ राती।।

प्रेम युक्त हठयोग को इन्होंने हिंडोला के माध्यम से बहुत ही सजीव रूप में वर्णित किया है। इनके हिंडोले में सन्त और सुजान ही झूलते हैं। इसमें अर्द्ध और उर्द्ध दो खम्भे लगे हैं तथा सुरति की डोरी लगी हुयी है। पच्चीस सखियाँ मिलकर इस झूले को आकाश में झकोर–झकोर करके झूला रहीं है। इस झूले पर मन पैंग (परेंग) मार रहा है तथा अनहद नाद का आनन्द ले रहा है एवं अपने भव जाल से विरक्त हो रहा है।

अरे सखी झूलहि सन्त सुजान डोलना हो।
अर्द्ध उर्द्ध दोऊ खम्भवा हो लगी है है सुरति के डोरि।
सखिया पच्चीस मिलि झूलहि गगन झकोरी–झकोरी।
सुरति – निरति ले पोढ़ा मन मोरा मारै पैग।
प्रेम के किहेअ खटोलना सखी त्रिगुण खाहि दरेग।।
सुखमनि के घर भीतर हो अनहद नाद वजाय।।
लम्बिका सुर ले गावहि सखी शब्द रहाय–रहाय।।
वायु बहे पुरवइया हो, रिमझिम बरसे नीर।
पिया मोर हंसि–हंसि बोलहि सखी बानी महिर गम्भीर।।
सीस लिये एक नरियर हो गले पुहुप के माल।
पलटूदास वहाँ झूलहूँ सखी जारि जगत जंजाल।। [128]

सन्त पलटू साहब ने प्रेमयोग को ज्ञान और भक्ति के ऊपर माना है। क्योंकि प्रेम के अभाव में इन दोनों का अस्तित्व कमजोर पड़ जाता है। इसमें अधूरापन और त्रुटि नहीं रहती है। इस योग से ज्ञान का जन्म होता है और अज्ञान का नाश। प्रेम योग की साधना वियोग की साधना है। यह वियोग प्रारम्भ होती है और वियोग से ही पुष्ट होती है। इसमें मोक्ष या निर्वाण का का कोई महत्व नहीं रहता है। प्रेम का अनुभव

"वे साधु बिरले लखै, छाड आकार कूँ शब्द लागै।"[31]

इक्कीस हजार छः सौ (21,600) श्वासों में रात–दिन नाम में लवलीन रहने पर प्रकट होने वाले 'अनहद नाद' को सुनकर भवसागर से पार उतरा जा सकता है–

"सहंस इकीसौं छै सौ दम है, निश वासर तूं लै ला।
गरीबदास सुनि पार उतरि गये, अनहद नाद घुरैला।।"[32]

हंस प्रवृत्ति का व्यक्ति ही 'अनहद नाद' का अनुभव प्राप्त कर सकता है–

"सुरति निरति मन पवन पंखी, शब्द में रखि गोय।
नाद अनहद सुनत हंसा, ब्रह्मवारी बोय।।"[33]

सुंन शिखर–

आलोच्य कवि गरीबदास ने योग के अनुभव क्षेत्र में आने वाले मार्गों का भी खुलासा किया है। सुंनशिखर, भंवरगुफा, बंकनाल, मक्रतार, औघट घाट एवं भंवर आदि तत्वों की अपनी वाणी में जानकारी दी है। साधना के मार्ग में सात सुंन का जिक्र मिलता है, जो क्रमशः इस प्रकार है– सकल सुंन, महा सुंन, अभै सुंन, अलील सुंन, अजोख सुंन, सार सुंन एवं अन्तिम सत सुंन। आलोच्य कवि के सद्‌गुरु कबीर का मठ (स्थान) शीर्ष सुंन पर है, जहाँ कोई बिरला साधक ही पहुँच सकता है–

"सकल सुंन, महासुंन, अभै सुंन, अलील सुंन,
अजोख सुंन, सार सुंन, सत सुंन।।
गरीब, सत सुंन में सत है, और सुंन प्रकाश।
जहाँ कबीरा मठ रच्या, कोई पौंहचे बिरला दास।।"[34]

सुंन का ज्ञान वही प्राप्त कर सकेगा, जो–

"सर्वलोक की माया त्यागे। ममता टूटे गृह बैरागे।।
दीन दुनी से होइगा न्यारा। सोई पावैगा सुंन पसारा।।"[35]

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी 'सत सुंन' का भेद न जान पाए–

"पदम जन्म जो ब्रह्मा धारे। तो सत सुंन नाहीं प्रकाशे।।
विष्णु नाम है सत सतेसा। सत सुंन से नाहीं भेटा।।
सतानवें बेर शिव शंकर धाया। सत सुंन का मरम न पाया।।"[36]

"शब्द साचा गहौ औधू, निश्चल नाम निशान।
चार दिन की चिहरबाजी, जे जांनैं तो जानि।।"[72]
"औधू श्वासा संगि शास्त्र निकसै, संख असंखौं भेला।
दूजा कौन पढ़ावै है रे, आपै गुरु आपै चेला।।"[73]

संतकवि ने योग—युक्ति के विषय में कहा है—

"सतगुरु शब्द सत्य कर मानों। घड़ी घड़ी की अवधि जानों।।
पलक पलक का छाना बीनां तिन नर योग युक्ति पद दीना।।
सांस उसांस मध्य है सोई। इसको चीनहे यो निर्मोही।।
शब्द डोरी जिन पकड़ी भाई। सार वस्तु तिनहुँ ने पाई।।
दास गरीब कहै समझाई। याका भेद प्रगट दिखलाई।।"[74]

अर्थात् गरीबदास जी की दृष्टि में योग की युक्ति का पद वही साधक प्राप्त कर सकता है, जो हर श्वास—प्रश्वास, प्रत्येक घड़ी सतगुरु के सतशब्द को उर में धारण किए रहे। वास्तव में उसे ही निर्मोही की संज्ञा भी दी है, जो शब्द की डोरी को पकड़े रहता हो अर्थात् अहर्निश नाम रटता रहे। ऐसे भक्त के हृदय में साधना का सम्पूर्ण भेद प्रगट हो जाता है। कुछ भी गुप्त नहीं रहता है। अतः शब्द की साधना ही योग—साधना है, क्योंकि आत्मतत्व एवं परम तत्व के योग का साधन एकमात्र शब्द ही है अर्थात् शब्द को सिद्ध करने वाला साधक ही पूर्ण योगी है।

सारांशतः हम यह कह सकते हैं कि संतकवि गरीबदास की वाणी में नाथों की क्लिष्ट काया अर्थात् हठयोग साधना एवं सिद्धों की अश्लील गुह्य महामुद्रा साधना का शास्त्रीय निरूपण नहीं मिलता, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन्हें उपर्युक्त साधना का पूर्णरूपेण ज्ञान था। उन्होंने योग के विभिन्न पक्षों को अपनी अनुभवगम्य वाणी के माध्यम से स्पष्ट किया है। सभी क्लिष्ट तत्वों को सहज भावों के साथ व्यक्त किया गया है, ताकि जनसाधारण को योग की विधि समझना सहज हो सके।

सुमिरन कला में ध्यातव्य बिन्दु यह है कि मन का तार नाम में अनवरत अखण्ड रूप से जुड़ा रहे, तभी वह वास्तविक सुमिरन कहा जा सकता है। संतकवि ने मंत्र सुमिरन की विधि का उल्लेख करते हुए बताया है–

"सत्गुरु ने माला दई, स्वास सुरति से पोय।
हाथ जीभ हालै नहीं, इस विधि सुमिरन होय।।"[122]

अतः सुमिरन का सम्बन्ध सुरति से है। इस विधि में शारीरिक यत्न नहीं आत्मिक श्रम की आवश्यकता है। अर्थात् अनात्मा (मन, माया, जग) को त्याग आत्मा में स्थित होने की चेष्टा प्रबल रहती है। यह तभी सम्भव है जब सुमिरन में अखण्डता रहे। जब साधक का रोम–रोम मंत्र का जाप करने लगे, तब इस अवस्था को सहज में ही प्राप्त किया जा सका है।

"सुमिरन तब ही जानिये, जब रोम रोम धुन होय।
कुंज कमल में बैठ कर, माला फेरै सोय।।"[123]

अतः उपर्युक्त सुमिरन की विधि में न तो स्थूल माला की आवश्यकता है और न ही किसी दैहिक प्रयास की। मंत्र का जप हर श्वास में सुरति द्वारा करना है। संतकवि के मत में चातक पक्षी के समान सुमिरन करना चाहिए –

"कोई गावै कोई रोवता, कोई ज्ञानी गुण सारा।
एक चुप चातक ज्यूं रटै, अजपा जाप उचारा।।"[124]

एक मात्र मानव देह में चिदानंद स्वरूप उसकी विदेह (सुरती) से सुमिरन चलता है। इसी संदर्भ में आलोच्य कवि ने स्पष्ट करते हुए कहा है –

"सुरति निरति से सुमिरन कीजै, सोहं चित्रशाला।।"[125]

सुमिरन की कला का उल्लेख जिस प्रकार संत कबीर एवं उनके शिष्य संतकवि गरीबदास के काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी वाणी में स्पष्ट कहा गया है कि मंत्र जाप तन, मन, कंठ, तालु, जिव्हा से नहीं अपितु निज चैतन्यस्वरूप सुरती से किया जाता है। सुमिरन की पराकाष्ठा एवं परमावस्था का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है –

"सुरति लगै अरु मन लगै, लगै निरति तिस मांहि।
एक पलक वहां संचरै, कोटि पाप अघ जांहि।।"[126]

अर्थात् जब सुमिरन करते वक्त ध्यान में सुरति, निरति और मन स्थिर हो जाय और साधक शरीर एवं संसार को भूल जाय तो एक पलक की यह स्थिति युगों–युगों की बंदगी से भी बढ़कर है एवं मंत्र जाप की इस चरमावस्था पर एक पलक में साधक के करोड़ों पापकर्मों का नाश हो जाता है और साधक चौरासी लाख योनियों के भयंकर दुःख से मुक्त हो जाता है। संत कबीर ने भी साधना की इस अवस्था को निम्न दोहे के माध्यम से व्यक्त किया है–

"पांच पचीसौ नौ नहीं, चौदह तीन न चार।
दोय नहीं जहां ध्यान धर, सतगुरु महल भंडार।।"[169]

आलोच्य कवि ने नाम में लवलीन साधक को रावनपति राव एवं छत्रपति की उपाधि दी है –

"सब रावनपति राव है, जाके रूंम रूंम धुनि होय।
दम खाली नहीं नाम बिन, छत्रपति है सोय।।"[170]

सुरति का समागम कर ओर उसके द्वारा नाम में मन को एकाग्र करने वाला अनुरागी जिज्ञासु ही साहिब (परमात्मा) के महल में ल्यौलीन हो सकता है–

"सोहं हंसा हेरि ले, सुरति समागम कीन।
दास गरीब महल मिले, अनरागी ल्यौलीन।।"[171]

साधना में लवलीन मनुष्य का हृदय में प्रकट होने वाले अलौकिक अनुभव का घर अटपटा है, क्योंकि शब्द (नाम, गुप्त मंत्र) रूपी अथाह, विशाल महासागर में

विपरीत दिशा (उलटा चलना) की ओर चलने वाली मछली के सदृश मन को चलाना पड़ता है अर्थात् मन की वृत्तियों को संसार की ओर से उलट कर परमतत्व में विलीन करना है–

"अनभै का घर अटपटा, अष्ट कँवल दल चीन्ह।
शब्द महोदधि सिंधु में, उलटि चले ज्यूँ मीन।।"[172]

लवलीन रहने की अवस्था तभी संभव है जब सद्‌गुरु के प्रति पूर्ण शरणागति एवं समर्पण का भाव हो। इस स्थिति में ही साधक नाम एवं प्रेम रूपी अमल एवं मद का पान करता है–

"मैं अमली निज नाम का, मद खूब चवाया।
पिया पियाला प्रेम का, सिर साटै पाया।।"[173]

लय की स्थिति में साधक–साध्य का भाव न रहकर एकात्मकता का भाव स्थापित हो जाता है। आत्मा, आत्मा न रहकर परमात्मा स्वरूपी हो जाता है और रोम–रोम में नाम से निःसृत अमृत एवं उसकी ध्वनि से झंकृति की अनुभूति होती है।

अनहद शब्द के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रायः सभी सन्तों ने अनाहद के सहज रूप पर ही बल दिया है, जिसमें मन का उल्लास, उमंग, प्रेम भक्ति, राग, नाद, बाज इत्यादि सब कुछ समाहित है दादू के शब्दों में यह ब्रह्मनन्द के सहज रूप का ही प्रतीक है, जिसमें आनन्दानुभूति का समावेश है :–

सबद अनाहद हम सुना, नख सिख सकल सरीर।
सब धटि हरि हरि होत है, सहजई ही मन धीर।। [58]

सन्त कवियों ने नाथों की भाँति अजपा का वर्णन किया है। इन कवियों ने शून्य में अजपा की चर्चा की है। [59]

''अजपा जपति सुनि अभि अंतरि, महुत्त जानै सोई''।।

16वीं शती के संत नानक''श्वास प्रश्वास'' के द्वारा सम्पन्न होने वाले अजपा का वर्णन प्रतीक रूप में करते हैं। [60]

''स्वांस–स्वांस प्रभु तुमहि धियावऊँ''

दादूदयाल ने भी अजपा का वर्णन किया है। [61]

''तह बिन कर बाजै बैन, जिम्मा हीणै गावणै''

धनी धरमदास प्रिय मिलन के लिए अजपा जाप पर बल देते हैं। [62]

''निरंजन'' शब्द का अर्थ अंजन रहित है अंजन माया है इसलिये निरंजन माया रहित अर्थात निर्गुण ब्रह्म का प्रतीक है। संतों का निरंजन माया रहित सार तत्व है। गुरू नानक निरंजन को माया से परे मानते हैं और उनका विश्वास है कि वह (निरंजन) न किसी के द्वारा बनाया जाता है और न ही स्थापित होता है वह तो स्वयं ही है :–

''व्यापिआ न जाइ कीता न होई।
आपै आपि निरंजन सोई।।'' [63]

यही नहीं दादूदयाल ने अपनी वानियों कि प्रत्येक ''साखी अंग'' की वंदना ''निरंजन'' शब्द से प्रारम्भ की है। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दादू निरंजन को परमपिता परमेश्वर का प्रतीक मानते थे–

जो कुछ करै सो सहज सुभाय, सहज–सहज हरि के गुण गाय।

दादू भी सहज राम की साधना को ''परमतत्व'' का प्रतीक मानते हैं [47]:–

सोई प्राण प्यंड पुनि सोई, सोही लोही मासा।
सोई नैन नासिका सोई, सहजै कीन्हीं तमासा।।[48]

इस प्रकार से सोलहवीं शताब्दी के सन्तों का सहज उनकी सहज समाधि और उनकी सहज राम की साधना, सहजशील, स्वभाव पर आश्रित है जिसके मिले जुले रूप में परमतत्व सहज का प्रतीक है।

''सहज समाधि'' सुरति तथा निरति के सम्मिलन के प्रादुर्भूत अवस्था विशेष अवस्था विशेष का नाम है, अर्थात सुरति के निरति में समाने पर ही ''सहज समाधि'' की अवस्था प्राप्त हो सकती है और अपने अन्दर ही प्रभु का साक्षात्कार हो सकता है इसी अवस्था का नाम सहज समाधि है। सुरति और निरति परिभाषिक प्रतीक हैं। आलोच्य संत साहित्य में सुरति का प्रयोग आत्मा या जीवात्मा के अर्थ में हुआ है दादू सुरति का प्रयोग इसी अर्थ में करते है :–

सुरति सदा सम्मुख रहै, जहाँ जहाँ लै लीन।
सहज रूप सुमिरन करें, निह कर्मी दादू दीन।। [49]

स्मरण शक्ति के अर्थ में दादू ने सुरति शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है :–

दादू हूँ बलिहारी सुरति की सबकी करै सम्हाल।
कीड़ी कुजंर पलक में करता है प्रतिपाल। [50]

श्रवण के अर्थ में दादू ने सुरति शब्द का प्रयोग इस प्रकार से किया है :–

सब घट श्रनवां सुरति सौ सब कर रसना वैन।। [51]

सुरति और मन की स्थिति शुद्ध चित्त रूप ही है। सुरति का अर्थ मन के अर्थ में भी किया जाता है। दादू ने सुरति का सहज रूप देखा है। [52]

(क) मनचित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहि।
दादू पाँचौ पूरि लै, धरती अंबर नाहिं।।
(ख) निराकार मन सुरति सो, प्रेम प्रीति सौ सेव।

दादू नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुरूदेवतः।
वंदन सर्व सावधा पुणामं पारगतः।। [64]

दादू का विचार था कि जीवित रूप में यदि मुक्ति प्राप्त हो सकती है तो केवल निरंजन की उपासना से ही :–

''निकट निरंजन लागि रहै,
तब हम जीवित मुक्त भए। [65]

दादू ने अंजन का संकेत किया है :–

निरंजन अंजन कीन्हारे, सब आत्म लीन्हा रे।
अंजन माया अंजन, काया अंजन छाया रे।। [66]

अस्तु अंजन निरंजन की छाया है, उसका प्रतिस्वरूप है, अंजन माया है, यही संतों को मान्य है सन्त बानियों में इसका प्रयोग सत् और असत् दोनों अर्थों में मिलता है। जहाँ सत् रूप में प्रयोग है। वहाँ वह परमात्मा का प्रतीक ही प्रतीत होता है।

अरध–उरध को सन्तों के साहित्य में प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया गया है। अरध–उरध को गंगा जमुना का प्रतीक प्रायः सभी संतों ने स्वीकार किया है। [67]

(क) अरध उरध वि बागिया तहाँ सुरति लगावो।
(ख) अर्थ ऊर्ध के मध्य मे हो, अभी अरगजाकीच।।

इसी प्रकार खसम :–

नकि न थ खसम हथ किरतु थक्के दे।
जहाँ दाणे तहाँ खाणे नानक सचुहै।।[68]

इसी प्रकार भंवर गुफा :–

भंवर गुफा से उठत बुलबुला, सो अंजन पिय नैन लगावो।। [69]

इसी प्रकार बंक नाल :–

नौ लख जरत मसा, सीढी बंकनाल है। [70]

इसी प्रकार से उन्मनि :–

''जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उन्मनि लागा''। [71]

2. उपांशु :– जो केवल साधक को सुनाई दे।

3. मानस :– जो साधक को भी सुनाई न दे।

राघव भट्ट ने शारदा तिलक तंत्र में जप तीन प्रकार का बताया है :–

उच्च, उपंगशु तथा मानस।[92] इसमें उच्च और उपगंशु बाह्य क्रिया प्रधान हैं तथा मानस, आन्तरिक क्रिया से सम्बद्ध है।[93]

जिस जाप में किसी भी प्रकार की क्रिया न हो उसे ''अजपा'' कहते है। अजपा अपने आप चलते रहने वाला जाप है। संतों द्वारा प्रयुक्त अजपाजाप नाम–स्मरण की उस पद्धति का सूचक है, जिसमें बाह्य साधनों की सहायता के बिना ही जाप की क्रिया आपने आप से चलती रहती है।

सिद्ध ''एवं'' बीजाक्षर को ध्यान में रखकर साधना करते थे नाथों ने ''सोऽहम्'' शब्द को अपनाया हैं, हं और स– इन दोनों अक्षरों के योग से हंस– मंत्र की उत्पत्ति हुई और इसी को योग शास्त्र में हंस मंत्र, सोऽहम मंत्र, अजपा मंत्र और अजपा गायत्री कहा जाता है।[94]

गोरखबानी में पंचेन्द्रिय निग्रह, शून्य मे मन के धारण करने तथा अजपाजाप करने पर बल दिया गया है :–

''अजपा जपै सुंनि मन धरै। पाँचो इन्द्री निग्रह करै।
ब्रह्य अगनि में होये काया। तास महादेव बंदे पाया''। [95]

एक अन्य स्थान पर भी गोरखबानी में आया है :–

''ऐसा जाप जपौ मन लाई। सोहं सोहं अजपा गाई''। [96]

कबीर तो उसी को अजपा मानते हैं, जिसमें हाथ और जीभ कोई क्रिया नहीं करते और मन अचंचल होकर पंगु हो जाता है :–

अजपा सुमिरन होत है सुन मंडल अस्थान।
कर जिव्वा तहाँ न चले मन पंगु तहं आन।। [97]

संत तुलसी साहब ने शून्य महल में अजपा जाप के लिए कहा है :–

अवगत अगम अपार धानी सत । तामे सुरत बसावो रे ।
त्रिकुटी मध्ये निरत सुरत कर । सार शब्द तहां जोवो रे ।परभाती, छं०७ से१०

प्रत्याहार का चौथा साधन 'प्रणवजप' है । यह जप संख्या मे एक लाख बीस हजार होने पर ही प्रत्याहार की सिद्धि होती है । साधों ने अपनी साधना में जप को तो बहुत अधिक महत्व दिया है, किन्तु उसकी संख्या के उल्लेखीकरण के सम्बन्ध में सभी साध समान रूप से मौन हैं । उन्होंने प्रणव जाप के स्थान पर 'अजपाजाप' को ही विशेष महत्व दिया है । इस अजपाजाप का वर्णन हम जप शीर्षक के अन्तर्गत पीछे कर चुके हैं । इनके अतिरिक्त अन्य साधनों का उल्लेख स्पष्ट रूप से साधों की कृतियों में नहीं मिलता है । यह बात दूसरी है कि बहुत खोज करने पर एकआध उदाहरण मिल जाये, किन्तु सामान्य रूप से उनका अभाव है ।

प्रत्याहार की सिद्धि का पाँचवाँ साधन मनोवृत्ति को श्वासोच्छ्वास के लय स्थान पर स्थिर करना है । साधों का 'शब्दसुरति-योग' प्रत्याहार के इसी साधना पर आधारित है । श्वासोच्छ्वास के उद्भव का स्थान सहस्रार माना जाता है । इस सहस्रार में ही मनोवृत्ति को स्थिर करना पड़ता है । शब्द सुरति-योग में भी सुरति को सहस्रारस्थ शब्द में लीन करना पड़ता है । उस दशा में शब्द-सुरति योग को हम प्रत्याहार सिद्धि का एक साधन मानते हैं । बहुत से साधों ने सुरति को मनोवृत्ति के रूप में वर्णन किया है । साध अनरददास के शब्दों में-

ऐसी विषिया धार है काम करै उपचार ।
सुरत सुहंगम चढ़ चले चित मन करै विचार ।।साध अनरददास, ध्यानवाना, छं०१२

साध रूपनारायण "परमहंस कोई शब्द सनेही ऊपर सुरत चढ़ावो हो"[1] के द्वारा उपर्युक्त कथन का ही समर्थन करते हैं ।

१-परभाती, ३।१

कछु भरोसा ना करै करनी को अभिमान ।
मालिक को बिसरै नहीं रहै उसी को ध्यान ।।
उलटी बरते सबन से भेद न काहू देत ।
कोई न जानै दूसरा नाम इसे बिधा लेत ।।
शब्द कहै नहीं खोल के कोई जानत नाहिं ।
बैठे लेटे डोलते रहै उसी के ठाहिं ।। ध्यान सागर, छं०सं० २०३से२०४

साधों का भक्ति-मार्ग योग के सामंजस्य से पूर्णता को प्राप्त है । साधों की भक्ति कर्मोन्मुखी है । उनकी दृष्टि में सच्चीभक्ति वही है जो मनसा-वाचा कर्मणा की जाती है । साधा अनरददास कहते हैं-

तन मन खोज सुरत लौ लाई । स्वांसा सुमरन हृदय आई ।।
-ध्यानबानी, छं०सं० १२०
मन समझाया मारग लाया । निश दिन ध्यान ध्यान चित लाया ।।
वही-सं० १२४

भक्ति और प्रपत्ति-

'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में प्रपत्ति-भावना का उल्लेख किया गया है ।[1] 'गीता' में भी भगवान् कृष्ण ने जीव को शरणागति द्वारा परित्राण का आश्वासन दिलाया है ।[2] कबीरदास आदि निर्गुण संत कवियों ने भी प्रभु की शरण को भक्त का आश्रय प्रतिपादित किया है ।[3] मध्यकालीन भक्ति में प्रपत्ति या शरणागति का सिद्धान्त बड़ा महत्वपूर्ण माना गया है । और भक्ति के प्रसंग में प्रपत्ति को निरन्तर उन्नीकित रखा गया है ।

साधों ने भी अपनी भक्ति-भावना के अन्तर्गत प्रपत्ति तत्व को स्थान दिया है और अपनी भक्ति में प्रपत्ति पर बहुत जोर दिया है । प्रपत्ति का शब्द अर्थ स्वीकरण

१-श्वेता० ६।१८
२-सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। गीता, अध्याय, १८।६६
३-क०ग्रं० पृ०१२२

करने की क्रिया को पूरक, उदरस्थ वायु को यथा-
प्राणायाम के तीन अंग पूरक कुम्भक और रेचक हैं । वायु के नासिका द्वारा उदरस्थ/
शक्ति रोकने की प्रक्रिया कुम्भक कहलाती है तथा भरी हुयी अशुद्ध वायु को नासिका द्वारा शनैः शनैः बाहर निकालने की क्रिया को रेचक की संज्ञा दी जाती है ।[1] कुम्भक के आठ अंग माने गये हैं । उनके नाम क्रमशः सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतकार, शीतली, भस्त्रिका, मूर्च्छा, भ्रामरी और प्लावना है ।[2] सन्त सुन्दरदास ने भी इन सबका उल्लेख किया है ।[3] संत कबीर ने प्राणायाम का वर्णन किया है ।[4] डा०रामकुमार वर्मा ने वायु-साधना से सम्बन्धित संत कबीर के कई सुन्दर उदाहरण उद्धृत किये हैं ।[5]

यह बात हम पहले कह चुके हैं कि साधु लोग शास्त्रीय पंडित नहीं हैं । अतः उनकी रचनाओं में प्राणायाम का शास्त्रीय विवेचन के अन्वेषकों को निश्चय ही निराश होना पड़ेगा । उन्होंने तो केवल मन व पवन साधन का उल्लेख कर प्राणायाम का संकेत मात्र किया है । साधु अमरदास जी कहते हैं-

मनपकड़े बिन सुरतन लागै । निश दिन मन ममता संग भागै ।
-ध्यानबानी, सं०१०२

सुखमन और पवन विचार के सुखमन रहै समाय ।
स्वासों सुमरन रच रहे अब गुर दरस दिखाय ।।वही, छं०२१२

साधु भवानीदासके शब्दों में —

बिन मन साधे जोग न पावै । चाहे जिसी व्याधि उपजावै ।
-नौ निधी, सं०१छं०२

1-दर्शनोपनिषद्, ६।१ व योगचिन्तामणि उपनिषद्-६५ से ६७
2-योगकुण्डल्युपनिषद् १।१८-२५, १।२६ व २८, १।३०-३१, १/३३व३८ तथा हठयोग
प्रदीपिका २।५३, २।६०, २।६७, २।६५ ।
3-डा०त्रिलोकीनारायण जी दीक्षित, 'सुन्दरदर्शन' पृ०३८
4-कबीर ग्र०पृ०१५७
5-कबीर का रहस्यवाद-१६३१, संस्करण पृ०

साधु मुग्नारायण पद्मासन के द्वारा पवन बन्धन की बात कहते हैं-

पदम आसन करो पवन बंधन करौ । शब्दझंकार त्रिकूटैमाही ।।रेखता८/२
निरत और सुरत मन पवन को बांधि ले । शब्द प्रकाश का अगम मेला ।।
-वही, १।५

अवगत अगम अपार धानी सत । तामे सुरत बसावों रे ।

त्रिकुटी मध्ये निरत सुख कर । सार शब्द तहां जोवो रे ।परभाती, छं०७ से१०

प्रत्याहार का चौथा साधन 'प्रणवजप' है । यहजप संख्या मे एक लाख बीस हजार होने पर ही प्रत्याहार की सिद्धि होती है । साधों ने अपनी साधना में जप को तो बहुत अधिक महत्व दियाहै, किन्तु उसकी संख्या के उल्लेखीकरण के सम्बन्ध में सभी साधु समान रूप से मौन हैं । उन्होंने प्रणव जाप के स्थान पर 'अजपाजाप' को ही विशेष महत्व दिया है । इस अजपाजाप का वर्णन हम जप शीर्षक के अन्तर्गत पीछे कर चुकेहैं । इनके अतिरिक्त अन्य साधनों का उल्लेख स्पष्ट रूप से साधों की कृतियों में नहीं मिलता है । यह बात दूसरी हैं कि बहुत खोज करने पर एकआध उदाहरण मिल जाये, किन्तु सामान्य रूप से उनका अभाव है ।

प्रत्याहार की सिद्धि का पाँचवाँ साधन मनोवृत्ति को श्वासोच्छ्वास के लय स्थान पर स्थिर करना है । साधों का 'शब्दसुरति-योग' प्रत्याहार के इसी साधना पर आधारित है । श्वासोच्छ्वास के ब्योद्भव का स्थान सहस्रार मानाजाता है । इस सहम्रारमें ही मनोवृत्ति को स्थिर करना पड़ता है । शब्द सुरति-योग में भी सुरति को सहम्रारस्थ शब्द में लीन करना पड़ताहै । उस दशा में शब्द-सुरति योग को हम प्रत्याहार सिद्धि का एक साधन मानते हैं । बहुत से साधों ने सुरति को मनोवृत्ति के रूप में वर्णन किया है । साधु अनरददास के शब्दों में-

ऐसी विधिया धार है काम करै उपचार ।

सुरत सुहंगम चढ़ चलै कित मन करै विचार ।।साधु अनरददास, ध्यानवानी, छं०१२

साधु भूपनारायण "परमहंस कोई शब्द सनेही ऊपर सुख चढ़ावो हो"[1] के द्वारा उपर्युक्त कथन का ही समर्थन करते हैं ।

1-परभाती, ११।

घट में सत को ब्रह्म निहारा । देह धारे का कारज सारा ।ध्यानबानी, छं०सं०१५१

शब्द की माया जिन ही जानी । जिनको घट में खोज पिछानी ।
घट खोजा जिन ही सुध पाई । बिन घट खोजा नहीं कमाई ।।
घट घट में बसे सदा अधिकारी । जिनको खोजो नर और नारी ।।
अधिक संत को खोजो नाहीं । तो बसत नहीं नौखंड के माही ।।
जिन साधा इस पिंड को खोजा ।जिनको त्रिम्ह आपना सूझा।।
वही, छं०सं० २१०-२१४

साधों की कृतियों में हमें वायु साधना के विविध स्वरूपों का दर्शन नहीं होता है । उन्होंने उसका शास्त्रीय निरूपण नहीं किया है, किन्तु फिर भी कतिपय साधों की रचनाओं में हमें उसके संकेत मिलते हैं । यहां पर कुछेक साधों की कृतियों से उद्धरण प्रस्तुत करेंगे । साध अमरददास कहते हैं-

सुखमन और पवन विचार के सुखमन रहे समाय ।
स्वांसा सुमरन रच रहे जब गुर दरस दिखाय ।।ध्यानबानी-छं०सं०२१२

साध मोतीलाल स्वांसा पकड़ कर नाम से सुरति लगाने की बात कहते हैं-

स्वांसा पकड़े नाम से सुरती रहे समाय । बैठे लेटे डोलते कभी बिसर नहीं जाय।
-ज्ञानसागर, छं०सं०१६२

साध भूपनारायण शर्मा पवन बंधान के विषय में कथन है-
पदम आसन करो पवन बंधान करो । शब्द झनकार त्रिम्हंड माही।।रेखता सं०५।२
निरत और सुरत पवन को बांधाले । शब्द प्रकाश का आगम भैला ।वही, ६।५

साधों की रचनाओं में हठयोग की नाड़ी-साधना का भी विस्तृत उल्लेख नहीं उपलब्ध है । न तो उन्होंने नाड़ियों की संख्या पर ही विचार किया है और न उनका शास्त्रीय विवेचन ही प्रस्तुत किया है । कतिपय साधों ने इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की वर्णना संकेत रूप में की है । सद्गुरु उदादास जी साधों को उपदेश देते हुये कहते हैं कि 'यदि तुम पिंड के भीतर अविनाशी 'सत-अविगत' का दर्शन करना चाहते हो तो जगत् की चाल का परित्याग कर दो । इस पिंड के भीतर गंगा, मथुरा, काशी, चन्द्र और सूर्य हैं । सद्गुरु जी ने `हठयोग प्रदीपिका` के आधार पर इड़ा नाड़ी को गंगा तथा सूर्य से पिंगला को तथा चन्द्र और काशी से दोनों के मिलन का संकेत किया है-

देखा चाहे पिंड का ख्याल । चाले नहीं जगत की चाल ।।
पिंड भीतर गंगा मथुरा काशी ।पिंड भीतर चांद सूरज अविनाशी।।
-नौ निद्धी-छं०सं० २१ व २२

साधों की हठयोग साधना में हठयौगिक मुद्राओं का कहीं पर भी सिद्धान्त रूप में कथन नहीं किया गया है । हां, ध्यान और धारणा विषयक दो एक मुद्राओं का कतिपय साधों ने संकेत भर किया है । योग के ग्रन्थों में ध्यान सम्बन्धी अनेक

सुरति का स्वरूप और अर्थ वास्तव में अनिर्वचनीय है । वह आत्मा, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, चित, जीव आदि सबसे विलक्षण होते हुये भी सब कुछ है । साधों का शब्द सुरति योग लय योग, मंत्रयोग और राजयोग का समन्वित रूप है । यहाँ पर

१- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० ४१८ २- विद्यापीठ त्रैमासिक पत्रिका भाग २, १९६५
३- कल्याण के योगांक में सुरतियोग शीर्षक लेख- ४- 'कबीर' नया संस्करण, पृ० २२४
५- वही, ६- कबीर का रहस्यवाद, परिशिष्ट पृ० २५१, व कबीर साहित्य की परख,
७- उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० २०४

साधों के शब्द सुरति योग की विचारणा हमारा अभिप्रेत है।

साध गरीबदास जी सुरति को शब्दात्मिका आत्मा का वाचक मानते हैं । उनका कथन है कि शब्दात्मक प्राण (जीव) को शब्दात्मक ब्रह्म (सत्त) में लीन करना चाहिये।

जो तुम सुरत सत्त सो लाओ । चौरासी में बहुरन न आओ । ब्रिम्हपरगास, छं० सं० १२

साध अमरददास सुरति शब्द को आत्मा का पर्यायवाची मानते हैं । वे कहते हैं- आद भक्ति जिन जानी भाई जिनको सुरत सत्त से लाई।। ध्यानवानी, छं० सं० ५८, शब्द पिछान सुरत लौ लाई। चारों जुग की संधा बताई।। वही, छं० सं० २८० । साध मोतीलाल ने भी सुरति शब्द को स्मृति अर्थ में प्रयुक्त किया है-

जिनकी सुरत नाम से लागी । ऐसा और नाहि बड़भागी।। ज्ञानसागर, छं० सं० १२

साध अमरददास जी ने सुरति को अन्तर्मुखी और निरति को बहिर्मुखी अर्थ में प्रयुक्त किया है । यहाँ सुरति शब्द रागात्मिका वृत्ति का वाचक है, क्योंकि सहज योग का प्राणभूत सिद्धान्त रागात्मिका वृत्ति को ही अन्तर्मुखी करके सहज ब्रह्म (सत- अविगत) में लीन करना है। निरति शब्द अरागात्मका (वैराग्य) वृत्ति का वाचक है । उनका कथन है-

सत्त से सुरत निरत मन राखो । सांचा वचन कुटमत मत भाखो।। वही, छं० सं० ८२

साधों के विविध प्रकार के लय योगों का यही संक्षिप्त ~~सं~~विवेचन है । यद्यपि लय- योगों में उन्हें पूरी आस्था थी, किन्तु अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उन्होंने उसका भी सहजीकरण किया है । यह सहजीकरण प्रेम या भक्ति भाव के द्वारा किया गया है । यदि हम उनके लय- योगों को भाव- भक्ति से विशिष्ट कर दें तो वही सहज योग की संज्ञा धारण कर लेगा । आगे हम उनके इससहज योग पर थोड़ा विस्तार के साथ विचारणा करेंगे ।

सहज- योग-

ऊपर हम कह चुके हैं कि साधों की सामान्य प्रवृत्ति जटिलता से सहज की ओर अग्रसर रही है । योग क्षेत्र में उनकी इस वृत्ति का विकास बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ता है । उन्होंने हठयोग, लय- योग, मंत्रयोग आदि सबका सहजीकरण करके उनको सहजयोग में पर्यवसित करने की चेष्टा की है । साधों की इस सहज योग- साधना पर उनकी कृतियों में अच्छा प्रकाश पड़ता है । यहाँ पर उनकी सहज साधना का स्वरूप संकेतित कर देना अनुपयुक्त न होगा।

सहज- योग साधों का अपना सिद्धान्त पक्ष रहा है। वास्तव में उनका सहज योग, राजयोग और राजाधिराज योग का मिश्रित रूप है । साध कैसे भी साधना सहज होनी चाहिये। प्रतिदिन के जीवन के साथ चरम साधना का कोई विरोध न होना चाहिये ।

यौगिक क्रियाओं में अनुरक्त रहने वाला योगी कहलाता है। गीता
योगी ' शब्द का प्रयोग नौ अर्थों में हुआ है। स्वामी हरिदास जी ने योगी
की परिभाषा देते हुये कहा है कि:-

जोगी चाले ऐसै माइ, सुनि सहर की' भिष्या' षाइ ।
तन मन ' तौलि ' अकासा चढ़ै, सौ जोगी मरवै नहि डरै ।।
ना ग्रह करै न वन मै रहै, ' पांचू '' करम ' सहज ही दहै ।
जौ' गिरही' तौ चित्त उदार, वैरागी तौ मन कूं मार ।। १

इन पंक्तियों में योगी का बड़ा निर्मल एवं स्पृहणीय रूप वर्णित है
ऊपर कहा जा चुका है कि निरंजनी-कवियों ने योग (हठयोग) का
एवं विस्तृत वर्णन नही किया है। फिर भी उन्होंने योग की प्रक्रिया का व
स्थान-स्थान पर किया है। हरिदास ने एक पद में बहुत संक्षिप्त रूप में योग
साधना का वर्णन किया है। प्रस्तुत पद यहां पर उद्धृत किया जाता है:-

अवधू! बेलि आंषि उफांणी,
पैली आंषि सहज मैं षूली, याह सतगुर की सहनांणी ।
पाइक पांच पौलि मैं अटक्या, ग्यांन गुफा मैं आया ।
गिगन मंडल मैं आसण अवधू, धुनि मैं ध्यान लगाया ।
ऊंधा कंवल लुलटि करि सूधा, अनहद सबद उचारा ।
गंग जमन समि रवि ससि मेला, सहजि भया मतिवारा ।
गम मैं अगम अगम मैं गम है, मन फिरि मन ही समाना ।
जन हरीदास कछु कहत न आवै, अब हम भया दिवाना । २

इसी प्रकार सेवादास ने भी अपने ' गुरू मंत्र जोग ग्रन्थ ' में योग की
प्रक्रिया का वर्णन करते हुये कहा है:-

आपा गर्व गुमान अहंकारा, ए सब तजै भजै कर तारा ।
जोग मूल गहि तजै पसारा, तब जग तिरत न लगै बारा ।
सास उसासे नांव संभारे, गुरू गोविन्द हृदय मैं धारे ।
गुरू गोविंद की आज्ञा से ही, सास उसास संभाल सनेही ।
सास संभाल तोहि निकट बतावै, बाहरि भरम भूलि मति जावै ।
नामी नासाविच पन्थ गही जै, प्रेम पियाला भरि भरि पीजे ।
जब काल जाल लागै नहि कोई, हरिजन हरिभज निरभै होई ।

१- म०ह० की बा०--पृ० २२६।६-७   २- म० ह० की बा० -पृ० २१०,२११।५

मन अर पवन सुरति भई सामिल, त्रिवेणी तट फूले।
पॉचो भई पच्चीसो अस्थिर, विषय वासना भूले।
भगति हेत उपदेश दॉव देहि, कुरुक्षेत्र भई काया।
हरिदास हरि तीर्थ परस्या, बहुरि न पूठा आया।[19]

इनका कहना है कि भक्त जब हरि प्रेम मे विरह के ऑसू बहाते है तो वे गगा जल से पवित्र होते है, जिनमे स्नान करके भक्त शुद्ध हो जाता है। हृदय कमल का अमृत–स्रोत बहने लगता है, पलको से प्रेम के ऑसू झरने लगते है, जिनसे सारे पाप कर्म धुल जाते है। भक्त कर्म–फल से मुक्त हो जाता है। जब त्रिकुटी मे मन, पवन तथा सुरति की तारी लगती है तो स्थिरता आ जाती है। यह वाणी ही पवित्र कुरुक्षेत्र तीर्थ बन जाती है, उसे पुन ससार मे नही आना पडता।

सत जैतराम जीव और ब्रह्म के ऐक्य की चर्चा करते हुए स्वॉस की साधना की बात कहते है–

स्वॉस सभालो रैन दिन, जो तुझ मिलना पीव।
स्वॉस सभाले ब्रह्म है, बिना सभाले जीव।।[20]

इनका मानना है कि प्राणायाम साधने पर ही सुरति शब्द योग सिद्ध होता है। जीव और ब्रह्म के ऐक्य के लिए प्राणायाम साधना पर ये बल देते है। इसी से सुरति शब्द पर टिकती है।

इस प्रकार एक तथ्य यह भी सामने आया है कि सतो की 'सुरति शब्द योग' की साधना कही–कही योग की क्रियाओ का सहारा भी लेती है। सत राम रूप जी ने निम्नलिखित पद मे इस साधना का खुलासा किया है–

---

19 हरिदास बाणी, पृ॰ 93, पद–5

20 ग्रथ साहिब, श्री जैतराम जी की बाणी, पृ॰ 36, दोहा–1

यहाँ हम एक तथ्य प्रतिपादित करना चाहते है कि 'सुरत' शब्द योग की चर्चा केवल नितानद ही नही करते है बल्कि सभी सतो की साधना–पद्धति यही है। इससे एक बात तो निर्विवाद रूप से सामने आती है कि सत चाहे उत्तर का हो चाहे दक्षिण का, पूर्व का हो चाहे पश्चिम का, उसका साधना–पथ समान ही रहेगा। इसलिए जिस सुरत शब्द योग की चर्चा सत कवि नितानद जी करते है, वह केवल उन्ही की साधना पद्धति नही है, बल्कि उनके जैसे सभी सतो की साधना पद्धति भी यही है।

---

22 ग्रथ साहिब, श्री गरीबदास जी की बाणी, पृ॰ 806

इस साधना पद्धति को कभी सहज–साधना कहा गया तो कभी सुरत शब्द योग कहा गया तो कभी उलट वेद तो कभी उलटी चाल कहा गया है। मूलत यह मन प्राण और शब्द का मेला है। शब्द मूलत ब्रह्म है। इसी शब्द मे ब्रह्म, परमात्मा, परमपिता, पति, स्वामी, सखा सभी कुछ समाहित है। मन को और श्वास को उस शब्द से जोडना है जो शब्द उसे गुरु से मिला है। इसी ही को कही–कही नाम कहा गया है। अत मन को और प्राणवायु (श्वास) को शब्द से जोड देना ही सुरत शब्द योग है। जब प्रतिश्वास उस नाम से (राम से, पति से, परमात्मा से, सखा से) जुड जाता है तो साधक और साध्य एक हो जाता है। लेकिन इसमे इन्होने रूपधारी गुरु की आवश्यकता पर बल दिया है। वे मानते है कि गुरु ही अपने शिष्य के मन को शब्द से जोडता है। यहाँ ध्यान को प्रभु मे लगाना 'सुरति' है और ध्यान को ससार के प्रलोभनो से हटाना 'निरति' है। सुरति–निरति का मेला ही एक प्रकार से सहज–साधना है। इसमे सहज ही मन ससार से हटकर ईश्वर मे लगता है। धीरे–धीरे अभ्यास से यह क्रिया साँस–साँस से, उठते–बैठते, जागते–सोते, चलते–फिरते होती रहती है और साधक परमपिता परमात्मा के गुणो से सराबोर होता रहता है।

इस प्रकार नितानद जी की साधना–पद्धति अन्य सतो के समान ही 'सुरत शब्द योग' मानी जा सकती है। इसी के माध्यम से उनका परमात्मा से साक्षात्कार होना दर्शाया गया है। इस साधना के सकेत उन्होने अपनी वाणी मे दिए है, जिनका यथा–स्थान वर्णन करके हमने उनकी इस साधना–पद्धति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

°°°°°°°°°°°°°°°°°°°°°°°

भक्ति सागर में चरणदास जी ने 'सोहम' और 'अजपा जाप' के रहस्य समझाते हुए कुछ और भी बेहद गहरी बातें कही हैं, जो साधक को आंतरिक यात्रा में मदद करती हैं:

१. प्राण और अपान वायु का संबंध

इस साधना में सांसों की गति का बहुत महत्व है। जब हम सांस भीतर खींचते हैं, तो **'सो'** की ध्वनि होती है, और जब सांस बाहर छोड़ते हैं, तो **'हं'** (हम) की ध्वनि होती है। यही स्वाभाविक प्रक्रिया मिलकर **'सोऽहं'** (वह ब्रह्म मैं हूँ) का अनवरत जाप बनती है, जो शरीर में हर समय बिना रुके चलता रहता है।

२. कुंडलिनी और चक्रों का जागरण

- **मन का लय होना:** चरणदास जी के अनुसार, जब साधक अपनी सुरति (चेतना) को इस अजपा जाप पर टिका देता है, तो चंचल मन धीरे-धीरे शांत होकर नाभि चक्र से उठकर हृदय और आज्ञा चक्र की ओर बढ़ने लगता है।
- **अनहद नाद की अनुभूति:** जैसे-जैसे 'सोहम' का ध्यान गहरा होता है, साधक को शरीर के भीतर एक दिव्य ध्वनि सुनाई देने लगती है, जिसे **'अनहद नाद'** (बिना किसी आघात के उत्पन्न होने वाली ध्वनि) कहा जाता है। यह नाद साधक को सीधे परमात्मा से जोड़ता है।

३. विकारों का नाश और परम शांति

इस निरंतर जाप से केवल आध्यात्मिक प्रगति ही नहीं होती, बल्कि

अभ्यास करते रहने से सफलता अवश्य मिलती है। संकल्प-विकल्प-रहित मन से बहुत दिनों तक निरन्तर जप करते रहने से "जप-सिद्ध" हो जाता है। फलस्वरूप कुंसकट तो मिटते ही हैं, साधक को अणिमादिक सिद्धियाँ भी मिलने लगती हैं।

जपहिं नामु जन आग्त भारी। मिटहिं कुंसकट होहिं सुखारी॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अणिमादिक पाएँ॥

—रामचरितमानस

एकाग्रपूर्वक जाप हो जाय, तो मनोविकार और दुर्विचार दूर हो जाते हैं। मानस -के बारे में संत दूलन दासजी महाराज ने बड़ा ही सुन्दर कहा है।

कोई विरला यहि विधि नाम कहै।
मंत्र अमोल नाम दुइ अच्छर, बिन रसना रट लागि रहै॥१॥
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सूरति धरनि दृढ़ाइ गहै॥२॥
दिन औ रात रहै सुधि लागी, यहि माला यहि सुमिरन है॥३॥
जन दूलन सतगुरन बतायो, ताकी नाव पार निबहै॥४॥

वर्णित त्रिविध जापों के अतिरिक्त एक प्रकार का जप और होता है। इसक स्थान मानस-जप से निम्न; किन्तु उपांशु जप से उच्चा है। इसमें जप क्रिया को करते हुए श्वसन पर ध्यान रखना पड़ता है। श्वसन-ग्रहण में 'सो' और त्यागा में 'हं' की भावना करते हैं। इस प्रकार सोऽहम् का जप किया जाता है। संत सुन्दर दासजी महाराज कहते हैं—

श्वासोश्वास राति दिन सोहं सोहं होइ जाप, याहि माला निसि दिन दृढ़ कौ धरतु है।
देह परे इन्द्रिन परे अंतःकरण परे, एक ही अखण्ड जाप ताप कूं हरतु है॥
काठ की रूद्राक्ष की रु सूत हू की माला और, इनके फिराये कछु कारज सरतु है।
सुन्दर कहत एक आत्मा अखण्ड रूप, आपको भजन सो तो आपही करतु है॥

श्वसन-जाप के सम्बन्ध में एक अन्य महात्मा का कथन है—

"छिन-छिन पल-पल घड़ी-घड़ी नर, श्वासा से सुमिरो हरी-हरी।"

साधारणतया दिन-रात के चौबीस घंटो में इक्कीस हजार छह सौ श्वास निःसृता होतो हैं। बाबा गोरखनाथ जी के कथनानुसार यदि कोई प्रत्येक श्वास में जप क्रिया अक्षुण्ण रूप से करता रहे, तो उसकोा स्वतः अनहद नाद की अनुभूति हो जाएगी। यथा—

"छः सै सहस इकीसो जाप। अनहद उपजै आपै आप॥" आदि।

जप के विषय में संत दादू दयाल जी ने उदारता पूर्वक कहा है—

"दादू सिरजन हार के, केते नाम अनन्त।
चित भावै सो लीजिये, यों सुमिरै साधू संत॥"

मानस-ध्यान—मानस जप के बाद साधक को मानस-ध्यान करना चाहिए। अपने इष्ट का मनोमय रूप बनाकर उस रूप पर मन को टिकाकर मन-ही-मन ध्यान करने को मानस-ध्यान कहते हैं। उसकी यह महिमा है कि सद्‌गुरु का मानस-ध्यान ठीक-ठीक बनने पर कामना की पूर्ति और साधना में प्रगति होती है। गुरु नानकदेवजी महाराज कहते हैं—

"सतगुरु की मूरति हिरदै बसाए। जो ईछै सोई फलु पाए॥"

एकलव्य की कथा इसका बड़ा इच्छा उदाहरण है। एकलव्य द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या की शिक्षा लेने गया था। आचार्य द्रोण उसे शिक्ष नहीं दी; किन्तु एकलव्य ने उन्हें गुरु मान लिया

अथवा

अपने अन्दर तो प्रकाश है ही, केवल देखने का यत्न करना हैं दृष्टि की दायीं धार और बायीं धार में रजोगुणी और तमोगुणी वृत्ति रहती है। रजोगुणी वृत्ति में चंचलता रहती है और तमोगुणी वृत्ति में मूढ़ता रहती है। इन दोनों से अपने को समेटकर बीच में रखने से सतोगुणी वृत्ति होगी तब प्रकाश मिलेगा, प्रभु पाने का पथ मिलेगा। एक महात्मा का कथन है–

बायें इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला, रजस्तमोगुणे करितेछे खेला।
मद्धे सत्त्वगुणे सुषुम्ना विमला, धर-धर तारे सादरे।।

जबतक सतोगुणी वृत्ति नहीं होगी, विन्दु नहीं झलकेगा, शून्य-ध्यान नहीं होगा, रास्ता नहीं मिलेगा। इसीलिए संत दादू दयाल जी महाराज ने कहा है–

सहज सुन्नि मन राखिये, इन दुन्यूँ के मंहि।
लय समाधि रस पीजिये, तहाँ काल भय नाहिं।।

और भी–

इंगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत शिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठ गगन पर, सहज उठै झनकार।।

–संत गुलाल साहब

इस दृष्टि-योग की साधना का उल्लेख श्रीमद्भागवत में भी है। उद्धव जी के पूछने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकों दृष्टियोग की विधि बतायी है।

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्र कृतेक्षण।।

अर्थात् सुखपूर्वक सम आसन से शरीर को सीधाकर बैठे, हाथों को तर-ऊपर गोद में रखे और दृष्टि को नासिका के आगे स्थिर करे। पुनः श्रीमद्भागवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान भक्त अर्जुन से कहते हैं–

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्वाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरं भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ।।५।२७।।

अर्थात् बाहर के विषय भोगों को बाहर ही त्याग कर नेत्रों की दृष्टि को भृकुटि के बीच में स्थिर करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके ध्यानयोगी सदा मुक्त रहता है। पुनः कहते हैं–

समं काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्व दिशश्चानवलोकयन्।।६।१३।।

धड़, गर्दन और सिर को एक सीध में अचल एवं स्थिर रखकर दिशाओं को नहीं देखते हुए दृष्टि को नासिकाग्र पर जमाएँ।

महात्मा धरनीदासजी ने नासिकाग्र-ध्यान और उसके फल को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

धरनी निर्मल नासिका, निरखो नैन के कोर।
सहजे चन्दा ऊगिहैं, भवन होय उजियोर।।

संत कबीर साहब ने कहा है–

मुरशिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सफेद तिलों बीच तारा अविगत अलख रबी है।।

का जो स्वरूप दिखाई देता है, वह भी हृदय की रागात्मक वृत्ति को ही दर्शाता है। योगात्मक भक्ति–साधना का उद्देश्य भी अपने ब्रह्म का अनुग्रह प्राप्त करके ब्रह्ममय ही हो जाना है। श्री बेनामी जी की भक्ति चाहे जिन भी पदों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हो, उसकी परिणति ब्रह्म में एकाकार होने की ही रहती है। इसमें किसी काम को साधने की प्रवृत्ति कत्तई नहीं है। ये लिखते हैं:–

"सतगुरू सोवे सुन्य में, अनहदपुर के बीच।
सुरत निरत कर खोज ले, उलट पवन दृग मीच।।[56]

अतः योगात्मक साधना के पदों से भी इनकी निष्काम भक्ति के ही दर्शन होते हैं। सर्वप्रथम जीवात्मा अपना यह दृढ़ मत कर लेती है कि वह परमात्मा से भिन्न है ही नहीं। जब दोनों अद्वैत हैं, तो फिर माया की उपस्थिति के कारण जो द्वैतभाव है, उसे समाप्त हो जाना चाहिए। यही प्रेरणा इनकी भक्ति का मूल स्त्रोत है। 'आरती–अद्वैतज्ञान' में श्री बेनामी जी ने अद्वैत दर्शनाधारित भक्ति को ही प्रकट किया है:–

"शब्द ज्ञान अंजन दिया, नैना लिया सार।
ज्ञान अद्वैत प्रगट किया, गुरूचरण चित्त धार।।"[57]

अपनी प्रेमा शक्ति में इन्होंने ईश्वर को अजपा मानकर ही अपना जाप प्रारम्भ किया है। अपनी इस भक्ति के लिए उन्हें किसी बाह्य पदार्थ अथवा वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं है. प्रभु से अगाध प्रेम की भावना जो है। इनका आने–जाने वाला प्रत्येक श्वास ही उस अजपा का जाप करता है। इनका प्रत्येक श्वास उस परमतत्त्व को समर्पित है। इनका कथन है:–

"स्वासां की कर सुमरनी, कर अजपा को जाप।
परमतत्त्व का ध्यान धर, सोहंग आपै आप।।"[58]

यह इनकी परा भक्ति की ही महिमा है कि इन्होंने अपने अज्ञात अनदेखे प्रीतम के ही साथ अपनी होली खेलना चाहते हैं:–

"होरी खेलन दैरी ननदिया"
जो तू कहेगी सोई मैं करूँगी, अनहद की धुन लैरी ननदिया।।

शब्द में ध्यानमग्न हो जाना शब्द सूरत योग की अवस्था मानी जाती है। शब्द सूरत योग साधना–पद्धति का अनिवार्य तत्त्व बनकर सामने आया है। शब्द सूरत की इस साधना में बेनामी जी ने 'ओम्' को भी पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। यह ओमकार ब्रह्म का द्योतक एवं जीवात्मा की मुक्ति का साधन है। इन्होंने लिखा है:–

"जै तोको अब ब्राह्मण होना, सतगुरु ने यों फरमाई।
ऊँकार का सुमरण करले, प्राणायाम साधो भाई।।
तीन गुणन को करो इक्टठे, एक ऊँकार रहो भाई।
पाँच तत्त्व का बना पुतला, जामे ऊँकार है भाई।।"[24]

'शब्द' यदि ओमकार एवं ब्रह्म का पर्याय है, तो सूरति मनुष्य की चेतना का नाम है अर्थात् सहज भाव से ब्रह्म की साधना में लीन रहना ही शब्द सूरत योग है। पण्डित परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है –"सूरति हमारे जीव का वह निर्मल रूप है, जिसमें हमारे मूल सत्य का प्रतिबिम्ब बराबर झलकता है।"[25] डॉ. त्रिगुणायत के अनुसार, "वास्तव में सूरति को बहिर्मुखी आत्मा कह सकते हैं अन्तर्मुखी प्रवृत्ति नहीं। क्योंकि अपने शब्द सूरत योग में बहिर्मुखी आत्मा को शून्यरूपी शब्द में लीन करने का उपदेश दिया है। यदि सूरति का अर्थ अन्तर्मुखी वृत्ति होता तो वे अपनी साधना में सुरति को अन्तर्मुखी करने का आदेश नहीं देते।"[26] ईश्वर के प्रति निरंतर चेतना दृष्टि सुरति का स्वरूप धारण करती चली गई है। यह योग–साधना ईश्वर के साक्षात् पर ही सम्पन्न होती है। वे कहते हैं:–

"सुरति स्वास लगाय, मूल के बन्ध लगाय के।
दोनों नैंन मिलाय, सुरत शब्द भेलै करो।।
सहजे सुरत समाय, गुप्त ध्यान उर में धरो।"[27]

साधना की जिस पद्धति को बेनामी जी ने ग्रहण किया, वह हठयोग साधना का सहज रूप है। साधना मार्ग पर मनुष्य तभी चल पाता है जब उसका मन विषय–वासनाओं के मोह जाल को तोड़ सके। बेनामी जी एक पूर्ण योगी पुरुष थे। इन्होंने अपनी साधना को आगे बढ़ाने हेतु सांसारिक एंव विषयी जीवन का पूर्णतः परित्याग कर दिया। बेनामी जी भी साधना मार्ग पर तभी चल सके, जब उन्होंने विषयी

॥ शब्द ३ ॥

कोइ बिरला यहि बिधि नाम कहै ॥ टेक ॥
मंत्र अमोल नाम दुइ अच्छर, बिनु रसना रट लागि रहै ॥१॥
होठ न डोलै जीभ न बोलै, सूरत धरनि दिढ़ाइ गहै ॥२॥
दिन औ राति रहै सुधि लागी, यह माला यह सुमिरन है ॥३॥
जन दूलन सत गुरन बतायो, ताकी नाव पार निबहै ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

रहु मन नाम की डोरि सँभारे ।
धृग जीवन नर नाम भजन बिनु, सब गुन वृथा तुम्हारे ॥ १ ॥
पाँच पचीसो के मद माते, निस दिन साँझ सकारे ।
बंदी-छोर नाम सुमिरन बिनु, जन्म पदारथ हारे ॥ २ ॥
अजहुँ चेत करु हेत नाम तेँ, गज गनिका जिन्ह तारे ।
चाखि नाम रस मस्त मगन हूँ, बैठहु गगन दुवारे ॥ ३ ॥
यह कलि काल उपाइ अवर नहिँ, बनि है नाम पुकारे ।
जगजीवन साईं के चरनन, लागे दास दुलारे ॥ ४ ॥

॥ शब्द ५ ॥

यह नइया डगमगि नाम बिना । छाड़ ले सत्त नाम रटना ॥१॥
इत उत भौजल अगम घना । सहै जरूर पार तरना ॥२॥
मैं निगुनी गुन एको नाहीं । माँझ धार नहिँ कोउ अपना ॥३॥
दिहेउँ सीस सतगुरु चरना । नाम अधार है दुलन जना ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

रहु सोहँ राम नाम रट लाई ।
जाहि रटहु तुम नाम अच्छर दुइ, जौनी बिधि रटि जाई ॥१॥
राम नाम तुम रटहु निरंतर, खोजु न जतन उपाई
मानि परत मोहिँ भजन पंथ की,

नाम महिमा ।

दुलनदास जिन के हृदय, नाम बास जो आय ।
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि बिचारी, ताहि छाड़ि कहँ जाय ॥१॥
गावै सूरत सुन्दरी, बैठी सत अस्थान ।
जन दूलन मन मोहिनी, नाम सुरंगी तान ॥ २ ॥
दूलन यहि जग जनमि कै, हर दम रटना नाम ।
केवल नाम सनेह बिनु, जन्म समूह[1] हराम ॥ ३ ॥
स्वास पलक माँ नाम भजु, वृथा स्वास जिनि खोउ ।
दूलन ऐसी स्वास से, आवन होउ न होउ ॥ ४ ॥
स्वास पलक माँ जातु है, पलकहिँ माँ फिरि आउ ।
दूलन ऐसी स्वास से, सुमिरि सुमिरि रट लाउ ॥ ५ ॥
डौंडी[2] बाजै नाम की, बरन भेष की नाहिँ ।
दूलनदास बिचारि अस, नाम रटहु मन माहिँ ॥ ६ ॥
रसना रटि जेहि लागिगे, चाखि भयो मस्तान ।
दूलन पायो परम पद, निरखि भयो निर्बान ॥ ७ ॥
पैठेउँ मन होइ मरजिया, ढूँढ़ेउँ दिल दरियाउ ।
दूलन नाम रतन्न काँ, भागन कोउ जन पाउ ॥ ८ ॥
सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिँ ।
दुलनदास बिस्वास भजु, साहिब बहिरा नाहिँ ॥ ९ ॥
चितवन नीची ऊँच मन, नामहिँ जिकिर लगाय ।
दूलन सूझै परम पद, अंधकार मिटि जाय ॥ १० ॥

(१) समस्त । (२) ढिंढोरा ।

साधा अमरददास के शब्दों में-

बिन सतगुर मन न लहै कोटिक करो उपाय ।

निश दिन मन भटकत फिरै और कछू न दांव ॥१

किन्तु जब साधक सद्गुरु की शिक्षा में मन लगाकर प्रत्येक श्वास पर 'सत-अविगत' का स्मरण करता हुआ मन की सुरति को उसी में लगा देता है, तब मन के करोड़ों विकार नष्ट हो जाते हैं-

गुरु कीसीख लगा मन लीना । स्वासा से सत सुमरन कीना ।२

सत सुमरन से सुरत समोवै । कोट विकार इस मन के खोवै ।।३

साधा करन जी 'रिज हिंज रोग कटा इस मन का तो ऐसी बताई गुरु बैदी'[4] के द्वारा गुरु वैद्य से मन के विकार रूपी रोग के नष्ट होने की बात कह कर मन से परित्राण पाने का ही प्रतिपादन करते हैं । साधा अमरददास भी 'सहज भाव से करो अँदेशा । मन से मारो भरम अँदेसा ।।'[5] के द्वारा मन से भ्रम और संदेह को मारने की बात कहकर मन से परित्राण पाने का ही उपाय निर्दिष्ट करते हैं । साधा मोतीलाल मन को विषय-वासनाओं से हटाकर उज्ज्वल करने से मोक्षोपलब्धि की बात कहकर मन से परित्राण पाने का उपाय बतलाते हैं-

जिन मन को उज्जलकीना । जब मुक्त पदारथ लीना ।।६

साधा तेजराम 'सत शब्द का पिरा मसकला भाई मैल कटा इस मन का ।'[7] के द्वारा सत अविगत की भक्ति से मन के विकार रूपी मैल के कटने की बात कहकर मन से परित्राण पाने के उपाय का प्रतिपादन करते हैं ।

उपर्युक्त पंक्तियों में साधों की मन सम्बन्धी धारणा प्रतिपादित की गयी है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका मन-वर्णन उपनिषद्, गीता, एवं निर्गुण काव्य से बड़ा साम्य रखता है । वस्तुतः साधों का मन-वर्णन परम्परा गत मन-वर्णन के अनुकूल ही है ।

१-ध्यान बानी-छं० सं० २२७

२-वही, २२८

३-वही, २३०

४-निरबानग्यान, सं० बानी ६११

५-ध्यान बानी, छं० सं० २०६

६-'ग्यानसागर', छं० सं० ३४८

७-निरबान ग्यान, बानी सं० ५७।६

भक्ति के पोषक साधनों में साधों ने नाम, जप और स्मरण की भी चर्चा की है। नारद-भक्ति-सूत्र में इन्हें विशेष महत्व दिया गया है। सुमिरन, भक्ति और धर्म का सार है। सुमिरन के अन्तर्गत `अजपा जाप` भी है। प्रत्येक श्वास के आवागमन में साध्य के साथ अद्वैत भावना करना ही `अजपाजाप` है। अजपाजाप करते-करते साधक स्वयं साध्य स्वरूप हो जाता है।

1- ज्ञान सागर, छं०सं० 104-105

यद्यपि भक्तों ने अनन्त के नाम असंख्य बताये हैं, किन्तु साधों ने सबसे बढ़कर सुमिरन के लिये `सत अविगत` को ही माना है और इसे ही स्वीकारा है। उन्होंने सबके लिये यही उपदेश दिया है कि `सत नाम` का सदैव स्मरण करो। 'निरबानज्ञान' में साधों ने इसका बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।

परन्तु अन्य कई सम्प्रदायों के विपरीत साध लोग नाम स्मरण का अर्थ कोई बाहरी साधना नहीं समझते और न इसे किन्हीं पवित्र शब्दों की भाँति मंत्रवत दुहराने को ही सब कुछ मानते हैं। ऐसे मांत्रिक दुहराने के प्रति उन्हें बड़ी घृणा है। वे तो हृदय में ही नाम स्मरण की बात कहते हैं-

कोई साध हिरदे नाम धारे।

ऋधि नौनिध कहा आपरी तरवत तार फिरे॥1

साध मोतीलाल ने नाम-स्मरण की विधि बड़े सुन्दर तथा सहज ढंग से बतलाई है। वे इस संदर्भ में कहते हैं कि 'रात-दिन नाम के साथ स्वांस निकालना चाहिये तथा शब्द और सुरति दोनों को समान रूप में रखकर स्वांस के साथ नाम के रस (आनन्द) का आस्वादन करना चाहिये

काढ़े स्वांस नाम के संगा। रैन दिवस यह लागे रंगा॥

शब्द सुरत दोउ सम कर राखो। स्वांसा पकड़ नाम रस चाखो॥2

नाम सुमिरन तीन प्रकार का होता है 1- जाप जो कि बाह्य क्रिया होती है (2) अजपाजाप 3- अनाहत जिसके द्वारा साधक अपनी आत्मा के गूढ़तम अंश में प्रवेश करता है, जहाँ पर अपने आपकी पहिचान के सहारे वह सभी स्थितियों को पार कर अन्त में कारणातीत हो जाता है। उपर्युक्त उद्धरणों में इसके पर्याप्त उदाहरण देखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाम सुमिरन जिसे हम मंत्र-योग भी कह सकते हैं; सुरति शब्द योग का ही एक दूसरा रूप है और इस प्रकार वह सारे योगों का भी योग है। भक्ति-योग, राज-योग/मंत्र-योग कर्म-योग, लय-योग, हठ-योग एवं ज्ञानयोग भी उसी के विविध रूपान्तर कहे जा सकते हैं। सभी के आधारभूत सिद्धान्त इसके भीतर आ जाते हैं। अपनी प्रारम्भिक दशा में यह मंत्रयोग है जो राजयोग द्वारा अनुप्राणित रहा करता है और अपनी अन्तिम दशा में यही ध्यान योग है जिसमें उस निर्विकार के वास्तविक स्वरूप की अनुभूति प्राप्त होती है। इसके लिये उस निरपेक्ष परमात्मा की सत्ता में अपनी सत्ता का भान करना पड़ता है।

1- निरबानज्ञान में बानी सं० 47 2- ज्ञानसागर, छं०सं० 150

कहैं कबीर सुनो हो धर्मनि, छाँड़ो खल के आसा।
अमृत भोजन हंसा पावे, बैठि पुरुष के पासा॥ ५

॥ शब्द २॥

केहि बिधि प्रीतम पाइये, गुरु राह बतावो॥ टेक॥
अरध उरध बिच बागिया, तहँ सुरति लगावो।
अष्ट कँवल दल पाँखुरी, उन को बिहसावो[१]॥ १॥
इँगला पिँगला दोइ है, त्रिकुटी मन लावो।
आपन रैयत बसि करो, बैठे अदल चलावो॥ २॥
छज्जा ऊपर बैठि कै, फिर संख बजावो।
सुखमनि हीरा सोधि कै, बाहर चढ़ि आवो॥ ३॥
कहैं कबीर धर्मदास से, पद गहु निरबाना।
मनुष जनम दुर्लभ अहै, तन तपन बुझावो॥ ४॥

॥ शब्द ३॥

चेतो हंसा चेतो कोई, अगम सँदेसा लाये हो।
हम हैं हजूरी अविगति ब्रह्म के, हंस उबारन आये हो॥ १॥
सही छाप सूरति मुख बानी, जंग में आनि सुनाये हो।
जीव दुखित देखा संसारा, तेहि कारन पठवाये हो॥ २॥
आवागवन में सब जिव अरुझे, इस्थिर घर नहिं पाये हो।
आदि अंत इस्थिर लखावन को, समरथ मोहिं पठाये हो॥ ३॥
अंडज खानी माया बनाई, पिंडज ब्रह्मा सिरजी हो।
उष्मज खानि बिष्नु जो कीन्ही, अस्थावर सिव साजी हो॥ ४॥
ये बटमार भये या जिव के, सबै राखि भरमाई हो।
चेतन अंस पुरुष की भाई, चारो माहिँ भुआई हो॥ ५॥

---

(१) खिलावो।

॥ शब्द ११ ॥

सब्द सिँहासन पाट मेँ, तुम हंसा बैठो जाई हो ॥ टेक ।
कौन नाम मुक्तामनी हो, कौन नाम वे हंस ।
कौन नाम वे पुरुष हैँ हो, कौन नाम वे अंस ॥ १
अपर नाम मुक्तामनी हो, अग्र नाम वे हंस ।
ज्ञान नाम वे पुरुष हैँ हो, सुरति नाम वे अंस ॥ २

(१) एक लिपि में "अपार" की जगह "पुरान" है ।

मूल दीप निज दीप है हो, तुमहिँ सुनो हम पाँह ।
बैठि हंस उबारिये हो, सोहंगम के बाँह ॥ ३ ॥
जम्बू दीप के हंसा भाई, पाँजी बैठो आय ।
कहैँ कबीर धर्मदास से, तुम लावो बाँह चढ़ाय ॥ ४ ॥

॥ शब्द १२ ॥

बुढ़िया ने काता सूत, जोलहवा ने बीना हो ।
दरजी ने टुक टुक कीन्ह, दरद नहिँ जाना हो ॥ १ ॥
भेड़ी चरावत बाघ, मूस रखवारा हो ।
मेँगुची[1] ने बाँधा ताल, सिंह के टाटा हो ॥ २ ॥
गोड़िया[2] पसारा जाल, ऊँट एक बाझा हो ।
दुलहिनि के सिर मौर, बिलारी साजा हो ॥ ३ ॥
भाँड़ा गढ़त कोँहार, मास दस लागा हो ।
छिनहिँ मेँ जात बिलाइ, बिलँब नहिँ लागा हो ॥ ४ ॥
यह मंगल सतलोक, हंस जन गावहिँ हो ।
कहैँ कबीर धर्मदास, अमर पद पावहिँ हो ॥ ५ ॥

॥ शब्द १३ ॥

मैं ब्योपारी नाम का, हाटे चल भाई ॥ टेक ॥

जस कुम्हरा के चाक घुमै, वैसे नर घूमै ।
इँगल पिँगल के मद्ध मेँ, जिन पवन चलाई ॥ १ ॥
बिन रसना रटना करै, नहिँ जीभ डोलाई ।
कसि के बाँधो कामदेव, तब अलख लखाई ॥ २ ॥
पूरब दिस को जाइ कै, खिरकी खोलवावो ।
तिरबेनी के घाट पर, हंसा नहवावो ॥ ३ ॥

(१) मेँढकी । (२) कहार, धीमर ।

॥ शब्द ३ ॥

सतगुरु सनमुख बैठि के, मंगल गाइये।
मन बच क्रम करि ध्यान, चरन चित लाइये ॥१॥
मंगल एक अनूप, संत जन गाइये।
उपजत आतम ज्ञान, प्रेम पद पाइये ॥२॥
चंदन अँगना लिपाइ के, चौक पुराइये।
मोतियन थार भराइ के, कलस धराइये ॥३॥
सतगुरु विप्र बोलाइ के, लगन सोधाइये।
हीरा हंस बिठाइ के, नाम सुनाइये ॥४॥
जो कल भगुति बिबेक, प्रेम पद पाइये।
सजन सहित परिवार, तो लोक सिधाइये ॥५॥
मेटे कर्म के अंक, जाहि गुरु ज्ञान भै।
तजो पखँड अभिमान, तो दुरमति दूरि कै[1] ॥६॥
यह मंगल सतलोक, हंस जन गावहीँ।
कहैं कबीर धर्मदास, अमर पद पावहीँ ॥७॥

॥ शब्द ४ ॥

चलो सोहंगम नारि, प्रीत पिय से करी।
झूठा है संसार, तो तामस परिहरी ॥१॥
दिना चारि को रंग, संग नहिँ जाइया।
यह तो रंग पतंग, नहीँ ठहराइया ॥२॥
पाँच चोर बड़ जोर, कुसँगि एते घने।
इन ठगियन के संग, मुसै घर निसु दिने ॥३॥
जग सोवत दिन रैन, मुसै घर आइ कै।
आपु भये कोतवाल, भली बिधि लूटिये ॥४॥

(१) किया।

॥ शब्द १६ ॥

मेहीँ मेहीँ बुकवा पिसावो, तो पिय के लगावो हो ।
सुरति सोहंगम नारि, तो दुरमति छाँड़ो हो ॥ १ ॥
घटहि में मानसरोवर, घाट बँधावो हो ।
घटहि में पाँच कहार, दूलह नहवावहिँ हो ॥ २ ॥
घटहि में नेह नउनिया, तो चरन पखारहिँ हो ।
प्रेम प्रीत के ललना, तो पलना झुलावहिँ हो ॥ ३ ॥
घटहि में दया के दरजी, तो दरज मिलावहिँ हो ।
पाँच तत्त के जामा, दुलह पहिरावहिँ हो ॥ ४ ॥
घटहि में लोह लोहार, तो कँगना डावहिँ[१] हो ।
तीन गुनन के सेहरा, दुलह पहिरावहिँ हो ॥ ५ ॥
घटहि में चंदन चौक, तो चौक पुरावहिँ हो ।
सत्त सुकृत को कलसा, तहाँ धरावहिँ हो ॥ ६ ॥
घटहि में मन सत माली, तो मौर ले आवहि हो ।
घटहि में जुगति के जौहरि, जोत पहिरावहि हो ॥ ७ ॥
घटहि सोहंगम नारि, तो पिय को रिझावहि हो ।
बार बार गुरु झगरि, तो अरज सुनावहि हो ॥ ८ ॥
यह मंगल सतलोक, हंस जन गावहि हो ।
कहैँ कबीर धर्मदास, बहुरि नहिँ आवहि हो ॥ ९ ॥

॥ शब्द १७ ॥

सतगुरु सगुन धरावो मोरे बाबा,
हम भइँ ब्याहन जोग हो ।
तन मन सबै प्रेम रस माते,
हँसै नैहर के लोग हो ॥ १ ॥

---

(१) डाहना=धात को गला कर गढ़ना ।

॥ बारहमासा ॥

धर सत्य पुरुष का ध्यान, तुम्हारो पूरन है आसा ॥ टेक
पिरथम मास असाढ़ जो लागे, सोधो काया को।
बाहर दृष्ट कहाँ सों आया, भीतर छाया को ॥
पंच का नगर बसाया को।
नख सिख से रचि नैन नासिका, इसे बनाया को ॥
उसी का खोज करो बाला ॥ १ ॥
सावन सार नाम निज जपि ले, यह जप अपने से।
कर नहिं हले न डोलै जिभ्या, सोहं जपने से ॥
काल नहिं ब्यापै सुषमनि से।
इँगल पिँगल के मारग की, तुम डोर गहो मन से।
नाम सोहंग जपो स्वाँसा ॥ २ ॥
भादों भर्म मेटि सतगुरु की सेवा कछु करना।
गगन गुफा के मारग को, तुम धीरज से चढ़ना ॥
केवाड़े द्वादस हैं लागे।
बैकुंठ पुरी में दसम द्वार है, तहाँ जोति जागे ॥
वहाँ नहिं लगै काल फाँसा ॥ ३ ॥
क्वार सुमति बृजराज, कोई जन अंतर ध्यान धरै।
नाभि कँवल में सुरति लगावै, आतम नजर परै ॥
झलक्कै दसम दुवारे में।
अगम अगोचर पुर्ष अविनाशी, सुन्न अटारी में ॥
वहाँ नहिं लगै भूख प्यासा ॥ ४ ॥
कातिक षष्ट कँवल दल भीतर, अगम जोति दरसै।
चमकै बिजुली मेघ जो गरजै, अमृत जल बरसै ॥

बिना दल बादल झनकारा।
उलटि पवन के नीचे होई, बहै अमृत धारा ॥
वहाँ नहिं लागै भौ फाँसा ॥ ५ ॥
अगहन आसा लगी हमारी, गगन गुफा माहीं।
बज्र केवारे लगे द्वार में, सहज खुलैं नाहीं ॥
जहाँ कछु हिकमत का काजा।
उलटि पवन के ठोकर मारो, खोलो दरवाजा ॥
तिन्हां का छूटै जम त्रासा ॥ ६ ॥

दरस कोइ साधू जन पावै ।
षट चक्कर के खोल केवारा, ऊपर चढ़ि जावै ॥
तहाँ है जगर मगर हंसा ॥ १०
बैसाख बात कोइ मोरी मानि ले, सब से छोट रहना ।
भला बुरा मत कहो केहू को, भला बुरा सहना ॥
भला तुम छाँड़ि बड़ाई को ।
तामस खीस मत करो जगत में, यह भाव संतन को ॥
बनो तुम दासन के दासा ॥ ११
जेठ जागती जोति की महिमा, परखो संत सुजान ।
अजपा जाप जपो सोहंगम, पावो पद निरबान ॥
सब्द धुन पाँचो लौ लावो ।
गुरु कबीर किरपा तें धर्मन, गुन बारह मास गावो ॥
जिन्हों का ज्ञान नगर बासा ॥ १२ ॥

॥ बसंत और होली ॥

॥ बसंत ॥

प्यारे कंत से मिलि खेलौ बिमल बसंत ।
खोलो अँधेरी कोठरी, मन बैठौ महल एकंत ॥ टेक
गगन मँदिल दीपक धरो हो, भवन करौ उँजियार ।
छैल छबीले कब मिलिहैं, मोर जीवन प्रान अधार ॥ १
गंगा जमुना सरसुती हो, चंद सूर के बीच ।
अर्ध ऊर्ध के मध्य में हो, अमी अरगजा कीच ॥ २
बिन पग नटवा निरत करत हैं, बिन कर बाजे ताल ।
बिना नयन छबि देखनी हो, बिन सरवन झनकार ॥ ३

का संझा का प्रात सबेरा,
जहँ देखूँ जहँ साहेब मेरा ॥ २ ॥
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है,
साहेब घट में कीन्हा डेरा ॥ ३ ॥
साहेब कबीर एक माला दीन्हा,
धरमदास घट ही बिच फेरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

साहेब मोरे दीन्ही चोलिया नई ॥ टेक ॥
तीन पाँच मोरि चोलिया के घुंडी,
लागो कुमति सुमतिया की पाती ॥ १ ॥
यह चोलिया मोरे ससुरे से आई,
चोलिया पहिरि धनि भई अलमाती ॥ २ ॥
सुनहु हो मोरी पार परोसिन,
यह चोलिया बिरला जन जानी ॥ ३ ॥
पहिले बियाह मोर भयो सतगुरु से,
चोलिया के बँद मोरे सतगुरु खोली ॥ ४ ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी,
बिसरि गई नइहरवा की बोली ॥ ५ ॥

॥ शब्द ८ ॥

साहेब मोरे पठई चोली अनमोल ॥ टेक ॥
यह चोलिया मोरे ससुरे से आई,
चोलिया पहिरि हम भई अतोल ॥ १ ॥
यह चोलिया में सहस बँद लागे,
चोलिया के बँद मोरे सतगुरु खोल ॥ २ ॥

ओदा सुलफ करो बहु भाँति,
जा तें साहु न डंडे ।
कहैं दरिया सुन बोधो बनिये
कबहुँ न करो पखंडे ।

(५)

कोइ संत बिबेकी सब्द बिचारा, प्रेम पिवे सो प्यारा ॥
अर्ध उर्ध के मद्धे मानिक, करै दृष्टि उँजियारा ।
बंक नाल नाभो के कहिये, भँवर गुफा के राह सुठारा ॥१॥
खेचरि भूचरि सजे अगोचरि, उनमुनि मुद्रा धारा ।
सरिता सोनि मिले इक संगम, सूभर भरि भरि सारा ॥२॥
अनहद ताल पखाउज किन्नर*, सोभा सुमति बिचारा ।
झिनझिन जंतर निस दिन बाजे, जम जालिम पचिहारा ॥३॥
सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक बिहोन नहिं तारा ।
कहैं दरिया कोइ संत बिबेकी, निरभै लोक सिधारा ॥४॥

(६)

जन कोइ आनँद मंगल गावै ॥ टेक ॥
थिरकत† फिरै भवन के भीतर, पदुम पदारथ पावै ।
मैन मजीठ‡ मैल सब छूटा, घटा चमक घन छावै ॥१॥
रोमरोम जाके पद परगासित, बिहरि बिहँसि मिलि जावै
भूमि वीरानी भर्म न राखै, पग नाहीं अटकावै§ ॥२॥
बीज बोवै नहिं पेड़ पुरातम, फल फुल सबहिं मिटावै
तुरिया तत्त उड़ा बिनु ताजन‖, इहि बिधि सर्क बतावै॥३॥

* इन्द्र की सभा के गवैये। † नाचता। ‡ गहिरा लाल रंग जो कभी छूटता नहीं
§ यह संसार ऊसर ज़मीन के समान है इस में भम बस कोई पाँव न अटकावै
‖ कोड़ा।

मिला डगर चढ़ा बिनु डोरी, डगमग कबहुँ न आवै।
पियतहिँ मुक्त भया मुक्ताहल, मनि दृग अंजन लावै ॥४॥
पिया प्रेम हुआ मस्त दिवाना, गूँगा सैन बतावै।
कहैं दरिया घन धन वे सतगुरु, बहुरि न भौजल आवै ॥५॥

(७)

संतो एहू अमर घर जैये।
तन मन वारि चढ़ो सर जा से, सोइ फल अमृत पैये ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ तिरिस्ना, यह सब मेलि लड़ैये।
नारी पुरुष स्वाद बिसरावो, सतगुरु सब्द समैये ॥२॥
बंक नाल उलटि अजपा के, गगन गुफा घर छैये।
अर्ध उर्ध औ सोहं सूरति, दिब्य दृष्टि गहि लैये ॥३॥
सेत घटा घन मोती झरि हैं, निरमल जोति समैये।
पूरन ब्रह्म पुनीत उदित भौ, बहुरि न भवजल ऐये ॥४॥
तहँ सुखराज बिलास पुहुप पर, अमृत चाखन पैये।
कहैं दरिया दाया सतगुरु के, पास पुरुष के रहिये ॥५॥

(८)

तुम मेरो साईं मैं तोर दास, चरन कँवल चित मेरो पास ॥१॥
पल पल सुमिरौं नाम सुबास, जीवन जग में देखो दास ॥२॥
जल में कुमुदिनि चन्द अकास, छाइ रहा छबि पुहुप बिलास३
उनमुनि गगन भया परगास, कहैं दरिया मेटा जम त्रास॥४

(९)

तुम सब ऐगुन मेटनिहारा।
जा के हाथ जगत की डोरी, गुन गहि खैंचो पारा ॥१॥
पूत कपूत पिता कहँ लज्जा, जो मैं भूलि बिगारा।
जैसे मनि मन्दिर के भीतर, निसि बासर उजियारा ॥२॥

तुम जिन्दा हौ जाग्रत जग में, बेबहा⊙ बेकिमती।
खाक से पाक किये छन माहीं, यही हमारी बिनती ॥३॥
सहज जोग अमृत रस चाखै, परै कबहिँ नहिँ सूखा।
अनवा चीज दिजै भरिपूरी, आलम रहे न भूखा ॥ ४ ॥
नखसिख लै तुम सुंदर बनाया, और भुजा बल नीका।
अदल तुम्हारा ज्ञान हमारा, दूजा कहै सो फीका ॥५॥
बचन तुम्हारा अजर अमर है, हाल हजूरे सूना।
कहैं दरिया दाया के सागर, गनिये पाप न पूना ॥६॥

(१०)

मन बुध चित हंकार के, सुरत सिरोमन जान ।
ब्रह्म सरोवर सुरत के, दरिया संत प्रमान ॥८॥
मन बुध चित हंकार यह, रहैं सुरत के माहिं ।
सुरत मिली जाय ब्रह्म में, जहँ कोइ दूजा नाहिं ॥९॥
मन मेरू* से बावड़े,†, त्रिकुटी लग ओंकार ।
जन दरिया इनके परे, ररंकार निरधार ॥१०॥
दरिया त्रिकुटी हद्द लग, कोइ पहुंचे संत सयान ।
आगे अनहद ब्रह्म है, निराधार निरबान ॥११॥
दरिया त्रिकुटी के परे, अनहद ब्रह्म अलेख ।
जहाँ सुरत गैली‡ भई, अनुभव पद को देख ॥१२॥
रतन अमोलक परख कर, रहा जौहरी थाक ।
दरिया तहँ कीमत नहीं, उनमुन भया अबाक§॥१३।
इड़ा पिंगला सुषमना, त्रिकुटी संधि मँझार ।
दरिया पूरन ब्रह्म के, यह भी उल्ली वार ॥१४॥
सुरत उलट आठों पहर, करत ब्रह्म आराध ।
दरिया तबही देखिये, लागी सुन्न समाध ॥१५॥
सुरत ब्रह्म का ध्यान धर, जाय ब्रह्म में पर्स ।
जन दरिया जहँ एकसा, दिवस एक सौ वर्स ॥१६॥
ररंकार धुन हौद में, गरक‖ भया कोइ दास ।
जन दरिया व्यापै नहीं, नींद भूख और प्यास ॥१७॥

---

*पहाड़ । †लौट आवे । ‡हैरान । §चुप । ‖डूब जाना ।

पाप पुन्न सुख दुःख की, अरट* भरत है साख ।
जन दरिया रह राम लग, वहँ सबही को राख† ॥३१॥
जीव बिलंब्या‡ जीव से, कारज सरै न कोय ।
जन दरिया सतगुर मिलै, तो ब्रह्म बिलंबन§ होय ॥३२॥
जीव बिलंबन झूठ है, मिल मिल बिछुड़े जाय ।
ब्रह्म बिलंबन साँच है, रह उर माँहि समाय ॥३३॥
सकल आदि सब के परे, है अबिनासी राम ।
उपजै बर्तै बिनसजै‖, माया रूपी काम ॥३४॥
दरिया दस दरवाज में, ता बिच पढ़त निमाज ।
रहै समो इक रटत है, और सकल बेकाज ॥३५॥
दरिया खेती नीपजी, सिरोपान गया सूख ।
हरियाली मिट कन भया, भीतर भागी भूख ॥३६॥
रवि ससि चालै पूर्व दिस, पच्छिम कहै सब लोय ।
दरिया यह गत साध की, लखै सो बिर्ला कोय ॥३७॥
समुंद खार गंगा गदल, जल गुनवंता सीत ।
रवी तेज ससि छिद्रता, दरिया संताँ रीत ॥३८॥
दरिया दीपक राम का, गगन मंडल में जोय ।
तीन लोक चौदह भवन, सहज उजाला होय ॥३९॥
दरिया राजस दूर कर, ररंकार लौ लाय ।
राम छाँड़ राजस गहै, भौ भौ पर ले जाय ॥४०॥

---

*रहट । †ठहराव । ‡फँस गया । §मेला । ‖नाश हो ।

दरिया अमल* है आसुरी, पिये होय सैतान ।
राम रसायन जो पिये, सदा छाक† गलतान ॥ ६१ ॥
नारी आवै प्रीत कर, सतगुर परसै आन ।
दरिया हित उपदेस दे, माय बहिन धी जान ॥ ६२ ॥
नारी जननी जगत की, पाल पोस दे पोष ।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ॥ ६३ ॥
ररा तौ रब आप है, ममा मोहम्मद जान ।
दोय हरफ में माइना‡, सबही बेद पुरान ॥ ६४ ॥
ररंकार अनहद्द की, दरिया परख अवाज ।
और इष्ट पहुंचै नहीं, जहाँ राम का राज ॥ ६५ ॥
सिव ब्रह्मा और बिस्नु का, येही उरे मँडान ।
जन दरिया इन के परे, निरंजन का नीसान ॥ ६६ ॥
दरिया देही गुरमुखी, अबिनासी की हाट ।
सनमुख होय सौदा करै, सहजहि खुलै कपाट ॥ ६७ ॥
अरँड आक अरु बाँस तरु, होता चंदन संग ।
गाँठ गँठीला थोथरा, पलटा नाहीं अंग ॥ ६८ ॥
उभय करम बंधन करै, नाम करै भय हान ।
दरिया ऐसे दास के, बरतै खैंचा तान ॥ ६९ ॥
दरिया दुखिया जब लगी, पछा पछी बेकाम ।
सुखिया जबही होयगा, राज निकंटा राम ॥ ७० ॥

---

*नशा । †मस्त । ‡अर्थ ।

जहँ जल बिन कँवला बहु अनंत ।
जहँ बपु* बिन भौंरा गोह† करंत ॥ १ ॥
अनहद बानी अगम खेल ।
जहँ दीपक जरै बिन बाती तेल ॥ २ ॥
जहँ अनहद सब्द है करत घोर ।
बिन मुख बोलै चात्रिक मोर ॥ ३ ॥
बिन रसना गुन उदत नार ।
पाँव बिन पातर‡ निरतकार ॥ ४ ॥
जहँ जल बिन सरवर भरा पूर ।
जहँ अनंत जोत बिन चन्द सूर ॥ ५ ॥
बारह मास जहँ ऋतु बसंत ।
ध्यान धरैं जहँ अनंत संत ॥ ६ ॥
त्रिकुटी सुखमन चुवत छीर ।
बिन बादल बरखै मुक्ति नीर ॥ ७ ॥
अमृत धारा चलै सीर§ ।
कोइ पीवै बिरला संत धीर ॥ ८ ॥
ररंकार धुन अरूप एक ।
सुरत गही उनही की टेक ॥ ९ ॥
जन दरिया बैराट चूर ।
जहँ बिरला पहुंचै संत सूर ॥ १० ॥

* शरीर । † गुंजार । ‡ बेश्या । § ठंडी ।

साधो राम अनूपम बानी।
पूरा मिला तो वह पद पाया, मिट गइ खैंचा तानी ॥टेक॥
मूल चाँप दृढ़ आसन बैठा, ध्यान धनी से लाया।
उलटा नाद कँवल के मारग, गगना माहिं समाया ॥१॥

गुरु के सब्द की कूंची सेती, अनंत कोठरी खोली।
ध्रू लोक पर कलस बिराजै, ररंकार धुन बोली ॥२॥
जहँ बसत अगाध अगम सुख सागर, देख सुरत बौराई।
बस्तु घनी पर बरतन ओछा, उलट अपूठी आई ॥३॥
सुरत सब्द मिल परचा हूआ, मेरु मद्ध का पाया।
ता में पैस गगन में आया, वहँ जाय अलख लखाया ॥४॥
जहँ पग बिन पातर कर बिन बाजा,
बिन मुख गावैं नारी।
बिन बादल जहँ मेंह बरसै है, ढुमक ढुमक सुख क्यारी ५
जन दरियाव प्रेम गुन गाया, वहँ मेरा अरट चलाया।
मेरु डंड होय नाल चली है, गगन बाग जहँ पाया ६

* * *

साधो ऐसी खेती करई, जासे काल अकाल न मरई ॥टेक
रसना का हल बैल मन पवना, बिरह भोम तहँ बाई।
राम नाम का बीजा बोया, मेरे सतगुर कला सिखाई १
ऊगा बीज भया कुछ मोटा, हिरदा में डहडाया*।
किया निदान† भरम सब खोया,
जहँ प्रेम नीर बरखाया ॥ २ ॥
नाभी माहिं भया कुछ दीरघ, पोटा सा दरसाना।
अर्ध कँवल में सिरा निकासा, गगन नाद गरजाना ॥३॥

---

* लहलहाया। † निराव।

केवल ब्रह्म सकल घट ब्यापक, घाटि कहूँ नहिं पूरा।
आतम राम भर्म के बसि परि, यह आचरज जहूरा ॥४॥
जोग जग्य तप दान नेम करि, चाहत राम को भेंटा।
जल पत्थर करि हरि आराधहिं, बाँझ खेलावहिं बेटा ॥५॥
देवता पितर भूत गन पूजहिं, धरे सो तन बिकरारी।
जोति सरूप न आपा चीन्हत, महा सो अधम अनारी ॥६॥
भीखा स्वारथ खेत बोवायो, बीज पुन्न अरु पाप।
जो अघाय सो भोग करत है, करता करम को बाप ॥७॥

॥ शब्द ९ ॥

या जग में रहना दिन चारी। ता तें हरि चरनन चित वारी ॥१॥
सिर पर काल सदा सर[1] साधे। अवसर परे तुरतहीं मारी ॥२॥
भीखा केवल नाम भजे बिनु। प्रापति कष्ट नरक भारी ॥३॥

॥ शब्द १० ॥

मन तुम राम न भजहु सबेरो।
पहर दुपहर तीसरे पहरे, होइ होइ जात अबेरो ॥ १ ॥
आगहु खड़े होहु जीवत माँ, सो केवल हित तेरो।
भ्रम घूँघट पट खोलि बिचारो, सहजहिं मेटि अँधेरो ॥ २ ॥
सतगुरु नैन सैन के परिचै, होत न लागत देरो।
अचरज महा अलौकिक रचना, देखत निकटहिं नेरो ॥ ३ ॥
सहज समाधि के चाह करहु तब, आपा परे निबेरो।
खोज खोज कोउ अंत न पायो, सुर नर मुनि बहुतेरो ॥ ४ ॥
तुरिया सब्द उठत अभि[2] अंतर, सोहं सोहं टेरो।
पूरब लिखो अछर अनमूरति, आपुहिं चित्र चितेरो ॥ ५ ॥
सब जहाँ लगि रूप तुम्हारा, जल थल बन गिरि हेरो।
कह भीखा इक धन्य तुही है, पटतर[3] द्यो केहि केरो ॥ ६ ॥

॥ शब्द ११ ॥

जो कोउ राम नाम चित धरै।

(१) बान। (२) घट। (३) उपमा।

॥ शब्द १३ ॥

हे मन राम नाम चित धौबे[1] ।
काहे इत उत धाइ मरतु है। अवसिक भजन राम के कौबे[2] ॥१॥
गुरु परताप साध की संगति, नाम पदारथ रुचि से खौबे ।
हरदम सोहं सब्द उठतु है, बिनल बिमल धुनि गौबे ॥२॥
सुरति निरति अंतर लौ लावै, अनहद नाद गगन घर जौबे ।
रमता राम सकल घट ब्यापक, नाम अनंत एक ठहरौबे ॥३॥
तहाँ गये जग सों जर[3] टूटे, तीनि ताग गुन औगुन नौ[4] बे ।
जनम अस्थान खानपुर बुहना[5] , सेवत चरन भिखानंद चौबे ॥४॥

॥ शब्द १४ ॥

सजनी कौल के सोच मोहिं, लगो रहत दिन रजनी ॥टेक॥
इन पाँचो परपंच चलायो, पाप पुन्न की लदनी ।
आयो नफा लेन दियो टूटो[6] , मरत बहुत तेहि लजनी[7] ॥१॥
हरिजन हरि चरचा नित बाँटहिं, ज्ञान ध्यान की ददनी[8] ।
मनुवाँ इमिल धुमिल[9] में अरुझेव, छूटलि नाम महजनी[10] ॥२॥
जगन्नाथ जग बिदित सकल घट, ब्रह्म सरूप बिरजनी[11] ।
खासा आपे आपु न परखत, बिषे बिसाहत[12] ममनी[13] ॥३॥
अंदर की प्रभु सब जानत धौं, काह मौज मेरी बमनी[14] ।
कोर[15] तनिक जेहिं ओर कृपा कियो, भीखा भाग तेहि जगनी ॥४॥

॥ शब्द १५ ॥

मन तुम लागहु सुद्ध सरूपे ॥टेक॥
तन मन धन न्यौछावरि वारो बेगि तजो भव कूपे ॥ १ ॥
सतगुरु कृपा तहाँ लै लावो जहाँ छाँह नहिं धूपे ॥ २ ॥

---

(१) धर। (२) कर। (३) जड़। (४) तोन गुनों का तागा अर्थात् सत, रज, तम, और नौ औगुन अर्थात पाँच भूत काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार और चार विषय अर्थात् आसा, मनसा, ईर्षा, विरोध। (५) आज़मगढ़ के जिले में एक गाँव का नाम जहाँ भीखा साहब पैदा हुए थे। (६) घाटा। (७) लाज। (८) पेशगी दाम। (९) मलीन ब्यौहार। (१०) महाजनी। (११) बिराजमान। (१२) मोल लेता है। (१३) ममता। (१४) टेढ़ी। (१५) तिरछी चितवन।

नियरे भुरकुड़ा ग्राम[१] जाके सब्द आपे है तहाँ ॥६॥
चोप लागी बहुत जाय के चरन पर सिर नाइया।
पूछेउ कहा कहि दियो आदर सहित मोहिं बैसाइया ॥१०॥
गुरु भाव बूझि मगन भयो मानो जन्म को फल पाइया।
लखि प्रीति दरद दयाल दरवे[२] आपनो अपनाइया ॥११॥
आतमा निज रूप साँचो कहत हम करि कसम कै।
भीखा आपे आपु घट घट बोलता सोहमस्मिकै[३] ॥१२॥

॥ शब्द २ ॥

मनुवाँ सब्द सुनत सुख पावै ॥ टेक ॥
जेहिं बिधि धुधुकत नाद अनाहद तेहिं बिधि सुरत लगावै ॥१॥
बानी बिमल उठत निसु बासर नेक बिलंब न लावै ॥२॥
पूरा आप करहि पर कारज नरक तें जीव बचावै ॥३॥
नाम प्रताप सबन के ऊपर बिछुरो ताहि मिलावै ॥४॥
कह भीखा बलि बलि सतगुरु की यह उपकार कहावै ॥५॥

॥ शब्द ३ ॥

मनुवाँ नाम भजत सुख लीया ॥ टेक ॥
जन्म जन्म के उरझनि पुरझनि समुझत करकत हीया।
यह तो माया फाँस कठिन है का धन सुत बित[४] तीया[५] ॥१॥
सत्त सब्द तन सागर माहीं रतन अमोलक पीया।
आपा तजे धसै सो पावै ले निकसै मरजीया[६] ॥२॥
सुरति निरति लौलीन भयो जब दृष्टि रूप मिलि थीया[७]।
ज्ञान उदित कल्पद्रुम को तरु[८] जुक्ति जमावो बीया ॥३॥
सतगुरु भये दयाल ततच्छिन[९] करना या सो कीया।
कहै भीखा परकासी कहिये घर अरु बाहर दीया[१०] ॥४

---

(१) नाम एक गाँव का जहाँ गोविन्द साहब का स्थान था जिन से भीखा साहब उपदेश लिया। (२) प्रसन्न हुए। (३) सोहं अस्मि = वह मैं हूँ। (४) धन। (५) स्त्री। (६) समुद्र में डुबकी लगा कर मोती निकालने वाला। (७) थिर हुआ। (८) पेड़ (९) तुर्त। (१०) चिराग।

चाँद सूर एक सम सुरति मिलाय दम,
इँगल पिंगल रँग सुखमन माट है।
पूरब पवन जोग पच्छिम की राह होय,
गंग जमुन संगम तहँ त्रिकुटी को घाट है।
प्रान औ अपान असमान ही में थिर होवे,
भीखा सब्द ब्रह्म को अकास सुन्न हाट[१] है॥

(८)

भूलो हाट ब्रह्म द्वार काम क्रोध अहंकार माहिं,
रहत अचेत नर मन माया पागो है।
अलख अलेख रूप आतमा है भेख धरे,
कस न पुलकि[२] जीव ताही पंथ लागो है॥
अकथ अगाध वोई अनुभव फल जोई,
निसु महा भोर मानो सोय उठि जागो है।
बाजै अनहद मारू उभै दल मोच्छ झारू,
सूरा खेत माँड़ि रही भीखा कूर[३] भागो है॥

(९)

कूर है खजूर छाया संचै[४] पु[५] झूँठी माया,
ग्रसइ रहत यह जगत का हाल है।
मन परतीत करै सत औ संतोष धरै,
नाम जपै हर दम दमहिं को माल है॥
साधन को संग जहाँ नाना परसंग तहाँ,
अर्थ नवीन सुनि जागो भाग भाल[६] है।
धन्य आपु भेद पाय दीन्हो और को बताय,
भीखा गुरु जीव राम नाम तो गुलाल है॥

(१०)

बालक सों भयो ज्वान दारा सुत ध्यान प्रान,
समय गये तें फल लागो भूख रूख है।

(१) बाजार। (२) उमंग से। (३) कादर। (४) रक्षा करता है। (५) शरीर। (६) माथा।

भीखा यह ख्वाब की लहरि जग जानिये,
जागि करि देखु सब झूँठ नाते ॥

(४)

झूँठ में साँच इक बोलता ब्रह्म है,
ताहि को भेद सतसंग पावे ।
धन्य सो भाग जो सरन सेवा टहल,
रात दिन प्रीति लवलीन लावे ॥
बचन लै जुक्ति सों सिद्धि आसन करै,
पवन सँग गवन करि गगन जावै ।
प्रगट परभाव गुरु गम्य परखो इहै,
भीखा अनहद्द पहिले सुनावे ॥

(५)

दूजे वह अमल दस्तूर दिन दिन बढ्यो,
घटा अँधियार उँजियार भाया ।
अर्ध से उर्ध भरि जाप अजपा जप्यो,
चाँद अरु सूर मिलि त्रिकुटि आया ॥
झरत जहँ नूर जहूर असमान लौं,
रूह अफताब[1] गुरु कीन्ह दाया ।
भीखा यह सत्त सो ध्यान परवान है,
सुन्न धुनि जोति परकास छाया ॥

(६)

सब्द परकास के सुनत अरु देखते,
छूटि गइ बिषै बुधि बास काँची ।
सुरति गै निरति घर रूप अयो[2] दृष्टि पर,
प्रेम की रेख परतीत खाँची ॥
आतमा राम भरिपूर परगट रह्यो,
खुलि गई ग्रंथि[3] निज नाम बाँची ।

(१) सूरज । (२) आयो । (३) गाँठ ।

(१५)

राम भजे दिन घरी इक जीवन का फल सोइ ॥
जीवन का फल सोइ मगन मन हरि जस गावै ।
परमातम चेतन्य रूप आपा दरसावै ॥
जोग पपील[1] को मत कठिन अंध धुन्ध दरबार ।
सोहं सन्मुख सहज घर मत बिहंग निरधार ॥
भीखा त्रैगुन गुनन के बस्य परा सब कोइ ।
राम भजे दिन घरी इक जीवन का फल सोइ ॥

(१६)

राम भजन को कौल किये दिन ऐसहि ऐसहि जात ॥
ऐसहि ऐसहि जात चेत नहिं करत अनारी ।
लोक लाज कुल कानि[2] मानि हरि नाम बिसारी ॥
अपने मनै सपूत सूर अति से बल भारी ।
जनिहै बिते दिन चारि काल सिर मुगदर मारी ॥
भीखा समुझत गर्भ बास दुख थरथर कंपत गात ।
राम भजन को कौल किये दिन ऐसहि ऐसहि जात ॥

(१७)

सुत कलित्र[3] धन धाम सुख मानो सुपना को सो साँच ॥
सुपना को सो साँच मानि ता को पतियाना ।
कहा रह्यो का भयो समुझि नहिं करत अयाना[4] ॥
ज्यों पवन उदक[5] भँवरो दियो कहै बवंडर भूत ।
बढ़ो बहुत फिरि मिटि गयो कोउ न रहा इत ऊत ॥
जो भीखा जाने राम को तेहि झूँठ लगत मत पाँच ।
सुत कलित्र धन धाम सुख मानो सुपना को सो साँच ॥

(१८)

चलनी को पानी पड़ो बरहा[6] कभी न होइ ॥

(१) चींटी । (२) प्रतिष्ठा । (३) स्त्री । (४) नादान । (५) पानी । (६) नहर ।

मनराजाको जीतिकै संगलियो गुरुदेव ७३॥

चौपाई॥

भँवर गुफा ब्रह्मरन्धर देखा। बंकनाल को लहा बसेखा॥ सहस कँवलदल ऊपर राजै। तेज पुंज जहां अधिक बिराजै॥ अमर लोक ताऊपर होई। कोटों मध्ये पावै सोई॥ कुंभक आठ साध जो लीन्हा। फिर केवल कुम्भकही कीन्हा॥ दसवें द्वार सुरति ले दीनी। देखी अचरज ठौर नवीनी॥ अनहद शब्द जहां घन घोरै। चन्दन सूर नहीं निस भोरै॥ निरगुन सेज महा सुखदाई। सोए महाराज लौलाई॥ दसइन्द्री मन के वस करिया। मनको रोंक पवन में धरिया॥ ७४॥

दोहा॥

पवन रोक अनहद लगे पायो पद निरवान॥
तीनों मिल एकैभये ध्ये ध्याता अरु ध्यान ७५॥

चौपाई॥

लगीसमाधि सुरति नहिं कोई। सेवकस्वामी रहा न दोई॥ ऐसी दशा होय जब नाहीं।

मान कहे फिर भी नहीं मानहि ना अपने दिल अन्दर हेरी।
तो मेरो कुछ दोष नहीं कविराज होवेगी भूल जो तेरी ॥

॥ दोहा ॥

सगर सुतन के कारणे, भागीरथ गंग लाय।
सो कविराज झूठी नहीं, परतक देत दिखाय॥
मुक्ति भई इस कारणे, ॰ विवर सोच विचार।
सगर के सुत उधरे कहा, भारत दियो उद्धार॥

तर्ज वाणी की। ताल कैरवा॥

साधो भाई तन धोया मन मैला होजी। तन धोयां सूं काम नहीं चलसी,
जमरा डन्डा पड़ेला रे। साधो भाई तन धोया० ॥टेर॥
समता रो साबन ज्ञान नीर कर, करणी री कुन्डी हेला होजी।
श्वासोश्वास मार फटकारा, सुरत शिला, रगडेला रे ॥१॥
ममतारो मैल मेट भया उजला, गमरी गेरू रंगेला होजी।
वे फिकरी री लगी फिटकड़ी, दिन दिन दूणो घुटेला रे ॥२॥
जब तक मन मैलो रहे मांही, तब तक योंही भटकेला होजी।
साचे गुरु बिन मैल कुण धोवे, दुविधा नांय हटेला रे ॥३॥
समझ विचार सार लख उर में, गुरु मुख ज्ञान सुणेला होजी।
सुन कर ज्ञान ध्यान सूं धारे, वे नर नांय डरेला रे ॥४॥
देवनाथ को साथ कियो जद, अब क्य संशय रहेला होजी।
मान स्थान कियो सुरधनी पर, निर्भय निसाण बजेला रे ॥५॥

॥ दोहा ॥

वंक कहे सुन भूपति, कौन है जमको दन्ड।
जम तो कुछ भी है नहीं, यह क्यों कहो पाखन्ड ॥

सवैया

बात तो सत्य है भूल नहीं, ना जम है और ना दन्ड जो होई।

तिनका खेह मंदिर में होई। करई दूर भामिनी सोई ॥
या विधि काया संयम राधै। बांधै मूल अरु नाको साधै ॥
छंद–मूल बांधै नाम साधै काया संयम जानिकै ॥
मन पवन दोई तुरी साजै युक्ति जीव बनायकै ॥
देइ ताड़ना चित्त कौ तुबक सर छाडै आस हो ॥
तेही आस चढ टेरै मसासा जीव होय निकास हो ॥

सोरठा–ऐसी बाजी होइ, मन के संग दौराइये ॥
मन शूरा पुनि सो, कष्ट परै पुनि ना टरै ॥

चौपाई।

परै कष्ट तव तोरिगे वासा। राखै खड्ग नाम को पासा ॥
नाम अस्त्र ते दूत डरायी। भागै अरि शूरा जिमि पायी ॥
अरि के भाजैं होय हुलासा। दुविधा मिटै कमल परगासा ॥
अष्ट कमल देखै पुनि सोई। मानौ रंक महा धन होई ॥
देखै ब्रह्म जहाँ अस्थाना। भय भाजै तव हो निर्वाना ॥

अष्ट कमल वर्णन।

अष्ट कमल तोहि भेद बताऊँ। अजपा सोहं प्रकट बुझाऊँ ॥
मूल कमल दल चार ठिकाना। देव गणेश तहां कीन्ह पयाना ॥
ऋद्धि सिद्धि वासा तहँ होई। छै सौ जाप अजपा तहँ सोई ॥
द्वितीय कमल षट दल परमाना। तहँ कमलन कर आहि ठिकाना
सावित्री ब्रह्मा है जहँवां। षट सहस्र जाप है तहँवां ॥
छन्द–त्रय कमल दल अष्ट है हरि लक्ष्मी तिहि संग मौं ॥
षट सहस्र जहँ होई अजपा निरखि देखो अंग मौं ॥
कमल चौथा द्वादसदल शिव को तहां निवासु हो ॥
सुरति निरति करि लोक पहुँचै षट सहस्र जहां जासु हो

॥ चौपाई ३० ॥

मन में किरति जो ऐसी होई। धरती रहै गगन में जोई ॥
जेहि खोजत सुर नर मुनि थाके। जाको खेल न जाने वाके ॥
ऐसे भये दसो औतारा। और बहु भाँति भया संसारा ॥
पल में दसा अनेकन होई। नहिं कितहूँ थिर गये समोई ॥
जाको अहै सकल बिस्तारा। नहिं कोइ ता का रूप निहारा ॥
पाँच तत्त दस इन्द्री संगा। उपजे बिनसे नाना रंगा ॥
तेहि धोखे जग रहा भुलाई। जब चीन्हे तब धोखा जाई ॥

॥ दोहा ॥

पाछे जन्महि को गहै, कागद को उच्चार।
उलटा है सूधा करै, तब दीखै संसार ॥

॥ सोरठा ॥

निज मन सतगुरु पास, जहाँ जाय सब सिधि मिलै।
जग ते होय उदास, तो को कोइ नहिं खोजिया ॥

॥ सोरठा ॥

सत्त सब्द परमान, अनहद बानी जो दृढ़ै।
और झूठ सब ज्ञान, सत्त सब्द सत सार है ॥

॥ चौपाई ३१ ॥

सत्त नाम आहै तत सारा, अगम निगम का कुंजी तारा ॥
ररंकार सब्द इक होई। ता में राखो सुरति समोई ॥
मूल नाम का करो बिबेका। ज्ञान चक्षु ते बिरले देखा ॥
जाकर कुंजी तारा होई। घट का भेद लखेगा सोई ॥
सतगुरु मिलें तो भेद बतावें। भौजल माहिं बहुर नहिं आवें ॥
सुनै जो ऐसा अगम संदेसा। निहचै छूटै जम का देसा ॥
चेला गुरु परतीत जो धरई। जम तेहि देख डंडवत करई ॥

॥ दोहा ॥

यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत।
करम भरम सब त्यागि कै, चलै सो भौजल जीत ॥

। चौपाई ३६ ।।

मूलहि कोइ न लागे आई। फेर फेर जग परलै जाई ॥
देह धरे बहु कर्म कमाई। कैसे आवन गवन नसाई ॥
तीरथ बर्त नेम आचारा। येही में भूला संसारा ॥
पूजि पषान नहिं आतम जाना। तन छूटे पाषान समाना ॥
मंत्र जंत्र सीखे ओछाई। नाटक चेटक सक्ति दिखाई ॥
बाजी में संसार भुलाना। सतगुरु मिले न नाम समाना ॥

।। दोहा ।।

बिबिध रूप की भक्ति में, फिरि फिरि धरे सरीर।
एक नाम बिन मुक्ति नहिं, ऐसी कहैं कबीर ॥

।। सोरठा ।।

परलय जनम अनेक, करम करै सुख दुख सहै।
नहिं पावै कोइ एक, जेहि मिले जिव काज होय ॥

।। चौपाई ३७ ।।

सत्तनाम इक अच्छर सोहै। जाके बूझे जिव निर्मोहै।
अच्छर में निःअच्छर होई। ज्ञानी होय सो बूझै कोई ॥
पंडित अच्छर बेद बखानै। निःअच्छर का मरम न जानै ॥
निःअच्छर है नाम की डोरी। जेहि मिले जिव फंदा तोरी ॥
बिन रसना गुन गावै कोई। सुरत सब्द धर जानै सोई ॥
कथा होय तो कहूँ सुनाई। अकथ कथा कस जाय बताई ॥
ज्ञानी होय सो ज्ञान बिबेकी। अच्छर भेदी निःअच्छर देखी ॥

।। दोहा ।।

कहत बिकल सब कोय, मूल मरम ना पावई।
अकथ कथा सतगुरु कही, सुन्नी सुन जो चावई ॥

।। सोरठा ।।

अथाह अमूल जो बेद, पार लोक बिस्तार जेहि।
सतगुरु कहैं सो भेद, बीज वस्तु पहिचानई ॥

।। चौपाई ३८ ।।

सहज रूप धुन होत सदाई। सत्त सुक्रित को आसन जहँई ॥

दुख सुख मैल जगत के भावा। तिरबेनो के घाट छुड़ावा ।२७।
तन मन सोधि भयो जब ज्ञाना। तब लख पायो पद निर्बाना ।२८।
अष्ट कँवल दल चक्कर सूझै। जोगी आप आप में बूझै ।२९।
इँगला पिंगला के घर जाई। सुखमन सेज जाय ठहराई ।३०।
ओअं सोहं तत्त बिचारा। बंकनाल का किया सम्हारा ।३१।
मन को मारि गगन चढ़ि जाई। मानसरोवर पैठि अन्हाई ।३२।
छूटे कलमल मिले अलेखा। इन नैनन साहिब को देखा ।३३।
अहंकार अभिमान बिडारा। घट का चौका करि उँजियारा ।३४।
अनहद नाद नाम को पूजा। सत्त पुरुष बिन देव न दूजा ।३५।
हित कर चंदन तुलसी फूला। चित कर चाउर संपुट मूला ।३६।
सरधा चँवर प्रीति कर धूपा। नूतन[1] नाम साहिब कर रूपा ।३७।
गुदड़ी पहिरे आप अलेखा। जिन यह प्रगट चलायो भेषा ।३८।
सत्त कबीर बकस जब दीन्हा। सुर नर मुनि सब गुदड़ी लीन्हा ।३९।
रहे निरंतर सतगुरु दाया। सतसंगति में सब कछु पाया ।४०।
ज्ञान गूदड़ी पढ़ै प्रभाता। जनम जनम के पातक जाता ।४१।
जो जन जाय जपै ये ध्याना। सो लखि पावै पद निर्बाना ।४२।
संझा सुमिरन जो जन करहीं। जरा मरन भौसागर तरहीं ।४३।
कहै कबीर सुनो धर्मदासा। ज्ञान गूदड़ी करो प्रकासा ।४४।

॥ इति ॥

रेख़ते

(१)

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै, गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नहीं, समझि बिचारि ले मनै माहीं॥
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये, जनम अनेक की अटक खोलै।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिले, जीव और सीव तब एक तोलै॥

(१) नवीन, अचरजी।

(२)

करो सतसंग गुरुदेव के चरन गहि, जासु के दरस तें भर्म भागै ।
सील औ साच संतोष आवै दया, काल की चोट फिरि नाहिं लागै ॥
काल के जाल में सकल जिव बंधिया, बिन ज्ञान गुरुदेव घट अँधियारा ।
कहै कबीर जन जनम आवै नहीं, पारस परस पद होय न्यारा ॥

(३)

गुरुदेव के भेद को जीव जानै नहीं, जीव तो आपनी बुद्धि ठानै ।
गुरुदेव तो जीव को काढ़ि भवसिंध तें, फेरि लै सुक्ख के सिन्ध आनै ॥
बंद करि दृष्टि को फेरि अंदर करै, घट का पाट गुरुदेव खोलै ।
कहत कबीर तू देख संसार में, गुरुदेव समान कोइ नाहिं तोलै ॥

(४)

रैन दिन संत यों सोवता देखता, संसार की ओर से पीठि दीये ।
मन औ पवन फिर फूटि चालैं नहीं, चंद औ सूर को सम्म कीये ॥
टकटकी चंद चकोर ज्यों रहतु है, सुरत औ निरत का तार बाजै ।
नौबत घुरत है रैन दिन सुन्न में, कहै कबीर पिउ गगन गाजै ॥

(५)

पाव और पलक की आरती कौन सी, रैन दिन आरती संत गावै ।
घुरत निस्सान तहँ गैब की झालरा, गैब के घट का नाद आवै ॥
तहँ नीव बिन देहरा[1] देव निर्बान है, गगन के तख्त पर जुगत सारा ।
कहै कबीर तहँ रैन दिन आरती, पासिया पाँच पूजा उतारा ॥

(६)

साईं आपकी सेव तो आपही जानिहो, आप का भेव कहो कौन पावै ।
आपनी आपनी बुद्धि अनुमान से, बचन बिलास करि लहरि लावै ॥
तू कहै तैसा नहीं, है सो दीखै नहीं, निगम हूँ कहत नहिं पार जावै ।
कहै कबीर या सैन गूँगा तईं, होइ गूँगा सोई सैन पावै ॥

(७)

कर्म और भर्म संसार सब करत है, पीव की परख कोइ संत जानै ।
सुरत और निरत मन पवन को पकर करि, गंग और जमुन के घाट आनै ॥

---

(१) मंदिर ।

कहै कबीर यों संत निर्भय हुआ,
परम सुख धाम तहँ लागि जीया ॥

(२९)

गड़ा निस्सान तहँ सुन्न के बीच में, उलटि के सुरत फिर नाहिं आवै ।
दूध को मत्थ करि घित न्यारा किया, बहुरि फिर तत्त में ना समावै ॥
माड़ि मत्थान तहँ पाँच उलटा किया, नाम नौनीति[1] लै सुरत फेरी ।
कहै कबीर यों संत निर्भय हुआ, जन्म औ मरन की मिटी फेरी ॥

(३०)

ससि परकास तें सूर ऊगा सही, तूर बाजै तहाँ संत झूलै ।
तत्त झनकार तहँ नूर बरसत रहै, रस्स पीवै तहाँ पाँच भूलै ॥
दरियाव औ बुन्द ज्यों देखु अन्तर नहीं, जीव औ सीव यों एक आहीं ।
कहै कबीर या सैन गूँगा तई, बेद कत्तेब को गम्म नाहीं ॥

(३१)

अगम अस्थान गुरु-ज्ञान बिन ना लहै, लहै गुरु-ज्ञान कोइ संत पूरा ।
द्वादस पलटि के खोड़स परगटै, गगन गरजै तहाँ बजै तूरा ॥
इंगला पिंगला सुषमना सम करै, अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै ।
कहै कबीर सोइ संत निर्भय रहै, काल को चोट फिर नाहिं खावै ॥

(३२)

अधर आसन किया अगम प्याला पिया,
जोग की मूल गहि जुगति पाई ।
पंथ बिन जाइ चलि सहर बेगमपुरे,
दया गुरुदेव की सहजि आई ॥
ध्यान धरि देखिया नैन बिन पेखिया,
अगम अगाध सब कहत गाई ।
कहै कबीर कोइ भेद बिरला लहै,
गहै सो कहै या सैन भाई ॥

(१) मक्खन।

(३३)

सहर बेगमपुरा गम्म को ना लहै, होय बेगम्म सो गम्म पावै।
गुनों की गम्म ना अजब बिसराम है, सैन को लखै सोई सैन गावै॥
मुक्ख बानी तिको[1] स्वाद कैसे कहै, स्वाद पावै सोई सुक्ख मानै।
कहै कबीर या सैन गूँगा तईं, होय गूँगा सोई सैन जानै॥

(३४)

अधर ही ख्याल औ अधर ही चाल है, अधर के बीच तहँ मठ्ठ कीया।
खेल उलटा चला जाइ चौथे मिला, सिंघ के मुक्ख फिर सीस दीया॥
सबद घनघोर टंकोर तहँ अधर है, नूर को परसि के पीर[2] पाया।
कहै कबीर यह खेल अवधूत का, खेलि अवधूत घर सहजि आया॥

(३५)

छका[3] अवधूत मस्तान माता रहै। ज्ञान बैराग सुधि लिया पूरा॥
स्वासं उस्वास का प्रेम प्याला पिया। गगन गरजे तहाँ बजै तूरा॥
पीठ संसार से नाम-राता रहै। जतन जरना लिया सदा खेलै॥
कहै कबीर गुरु पीर से सुरखरू,[4]। परम सुख धाम तहँ प्रान मेलै॥

(३६)

छका सो थका फिर देह धारै नहीं,
करम औ कपट सब दूर कीया।
जिन स्वास उस्वास का प्रेम प्याला पिया,
नाम दरियाव तहँ पैसि[5] जीया॥
चढ़ी मतवाल औ हुआ मन साबिता,[6]
फटिक ज्यों फेर नहिं फूटि जावै।
कहै कबीर जिन बास निर्भय किया,
बहुरि संसार में नाहिं आवै॥

(३७)

तरक संसार से फरक फारिग सदा, गरक[7] गुरु ज्ञान में जुगत जोगी।
अर्ध औ उर्ध के बीच आसन किया, बंक प्याला पिवै रस्स भोगी॥

(१) तिसका। (२) गुरु। (३) मतवाला। (४) आदर के योग्य। (५) घुस कर। (६) थिर। (७) डूबा हुआ।

अर्ध दरियाव तहँ जाय डोरी लगी, महल बारीक का भेद पाया ।
कहै कबीर यों संत निर्भय हुआ, परम सुख धाम तहँ प्रान लाया ॥

(३८)

माड़ि मतवाल जहँ ब्रह्म भाठी जरै, पिवै कोइ सूरमा सीस मेलै ।
पाँच को पेलि सैतान को पकरि के, प्रेम प्याला जहाँ अधर झेलै ॥
पलटि मन पवन को उलटि सूधा कँवल, अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै ।
कहै कबीर मस्तान माता रहै, बिना कर ताँतिया नाद गावै ॥

(३९)

आठ हूँ पहर मतवाल लागी रहै,
आठ हूँ पहर की छाक[1] पीवै ।
आठ हूँ पहर मस्तान माता रहै,
ब्रह्म की छौल[1] में साध जीवै ॥
साच ही कहतु औ साच ही गहतु है,
काच को त्याग करि साच लागा ।
कहै कबीर यों साध निर्भय हुआ,
जनम औ मरन का भर्म भागा ॥

(४०)

करत कलोल दरियाव के बीच में,
ब्रह्म की छौल[1] में हंस झूलै ।
अर्ध औ उर्ध की पेंग बाढ़ी तहाँ,
पलटि मन पवन को कँवल फूलै ॥
गगन गरजै तहाँ सदा पावस[2] झरै,
होत झनकार नित बजत तूरा ।
बेद कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ,
कहै कबीर कोइ रमै सूरा ॥

(१) आनन्द । (२) वर्षा ।

संत कबीर साहब

(१)

सुकिरत करि ले नाम सुमिरि ले, को जानै कल की।
जगत में खबर नहीं पल की ॥ टेक॥
झूठ कपट करि माया जोरिन, बात करैं छल की।
पाप की पोट धरे सिर ऊपर, किस बिधि ह्वै हलकी ॥१॥
यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मिट्टी की।
साँस साँस में नाम सुमिरि ले, अवधि घटै तन की ॥२॥
काया अंदर हंसा बोलै, खुसियाँ कर दिल की।
जब यह हंसा निकरि जाहिंगे, मिट्टी जंगल की ॥३॥
काम क्रोध मद लोभ निवारो, याही बात असल की।
ज्ञान बैराग दया मन राखो, कहै कबीरा दिल की ॥४॥

(२)

अखण्ड साहिब का नाम, और सब खण्ड है।
खण्डित मेरु सुमेरु, खण्ड ब्रह्मण्ड है॥
थिर न रहै धन धाम, सो जीवन धुन्ध है।
लख चौरासी जीव, पड़े जम फन्द है ॥
जाका गुरु से हेत, सोई निर्बन्ध है।
उन साधुन के संग, सदा आनंद है ॥
चंचल मन थिर राखु, जबै भल रंग है।
तेरे निकट उलटि भरि पीव, सो अमृत गंग है ॥
दया भाव चित राखु, भक्ति को अंग है।
कहै कबीर चित चेत, सो जगत पतंग है ॥

(३)

हमारे मन कब भजिहो गुरुनाम ॥टेक॥
बालापन जनमत ही खोयो, ज्वानी में ब्यापा काम।
बृद्ध भये तन थाकन लागे, लटकन लागे चाम ॥१॥
कानन बहिर नैन नहिं सूझै, भये दाँत बेकाम।
घर की त्रिया बिमुख होइ बैठी, पुत्र कियो कलकान ॥२॥

उस घर में आने के लिए बारह क्षण लगते हैं, घर के अन्दर स्थित रहने में सोलह तथा पुन: बाहर आने में दस क्षण लगते हैं, अर्थात् पूरक में बारह कुम्भक में सोलह और रेचक में दस, इस प्रकार कुल छत्तीस गणनाओं अथवा जाप का समय लगता है ।[1] यहां 'मन्त्रयोग' के अनुसार श्वास क्रिया (प्राणायाम) का अनुपम चित्रण किया गया है ।

शब्द योग अथवा मन्त्र-योग साधना पर बल देते हुए संत गंगादास कहते हैं कि योगी पुरुष ही योग की युक्तियां जानते और समझते हैं । इस की छह क्रियाएं हैं । छह जन्त्र तथा पन्द्रह मन्त्र इसके लिए बताये गये हैं । योग के ये मन्त्र परम गोपनीय हैं । विषय वासनाओं में लिप्त रहकर योग साधना नहीं हो सकती । योग द्वारा विषयवासना को जड़मूल से ही समाप्त किया जासकता है ।[2] 'स' कार द्वारा शशि (चन्द्र) को तथा 'ह' कार मंत्र द्वारा सूर्य को अर्थात् इड़ा और पिंगला को पार करना योगी पुरुष के लिए सुगम है । ऐसे ही साधक वीत-शोक होकर दिन-रात अनहद नाद का श्रवण करते हैं ।[3]

----

1. घर आते छन बारह खावैं । घर बैठे सोलह छक जावैं ।
   दश खाकर फिर बाहर आवैं ।
   और आगे भी तल्लास करैं, ना मिले तो पछतावे हैं ।।
   - निर्गुण पदावली, 838

2. जुगत जोगी जाने हैं जोग की, छह क्रिया छ: जन्त्र है सोई ।।
   पन्द्रह अति कठिन मन्तर हैं । जो साधै इसकू जन्तर हैं ।
   जोग का परम गोप्य मन्तर है ।
   इस विषय वासना जोग की, जड़, जड़ामूल से खोई ।। - वही, 867

3. सकार शशि भी तर जाते हैं । रवि हकार बाहर आते हैं ।
   रवि शशि जहां मिले पाते हैं ।
   फिर धुन अनहद गत जोग की, दिन रात सुने है वोई ।।
   - वही

ज्योँ नभ मद्धे सुन्न देखिये, सुन्न अंड आकारा।
निःअच्छर तेँ अच्छर तैसे, अच्छर छर बिस्तारा ॥२॥
ज्योँ रबि मद्धे किरन देखिये, किरन मध्य परकासा।
परमातम तेँ जीवब्रह्म इमि, जीव मध्य तिमि स्वाँसा ॥३॥
स्वाँसा मद्धे सब्द देखिये, अर्थ सब्द के माहीँ।
ब्रह्म तेँ जीव जीव तेँ मन योँ, न्यारा मिला सदाहीँ ॥४॥
आपहि बीज बृच्छ अंकूरा, आप फूल फल छाया।
आपहि सूर किरन परकासा, आप ब्रह्म जिव माया ॥५॥
अंडाकार सुन्न नभ आपै, स्वाँस सब्द अरथाया।
निःअच्छर अच्छर छर आपै, मन जिव ब्रह्म समाया ॥६॥
आतम मेँ परमातम दरसै, परमातम मेँ झाँईँ।
झाँई मेँ परछाँईँ दरसै, लखै कबीरा साईँ ॥७॥

॥ शब्द ५ ॥

भाई कोई सतगुर संत कहावै। नैनन अलख लखावै ॥टेक॥
डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेस दृढ़ावै।
प्रान-पूज्य* किरिया तेँ न्यारा, सहज समाधि सिखावै ॥१॥
द्वार न रूँधे पवन न रोकै, नहिँ अनहद अरुझावै।
यह मन जाय जहाँ लग जबहीँ, परमातम दरसावै ॥२॥
करम करै निःकरम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै
सदा बिलास त्रास नहिँ मन मेँ, भोग मेँ जोग जगावै ॥३॥
धरती त्यागि अकासहुँ त्यागै, अधर मड़इया छावै।
सुन्न सिखर के सार सिला पर, आसन अचल जमावै ॥४॥

---

*प्रान से पूजने योग्य सतगुर।

आँख न मूँदौं कान न रुँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं ॥४॥
सब्द निरन्तर से मन लागा, मलिन बासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी ॥ ५ ॥
कहँ कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ॥६॥

॥ शब्द ३१ ॥

गुर बड़े भृंगी हमारे गुर बड़े भृंगी।
कीट सोँ ले भृंग कीन्हा आप सोँ रंगी ॥टेक॥
पाँव औरै पंख औरै और रँग रंगी।
जाति कुल ना लखै कोई सब भये भृंगी ॥१॥
नदी नाले मिले गंगै कहावैं गंगो।
दरियाव दरिया जा समाने संग मैं संगी॥ २॥
चलत मनसा अचल कीन्ही मन हुआ पंगी*।
तत्त मैं निःतत्त दरसा संग मैं संगी ॥३॥
बंध तैं निर्बंध कीन्हा तोड़ सब तंगी।
कह कबीर किया अगम गम नाम रँग रंगी ॥४॥

॥ शब्द ३२ ॥

मैं का से बूझौं अपने पिया की बात री ॥टेक॥
जान सुजान प्रान-प्रिय पिय बिन, सबै बटाऊ जात री १
आसा नदी अगाध कुमति बहै, रोकि काहू पै न जात री २
काम क्रोध दोउ भये करारे, पड़े बिषय रस मात† री ॥३॥

---

*पंगुल। †माते।

क्या लाया क्या लै चला, करि पल्ला भारी रे ॥८॥
कहैं कबीर जग यों चला, जस हारा ज्वारी रे ॥९॥

॥ शब्द ८५ ॥

हिलि मिलि मंगल गाओ मोरी सजनी,
भई प्रभात* बीति गई रजनी† ॥१॥
नाचे कूदे क्या होय भैना‡, सतगुरु सब्द समुझ ले सैना ॥२
स्वाँसा तारी सुरत सँग लाओ, तब हंसा अपना घर पाओ३
अधर निरंतर फूलि फुलवारी, मनसा मारि करो रखवारी॥४
अमी सींच अमृत फल लागा, पावैगा कोइ संत सुभागा॥५
कहैं कबीर गूँगे की सैना, अमी महा रस चाखै नैना ॥६॥

॥ शब्द ८६ ॥

सचमुच खेल ले मैदाना ॥ टेक ॥
सब्द गुरू को दृढ़ करि बाँधो, सुरति की खींच कमाना।
कड़ाबीन करु मन को बस करि, मारो मोह निशाना ॥१॥
फाका फरी ज्ञान का गदका, बाँधि मरहटी बाना।
सनमुख जाय लड़े जो कोई, वही सूर मरदाना ॥२॥
रंजक ध्यान ज्ञान की पट्टी, प्रेम बरूद खजाना।
भरि भरि तोप झड़ाझड़ मारो, लूटो मुलुक बिगाना ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, प्रेम मैं हो मस्ताना।
अमर लोक मैं डेरा दे के, सतगुरु हना§ निसाना ॥४॥

---

*सुबह। †रात। ‡बहिन। §मारा।

धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पद्म जुगत से लाओ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ,
पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है ॥२॥
मूल कँवल दल चतुर बखानो, कलिंग जाप लाल रँग मानो।
देव गनेस तहँ रोपा थानो,
ऋध सिध चँवर ढुलारा है ॥३॥
स्वाद चक्र षटदल बिस्तारो, ब्रह्म* सावित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो,
तहाँ सब्द ओंकारा है ॥ ४ ॥
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिँघासन बिस्नु बिराजा।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा,
लछमी सिव आधारा है ॥ ५ ॥
द्वादस कँवल हृदय के माहीँ, जंग गौर सिव ध्यान लगाईँ।
सोहं सब्द तहाँ धुन छाई,
गन करैँ जैजैकारा है ॥ ६ ॥
दो दल कँवल कंठ के माहीँ, तेहि मध बसे अविद्या बाई।
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुराई,
जहँ स्रँग नाम उचारा है ॥७॥
ता पर कंज कँवल है भाई, बग भौँरा† दुइ रूप लखाई।
निज मन करत तहाँ ठकुराई,
सो नैनन पिछवारा है ॥ ८ ॥

---

*ब्रह्मा। † बकुला और भौंरा अर्थात सेत-श्याम पद।

कँवलन भेद किया निर्वारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
सतसँग कर सतगुरु सिर धारा,
वह सत नाम उचारा है ॥ ९ ॥
आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झिंगा सब्द सुनाओ।
दोनौं तिल इक तार मिलाओ,
तब देखो गुलजारा है ॥ १० ॥
चंद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरबेनी के संध* समाओ,
भोर उतर चल पारा है ॥ ११ ॥
घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई,
बंकनाल धस पारा है ॥ १२ ॥
डाकिनी साकिनी बहु किलकारैं, जम किंकर धर्म दूत हकारैं।
सत्तनाम सुन भागैं सारे,
जब सतगुरु नाम उचारा है ॥ १३ ॥
गगन मँडल बिच उर्धमुख कुइया, गुरुमुख साधू भरभर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन कीया†,
जा के हिये अँधियारा है ॥ १४ ॥
त्रिकुटी महल मैं बिद्या सारा, घनहर‡ गरजैं बजे नंगारा।
लाल बरन सूरज उँजियारा,
चतुरकँवल मँझार सब्द ओंकारा है ॥१५॥

---

*संगम। †करनी। ‡बादल।

साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा ।
दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा,
जहाँ कुलुफ[*] रहा मारा है ॥ १६ ॥
आगे सेत सुन्न है भाई, मानसरोवर पैठि अन्हाई ।
हंसन मिलि हंसा होइ जाई,
मिलै जो अमी अहारा है ॥ १७ ॥
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा ।
द्वादस भानु हंस उँजियारा,
खट दल कँवल मँझार सब्द ररंकारा है ॥१८॥
महा सुन्न सिंध बिषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी ।
ब्याघर[†] सिंघ सरप बहु काटी,
तहँ सहज अचिंत पसारा है ॥ १९ ॥
अष्ट दल कँवल पारब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई ।
बायँ दस दल सहज समाई,
यों कँवलन निरवारा है ॥ २० ॥
पाँच ब्रह्म पाँचो अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हो ।
चार मुकाम गुप्त तहँ कीन्हो,
जा मध बंदीवान पुरुष दरबारा है ॥२१॥
दो पर्बत के संध निहारो, भँवर गुफा तें संत पुकारो ।
हंसा करते केल अपारो,
तहाँ गुरन दर्बारा है ॥ २२ ॥
सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पन्ने महल जड़ाये ।
मुरली बजत अखंड सदाये,
तहँ सोहं झनकारा है ॥ २३ ॥

---

[*] कुफ़ल=ताला । [†] बाघ ।

सोहं हद्द तजी जब भाई, सत्त लोक की हद पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई,
जा को वार न पारा है ॥ २४ ॥

षोड़स भानु हंस को रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंसा करत चँवर सिर भूपा,
सत्त पुरुष दर्बारा है ॥ २५ ॥

कोटिन भानु उदय जे होई, एते ही पुनि चंद्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई,
ऐसा पुरुष दीदारा है ॥ २६ ॥

आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुष की तहँ ठकुराई।
अरबन सूर रोम सम नाहीं,
ऐसा अलख निहारा है ॥ २७॥

ता पर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताहि को राजा।
खरबन सूर रोम इक लाजा,
ऐसा अगम अपारा है ॥ २८ ॥

ता पर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई।
जो पहुँचा जानेगा वाही,
कहन सुनन तेँ न्यारा है ॥ २९ ॥

काया भेद किया निर्बारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
माया अवगति जाल पसारा,
सो कारीगर भारा है ॥ ३० ॥

आदि माया कीन्ही चतुराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई।
अवगति रचन रची अँड माहीं,
ता का प्रतिबिंब डारा है ॥ ३१ ॥

पंचम सुन्न जो अंड के माहीं, सत्तलोक की नकल बनाई।
माया सहित निरंजन राई,
सो सत्त पुरुष दीदारा है ॥ ६ ॥

चौथी सुन्न अंड के माहीं, पद निर्बान की नक़ल बनाई।
अविगत कला ह्वै सतगुरु आई।
सो सोहं पद सारा है ॥ ७ ॥

तीजी सुन्न की सुनो बड़ाई, एक सुन्न के दोय बनाई।
ऊपर महासुन्न अधिकाई,
नीचे सुन्न पसारा है ॥ ८ ॥

सतवीं सुन्न महाकाल रहाई, तासु कला महासुन्न समाई।
पारब्रह्म कर थाप्यो ताही,
सो निःअच्छर सारा है ॥ ९ ॥

छठवीं सुन्न जो निरगुन राई, तासु कला आ सुन्न समाई।
अच्छर ब्रह्म कहैं पुनि ताही,
सोई सब्द ररंकारा है ॥ १० ॥

पंचम सुन्न निरंजन राई, तासु कला दूजी सुन छाई।
पुरुष प्रकिरती पदवी पाई,
सुद्ध सरगुन रचन पसारा है ॥ ११ ॥

पुरुष प्रकृति दूजी सुन माहीं, तासु कला पिरथम सुन आई।
जोत निरंजन नाम धराई,
सरगुन स्थूल पसारा है ॥ १२ ॥

पिरथम सुन्न जो जोत रहाई, ताकी कला अबिद्या बाई।
पुत्रन सँग पुत्री उपजाई,
यह सिंध बैराट पसारा है ॥ १३ ॥

सतवँ अकास उतर पुनि आई, ब्रह्मा बिस्नु समाधि जगाई।
पुत्रन सँग पुत्री परनाई,
यहँ खिंग नाम उचारा है ॥ १४ ॥
छठे अकास सिव अवगति भौंरा, जंग गौर रिधि करतो चौंरा।
गिरि कैलास गन करते सोरा,
तहँ सोहं सिर मौरा है ॥ १५ ॥
पंचम अकास मैं बिस्नु बिराजे, लछमी सहित सिंघासन गाजे
हिरिंग बैकुंठ भक्त समाजे,
जिन भक्तन कारज सारा है ॥ १६ ॥
चौथे अकास ब्रह्मा बिस्तारा, सावित्री सँग करत बिहारा।
ब्रह्म ऋद्धि औंग पद सारा,
यह जग सिरजनहारा है ॥ १७ ॥
तीजे अकास रहे धर्मराई, नर्क सुर्ग जिन लीन्ह बनाई।
करमन फल जीवन भुगताई,
ऐसा अदल पसारा है ॥ १८ ॥
दूजे अकास मैं इन्द्र रहाई, देव मुनी बासा तहँ पाई।
रंभा करती निरत सदाई,
कलिंग सब्द उच्चारा है ॥ १९ ॥
प्रथम अकास मृत्तु है लोका, मरन जनम का नित जहँ धोखा।
सो हंसा पहुँचे सत लोका,
जिन सतगुरु नाम उचारा है ॥ २० ॥
चौदह तबक किया निरवारा, अब नीचे का सुनो बिचारा।
सात तबक मैं छः रखवारा।
भिन भिन सुनो पसारा है ॥ २१ ॥

तू कहै तैसा नहीं, है सो दीखै नहीं
   निगम हूँ कहत नहिं पार जावै ।
कहैं कब्बीर या सैन गूँगा तईं,
   होय गूँगा सोई सैन पावै ॥ २ ॥

॥ ४ ॥

कर्म और भर्म संसार सब करतु है,
   पीव की परख कोइ संत जानै ।
सुरत औ निरत मन पवन को पकर करि,
   गंग और जमुन के घाट आनैं ॥ १ ॥
पाँच को नाथ करि साथ सौंहूँ* लिया,
   अधर दरियाव सुक्ख मानै ।
कह कब्बीर सोइ संत निर्भय घरा,
   जन्म और मरन का भर्म भानै ॥ २ ॥

॥ ५ ॥

गंग उलटी धरो जमुन बासा करो†,
   पलट पँच तीरथ पाप जावै ।
नीर निर्मल तहाँ रैन दिन झरतु है,
   न्हाय जो बहुरि भव सिंध न आवै ॥ १ ॥
फिरत बौरे तहाँ बुद्धि को नास है,
   बाज के झपट मैं सिंघ नाहीं ।

*सन्मुख, सग। †गंग अर्थात दहिना स्वाँसा को चढ़ाओ और जमुन अर्थात बाँई स्वाँसा के साथ मिलाओ।

॥ १६ ॥

छका* अवधूत मस्तान माता रहै,
ज्ञान बैराग सुधि लिया पूरा ।
स्वाँस उस्वाँस का प्रेम प्याला पिया,
गगन गरजै तहाँ बजै तूरा ॥ १ ॥
पीठ संसार से नाम-राता रहै,
जतन जरना लिया सदा खेलै ।
कहैं कब्बीर गुरु पीर से सुरखरू,†
परम सुख धाम तहँ प्रान मेलै ॥ २ ॥

॥ १७ ॥

छका सो थका फिर देह धारै नहीं,
करम औ कपट सब दूर कीया ।
जिन स्वाँस उस्वाँस का प्रेम प्याला पिया,
नाम दरियाव तहँ पैसि‡ जीया ॥ १ ॥
चढ़ी मतवाल औ हुआ मन साबिता§,
फटिक ज्यौं फेर नहिं फूटि जावै ।
कहैं कब्बीर जिन बास निर्भय किया,
बहुरि संसार मैं नाहिं आवै ॥ २ ॥

॥ १८ ॥

तरक संसार से फरक फर्क सदा,
गरक‖ गुरु ज्ञान मैं जुक्त जोगी ।
अर्ध औ उर्ध के बीच आसन किया,
बंक प्याला पिवै ररुस भोगी ॥ १ ॥

*सरशार । †आदर के योग्य । ‡पैठ कर । §थिर । ‖डूबा हुआ ।

हरे हरे बाँस कटा मोरे बाबुल, पानन मड़वा छाय ।
सुरति निरति की भाँवरि डारो, ज्ञान की गाँठि लगाय ॥२॥
सास मरै ननदी मरै रे, लहुरा देवर मरि जाय ।
एक बढ़ैया ना मरै, चरखे का सिरजनहार ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, चरखा लखो न जाय ।
या चरखे को जो लखे रे, आवा गवन छुटि जाय ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

जहँ लोभ मोह के खंभ दोऊ, मन रच्यो है हिंडोर ।
तहँ झूलैं जीव जहान, जहँ कतहूँ नहिं थिर ठौर ॥ १ ॥
चतुरा झूलैं चतुराइयाँ, औ झूलैं राजा सेव ।
चंद सूर दोऊ नित झूलैं, नाहीं पावैं भेव ॥ २॥
चौरासी लच्छहुँ जिव झूलैं, झूलैं रबि ससि धाय ।
कोटिन कल्प जुग बीतिया, आये न कबहूँ हाय ॥ ३ ॥
धरनी आकासहु दोउ झूलैं, झूलैं पवनहु नीर ।
धरि देही हरि आपहु झूलैं, लखहीं संत कबीर ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥

मोको कहाँ ढूँढो बंदे, मैं तो तेरे पास में ॥ टेक ॥
ना मैं छगरी* ना मैं भेंड़ी, ना मैं छुरी गँडास में ॥१॥
नहीं खाल में नहीं पूँछ में, ना हड्डी ना मास में ॥२॥
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ॥३॥
ना तौ कौनो क्रिया कर्म में, नहीं जोग बैराग में ॥४॥
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में॥५॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरो पुरी मवास† में ॥६॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में ॥७॥

---

*बकरी । † सरन ।

॥ शब्द ७ ॥

जो कोइ या बिधि मन को लगावै। मन के लगाये गुरु पावै१
जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढोलिया ढोल बजावै ।
अपना बोझ धरै सिर ऊपर, सुरति बाँस पर लावै ॥२॥
जैसे भुवंगम* चरत बनी मैं, ओस चाटने आवै ।
कभी चाटै कभी मनि तन चितवै, मनि तज प्रान गँवावै॥३
जैसे कामिनि भरत कूप जल, कर छोड़े बतरावै† ।
अपना रँग सखियन सँग राचै, सुरति डार पर लावै ॥४॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, अपनी काया जरावै ।
मातु पिता सब कुटुँब तियागै, सुरत पिया पर लावै ॥५॥
धूप दीप नैवेद अरगजा, ज्ञान की आरत लावै ।
कहँ कबीर सुनो भाइ साधो, फेर जनम नहिं पावै ॥६॥

॥ शब्द ८ ॥

ऐसी दिवानी दुनियाँ, भक्ति भाव नहिँ बूझै जी ॥१॥
कोई आवे तो बेटा माँगै, यही गुसाँईं दीजै जी ॥२॥
कोई आवे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी ॥३॥
कोई आवै तो दौलत माँगै, भेँट रुपैया लीजै जी ॥४॥
कोई करावे ब्याह सगाई, सुनत गुसाँईं रीझै जी ॥५॥
साँचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी ॥६॥
कहँ कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी ॥७॥

॥ शब्द ९ ॥

सतगुरु चारो बरन बिचारी ॥ टेक ॥
ब्राह्मन वही ब्रह्म को चीन्है, पहिरै जनेव बिचारी ॥१॥
साध के सौ गुन जनेव के नौ गुन, सो पहिरे ब्रह्मचारी॥२॥

*साँप। † बात करती है।

भेद

॥ शब्द १ ॥

[प्रश्न गोरखनाथ]

कबिरा कब से भये बैरागी, तुम्हरी सुरत कहाँ को लागी।

[उत्तर]

धुंधमई[1] का मेला नाहीं, नहीं गुरू नहिं चेला।
सकल पसारा जेहि दिन नाहीं, जेहि दिन पुरुष अकेला॥
गोरख हम तब के बैरागी, हमरी सुरत नाम से लागी॥१॥
ब्रम्हा नहिं जब टोपी दीन्हा, बिस्नु नहीं जब टीका।
सिव सक्ती के जन्मौ नाहीं, जबै जोग हम सीखा॥२॥
सतजुग मैं हम पहिरि पाँवरी[2], त्रेता झोरी झंडा।
द्वापर मैं हम अड़बंद[3] पहिरा, कलउ फिर्यौ नौ खंडा ३
कासी मैं हम प्रगट भये हैं, रामानंद चिताये।
समरथ कौ परवाना लाये, हंस उबारन आये॥४॥
सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भगति उतंगा।
कहै कबीर सुनो हो गोरख, चलो सबद के संगा॥ ५॥

॥ शब्द २ ॥

साहिब हम मैं साहिब तुम मैं जैसे तेल तिलन मैं।
मत कर बंदा गुमान दिल मैं, खोज देखिले तन मैं॥टेक
चाँद सुरज के खंभ गाड़ि के, प्रान आसन कर घट मैं।
इँगला पिंगला सुरत लगा के, कमल पार कर घर मैं॥१
वा मैं बैठी सुखमन नारी, झुला झुलत बँगलन मैं।
कोटि सूर जहँ करते झिलि मिलि, नील सर सोती गगन मैं॥२

---

(१) धुंधूकार मात्र। (२) खड़ाऊँ। (३) कोपीन।

॥ शब्द ६ ॥

एक नगरिया तनिक सी मैं, पाँच बसैं किसान ।
एक बसै धरती के ऊपर, एक अगिन मैं जान ॥ १ ॥
दोय बसैं पवना पानी मैं, एक बसै असमान ।
पाँच पाँच उनकी घरवाली, नित उठि माँगैं खान ॥२॥
इनहीं से सब डुबकत डोलैं, मुकद्दम और दिवान ।
खान पान सब न्यारा राखैं, मन मैं उन के मान ॥ ३ ॥
जगत की आसा तजि दे हंसा, धरि ले पिय को ध्यान ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बैठो जाइ बिवान ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

चुवत अमीँरस भरत ताल जहँ, सबद उठै असमानी हो ॥ टेक
सरिता उमड़ सिन्ध को सोखै, नहिं कछु जात बखानी हो ॥१
चाँद सुरज तारागन नहिं वहँ, नहिं वहँ रैन बिहानी हो ॥२
बाजे बजैं सितार बाँसुरी, ररंकार मृदु बानी हो ॥ ३ ॥
कोटि झिलमिली जहँ वहँ झलकै, बिनु जल बरसत पानी हो ॥४॥
सिव अज[1] बिस्नु सुरेस सारदा, निज निज मति उनमानी हो ॥५॥
दस अवतार एक तत राजैं, अस्तुति सहज से आनी हो ॥६॥
कहै कबीर भेद की बातैं, बिरला कोइ पहिचानी हो ॥७॥
कर पहिचान फेर नहिं आवै, जम जुलमी की खानी हो ॥८

॥ शब्द ८ ॥

नाम बिमल पकवान मनै हलवैया ॥ टेक ॥
ज्ञान कराही प्रेम घीव करि, मन मैदा कर सान ।
ब्रम्ह अगिनि उदगारि के, इक अजब मिठाई छान ॥१॥
तनै बनावो पालरा, मन पूरा करि सेर ।
सुरत निरत कै डाँड़ी बनवो, तोलत ना कछु फेर ॥ २॥

---

(१) ब्रह्मा ।

सत्रह संख पर अधर द्वीप जहँ, सब्दातीत* बिराजै ।
निरतै संखी बहु बिधि सोभा, अनहद बाजा बाजै ॥९॥
ता के ऊपर परम धाम है, मरम न कोऊ पाया ।
जो हम कही नहीं कोउ मानै, ना कोउ दूसर आया ॥१०॥
बेदन साखी सब जिव अरुझे, परम धाम ठहराया ।
फिर फिर भटके आप चतुर होइ, वह घर काहु न पाया ॥११॥
जो कोइ होइ सत्य का किनका, सो हम को पतियाई ।
और न मिलै कोटि कहि थाके, बहुरि काल घर जाई ॥१२॥
सोरह संख के आगे समरथ, जिन जग मोहिँ पठाया ।
कहैँ कबीर आदि की बानी, बेद भेद नहिँ पाया ॥१३॥

॥ महिमा आदि धाम ॥

॥ शब्द १ ॥

सखिया वा घर सब से न्यारा, जहँ पूरन पुरुष हमारा ॥टे०॥
जहँ नहिँ सुख दुख साँच झूठ नहिँ, पाप न पुन्न पसारा ।
नहिँ दिन रैन चन्द नहिँ सूरज, बिना जोति उँजियारा ॥१॥
नहिँ तहँ ज्ञान ध्यान नहिँ जप तप, बेद कितेब न बानी ।
करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब उहाँ हेरानी ॥२॥
धर नहिँ अधर न बाहर भीतर, पिंड ब्रह्मँड कछु नाहीं ।
पाँच तत्त्व गुन तीन नहीं तहँ, साखी सब्द न ताहीं ॥३॥
मूल न फूल बेल नहिँ बीजा, बिना बृच्छ फल सोहै ।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिँ, स्वाँसा लेख न कोहै ॥४॥
नहिँ निर्गुन नहिँ सर्गुन भाई, नहिँ सूच्छम अस्थूलं ।
नहिँ अच्छर नहिँ अविगत भाई, ये सब जग के भूलं ॥५॥

* निर्णायक शब्द ।

प्रीत पुरानी नई लगन है, या दिल मैं खटकी ।
और नजर कछु आवत नाहीं, नहिँ मानै हटकी ॥४॥
प्रेम की डोरी मैं मन लागा, ज्ञान डोर झटकी ।
जैसे सलिता सिंधु समानी, फेर नहीं पलटी ॥५॥
गहु निज नाम खोज हिरदे मैं, चीन्हि परै घट की ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, फेर नहीं भटकी ॥६॥

॥ शब्द २ ॥

अजर अमर इक नाम है सुमिरन जो आवै ॥टेक॥
बिन मुखड़ा से जाप करो, नहिं जीभ डोलावो ।
उलटि सुरति ऊपर करो, नैनन दरसावो ॥१॥
जाहु हंस पच्छिम दिसा, खिरकी खुलवावो ।
तिरबेनी के घाट पर, हंसा नहवावो ॥२॥
पानी पवन की गम नहीं, वोहि लोक मँझारा ।
ताही बिच एक रूप है, वोहि ध्यान लगावो ॥३॥
जिमीं असमान उहाँ नहीं, वो अजर कहावै ।
कहैं कबीर सोइ साध जन, वा लोक मँझावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

हंसा निसु दिन नाम अधारा ॥टेक॥
सार सब्द हिरदे गहि राखो, सब्द सुरति करु मेला ।
नाम अमी रस निसु दिन चाखो, बैठो अधर अधारा ॥१॥
यह संसार सकल जम फंदा, अरुझि रहा जग सारा ।
निरमल जोति निरंतर झलकै, कोऊ न कीन्ह बिचारा ॥२॥
माया मोह लोभ मैं भूले, कर्म भर्म ब्योहारा ।
निस दिन साहेब संग बसत है, सार सब्द टकसारा ॥३॥

॥ महिमा शब्द ॥

॥ शब्द १ ॥

हंसा सब्द परख जो आवै ।
करि अकास* चित तान पार को, मूल सब्द तब पावै ॥१॥
पाँच तत्त पच्चीस प्रकिरती, तीनौं गुनन मिलावै ।
अंक परवाना जबही पावै, तब वह संत कहावै ॥२॥
अंक परवाना सब्द अतीत है, जो निसु दिन गोहरावै ।
अंस बंस ह्वै मलयागिरि परसत, सत्त सबै बिधि पावै ॥३॥
एकै सब्द सकल जग पूरा, सुरति रहनि जब आवै ।
चंद सुरज दुइ साखी देई, सुखमनि चँवर ढुरावै ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाइ हंसा, या पद को अरथावै ।
जगमग जोत झलाझल झलकै, निर्मल पद दरसावै ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

हंसा परखु सब्द टकसारा ॥ टेक ॥
बिन पारख कोइ पार न पावै, भूला जग संसारा ।
सब आये ब्योपार करन को, घर की जमा गँवाया ॥१॥
राम रतन पहलाद पारखी, नित उठ पारख कीन्हा ।
इंद्रासन सुख आसन लीन्हा, सार सब्द ना चीन्हा ॥२॥
अब सुनि लेहु जवाहिर मोदी, खरा खोट नहिं बूझा ।
सिव गोरख अस जोगी नाहीं, उनहूं को नहिं सूझा ॥३॥
बड़ बड़ साधू बाँधे छोरे, राम भाग दुइ कीन्हा ।
'रारा' अच्छर पारख लीन्हा, 'मा' हिं भरम तज दीन्हा ॥४॥
जो कोइ होय जौहरी जग मैं, सो या पद को बूझै ।
तीन लोक औ चार लोक लौं, सब घट अंतर सूझै ॥५॥

---

*आकाश के अर्थ छिद्र के भी हैं—यहाँ अभिप्राय तीसरे तिल से है ।

जल केरी ज्यों कूकुही, जल माहिं रहानी ।
पँख पानी बेधै नहीं, कछु असर न जानी ॥२॥
मीन तिरै जल ऊपरे, जल लागै न भारा ।
आड़ अटक मानै नहीं, पैड़ै जल धारा ॥३॥
जैसे सीप समुद्र मैं, चित देत अकासा ।
कुंभकला* है खेलही, तस साहेब दासा ॥४॥
जुगति जमूरा† पाइ कै, सरपे लपटाना ।
बिष वा के बेधे नहीं, गुरु गम्म समाना ॥५॥
दूध भात घृत भोजन, बहु पाक मिठाई ।
जिभ्या लेस लगै नहीं, उन कै रुसनाई ॥६॥
बामी मैं बिषधर बसै, कोइ पकरि न पावै ।
कहैं कबीर गुरु मंत्र से, सहजै चलि आवै ॥७॥

॥ शब्द ५ ॥

नगर मैं साधू अदल चलाई ॥टेक॥
सार सब्द को पटा लिखावो, जम से लेहु लड़ाई ।
पाँच पचीस करो बस आपन, सहजे नाम समाई ॥१॥
सूरति सब्द एक सम राखो, मन का अदल उठाई ।
काम क्रोध की पूँजी तौलो, सहज काल टरि जाई ॥२॥
सूरति उलटि पवन के सोधो, त्रिकुटी मध ठहराई ।
सोहं सोहं बाजा बाजै, अजब पुरी दरसाई ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु बस्तु लखाई ।
अरध उरध बिच तारी लावो, तब वो लोके जाई ॥४॥

---

* घड़ों का खेल जिन्हें सिर पर रख कर नट बाँस पर चढ़ते हैं ।
† जहरमोहरा जिससे साँप का ज़हर असर नहीं करता ।

॥ शब्द २ ॥

अबकी बार उबारिये, मेरी अरजी दीनदयाल हो ॥टेक॥
आई थी वा देस से हो, भई परदेसिन नारि।
वा मारग मोहिं भूलि गो, (जासे) बिसरि गयो
निज नाम हो ॥१॥
जुगन जुगन भरमत फिरी हो, जम के हाथ बिकाय।
कर जोरे बिनती करौं हो, मिलि बिछुरन
नहिं होय हो ॥२॥
बिषम नदी बिकरार है हो, मन हठ करिया धार।
मोह मगर वा के घाट में, (जिन) खायो
सुर नर झारि हो ॥३॥
सब्द जहाज कबीर के हो, सतगुरु खेवनहार।
कोइ कोइ हंसा उतरिहैं हो, पल में लेउँ छोड़ाइ हो ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

साहेब मैं ना भूलौं दिन राती ॥ टेक ॥
जैसे सीपि रहै जल भीतर, चाहत नीर सुवाँती।
बारह मास अमी रस बरसै, ता से नाहिं अघाती ॥१॥
जैसे नारि चहै पिय आपन, रहै बिरह रस माती।
अंतर वा के उठै मलोला, बिरह दहै तन छाती ॥२॥
गम्म अगम कोउ जानत नाहीं, रोकै काल अचानक घाटी।
या तैं नाम से लगन लगाओ, भक्ति करो दिन राती ॥३॥
साहेब कबीर अगम के बासी, नाहिं जाति नहिं पाँती।
निसु दिन सतगुरु चरन भरोसे, साध के संग सँगाती ॥४॥

टोहि लया सतसंग पाइ कै, बिन गुरु कौन कही ।
सोना थीर कसौटी नाहीं, कैसे कै समुझि परी ॥३॥
भेदी होय सो भर भर पीवै, अनभेदी भरम फिरी ।
कहैं कबीर मिलैं जो सतगुरु, जीवन मुक्त करी ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

जो कोइ निरगुन दरसन पावै ॥टेक॥
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै ।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै ॥१॥
बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमि रस अजर चुवावै ।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैन न पलक डोलावै ॥२॥
गगन मँदिल मैं फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै ।
इँगला पिँगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै ॥३॥
सुन्न महल मैं पुरुष बिराजै, जहाँ अमर घर छावै ।
कहैं कबीर सतगुरु बिन चीन्हे, कैसे वह घर पावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

पिया कै खोजि करै सो पावै ॥टेक॥
ई करता बसि या घट भीतर, कहत न कछु बनि आवै ।
स्वाँसा सार सुरति मैं राखै, त्रिकुटी ध्यान लगावै ॥१॥
नाभि कमल अस्थान जीव का, स्वाँसा लगि लगि जावै ।
टहरत नाहिं पलक निस बासर, हाथ कवन बिधि आवै ॥२॥
बंक नाल होइ पवन चढ़ावै, गगन गुफा ठहरावै ।
अजपा जाप जपै बिनु रसना, काल निकट नहिं आवै ॥३॥
ऐसी रहनि रहै निस बासर, करम भरम बिसरावै ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बहुरि न भव जल आवै ॥४॥

मिलो मिलो सतगुरु से, धर्मराय नहिँ खूँट गहै ॥२॥
जौ लैाँ अटक न छूटै, तौ लैाँ भर्म खुवार करी ॥३॥
दुबिधा के मारे, सुर नर मुनि बेहाल भये ॥४॥
कहि कहि समुझाऊँ, तोहि मन गाफिल खबर नहीँ ॥५॥
भवसागर नदिया, साहेब कबीर गुरु पार करी ॥६॥

॥ शब्द ७ ॥

ऐसी रहनि रहै बैरागी ।
सदा उदास रहै माया से, सत्तनाम अनुरागी ॥१॥
छिमा की कंठी सील सरैानी*, सुरति सुमिरनी जागी ।
टोपी अभय भक्ति माथे पर, काल कल्पना त्यागी ॥२॥
ज्ञान गूदरी मुक्ति मेखला, सहज सुई लै तागी ।
जुक्ति जमात कूबरी करनी, अनहद धुनि लै लागी ॥३॥
सब्द अधार अधारी कहिये, भीख दया की माँगी ।
कहैँ कबीर प्रीति सतगुरु से, सदा निरंतर लागी ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

सोइ बैरागी जिन दुबिधा खोई ॥ टेक ॥
टोपी तंत सुमिरनी चितवे, सेली अनहद होई ।
नाम निरंतर चोलना पहिरे, सो लै सुरति समोई ॥१॥
छिमा भाव सहज की चोबी†, झोरी ज्ञान की डोरी ।
दिल माँगे तो सौदा कीजे, ऊँच नीच ना कोई ॥२॥
भुँइ कर आसन अकास के। ओढ़न, जोति चंद्रमा सोई ।
रैन पौन दुइ करै रखवारो, दृढ़ आसन करि सोई ॥३॥
उनमुनि दृष्टि उदास जगत मेँ, भरम के महल ढहाई ।
करि असनान सोहं सागर मेँ, बिमल अनहद धुनि होई ॥४

---

* कान मैं लगाने की डाट । † छड़ी ।

(२)

उठो सोहंगम नारि, प्रीति पिया सों करो।
यह उरले[†] ब्योहार, दूर दुरमति धरो॥ १॥

*तजो, छोड़ो। †संसारी।

पाँच चोर बड़ जोर, संगि एते घने।
इन ठगियन के साथ, मुसै घर निसु दिने॥ २॥
सोवत जागत चोर, करै चोरी घनी।
आपु भये कुतवाल, भली बिधि लूटहीं॥ ३॥
द्वादस नगर मँझार, पुरुष इक देखिये।
सोभा अगम अपार, सुरति छबि पेखिये॥ ४॥
होत सब्द घनघोर, संख धुनि अति घनी।
तंतन की झनकार, बजत झीनी झिनी॥ ५॥
है कोइ महरम साध, भले पहिचानिये।
सतगुरु कहैं कबीर, संत की बानि ये॥ ६॥

(३)

गुन करु बवरी गुन करु, जब लग नैहर बास हो।
पुनि धनि जैहौ ससुरे, कंत पियारे पास हो॥ १॥
जब लग राज पिता घर, गुन करि लेहु हो।
सासु ननद के बुलवन, उत्तर का देहु हो॥ २॥
आये भाट बराम्हन, लगन धराइन हो।
लगन सुनत गवने कै, मुँह कुम्हिलाइन हो॥ ३॥
बाजन बाजै गहगहा, नगर उठै झनकार हो।
प्रीतम कहूँ न देखल, आयो चालनहार हो॥ ४॥
लै रे उतारिन तेहि घर, जहँ दिस न दुवार हो।
मन मन झुरवै दुलहिनि, काह कीन्ह करतार हो॥५॥
जो मैं जनतिउँ ऐसन, गुन करि लेतिउँ हो।
जातिउँ साहिब के देसवाँ, परम सुख पैातिउँ हो॥ ६॥
चेति ले बवरी चेति ले, चेति लेहु दिन चारी हो।
यह संगत सब छूटि है, कहत कबीर बिचारी हो॥७॥

तासु के बदन की कौन महिमा कहौं,
भासती देंह अति नूर छाई ॥ ६ ॥
महल कंचन बने मनी ता मैं जड़े,
बैठ तहँ कलस अखंड छाजे।
अचिंत के परे अस्थान सोहंग का,
हंस छत्तीस तहवाँ बिराजे ॥ ७ ॥
नूर का महल औ नूर की भूमि है,
तहाँ आनन्द सोँ दुंद भाजे।
करत किलोल बहु भाँति से संग इक,
हंस सोहंग के जो समाजे ॥ ८ ॥
हंस जब जात षट चक्र को बेधि के,
सात मोकाम मैं नजर फेरा।
परे सोहंग के सुरति इच्छा कही,
सहस बावन जहाँ हंस हेरा ॥ ९ ॥
रूप की रासि* तैं रूप उन को बनो,
नाहिं उपमाहिं दूजी निबेरा।
सुर्त से भैंटि के सब्द की टेक चढ़ि,
देखि मोकाम अंकूर केरा ॥ १० ॥
सून्य के बीच मैं बिमल बैठक तहाँ,
सहज अस्थान है गैब केरा।
नवो मोकाम यह हंस जब पहुँचिया,
पलक बिलंब ह्वाँ कियो डेरा ॥ ११ ॥

*ढेर।

[न] निरभै निडर नाम लौ लावै, नकल चीन्हि परित्यागै।
नाद बिंद तेँ न्यार बतायो, सुरति सोहंगम जागै॥
निराधार निःतत्त्व निअच्छर, निःसंसय निःकामी।
निःस्वादी निर्लिप्त बियापित, निःचिंत अगुन सुख धामी॥
नाम-सनेही चेतहू, भाखौँ घर की डोरि।
निरखो गुरु गम सुरति सोँ, तब चलि तन जम तोरि॥२०॥
[प] पाप पुन्य मैँ जिव अरुभाना, पार कौन बिधि पावै।
पाप पुन्य फल भुक्तै तन धरि, फिर फिर जम संतावै॥
प्रेम भक्ति परमातम पूजा, परमारथ चित धारै।
पावन जन्म परसि पद पैहै, पारस सब्द बिचारै॥
पीव पीव करि रटन लगावै, परिहरि कपट कुचाल।
प्रीतम बिरह बिजोग जेहिँ, पाँव परै तेहिँ काल॥२१॥
[फ] फरामोस* कर फिकर फेल बद, फहम करै दिल माहीँ।
परफुल्लित सतगुरु गुन गावै, जम तेहि देखि डेराही॥
फाजिल सो जो आपा मेटै, फना† होय गुरु सेवै।
फाँसी काटै कर्म भर्म की, सत्त सब्द चित देवै॥
फिरै फिरै नर भरम बस, तीरथ माहिँ नहाय।
कहा भये नर घोर के पीये, ओस तेँ प्यास न जाय॥२२॥
[ब] ब्रह्म बिदित है सर्ब भूत मैँ, दूसर भाव न होय।
बर्त्तमान चित चेतै नाहीँ, भूत भविष्य बिलोय॥
बड़े पढ़े ते बिषम बुद्धि लिये, बोलनहार न जोहै‡।
ब्रह्म दुखित करि पाहन पूजै, बरबस आपु बिगोहै§॥

---

*भुला कर। † मृतक। ‡ खोजै। § बिगाड़ै।

सो ही उदासी उदास कमावे। निहसंग शबद के भेद को पावे॥
सो ही जोगी सत जुगत विचारी। आलख शबद घट परगट धारी॥
सो बिहंगम सो ही अबधूता। नित ही खोजे सत शबद सरूपा॥
सो सिख साचा गुर सिखया धारी। शबद अगोचर की कथा विचारी॥
सो ही पंडत वेद तत्त बूझे। जो समदृष्ट शबद तत्त सूझे॥
सो ही मौनी मन मगन समाया। शबद आनाद रतन चित आया॥
सो ही ज्ञानी तत्त का वेता। एको ओट शबद चित लेता॥
सो ही दाता सरब दातारी। साची सम्पत जो शबद विचारी॥

सो ही सूरा मुकतगढ़ जीते। जो घट माहीं शबद परीखे॥
सो तेजस्वी तेज बलधारी। शबद ब्रह्म जो तेज विचारी॥
सो ही सूरा नाम पूरन रनजीत। मन में राखे एक शबद परीत॥
सो ही अवतार पैग़म्बर जान। अबनाशी शबद जिस करी पछान॥
पूरन पूरा अपरम बलधारी। मन बचन करम जो शबद विचारी॥
सकल जीयाँ में पावे वडयाई। गुर के शबद में जो प्रीत लगाई॥

शबद अनहद पहचानयों, जो अन्तर करे पुकार।
'मंगत' सो निज रूप है, सब में पूरन सार॥ 856

साधू तो सब ही भले, अपनी अपनी थाईं।
जो सत शबद के पारखू, सो ही संत कहलाईं॥

आध व्याध सब मन की नासी। निर्मल शबद घट सुरत निवासी॥
धंदा धावन मन जाए बिकारा। घड़िए शबद अन्तर टकसारा॥
सत विश्वास श्रद्धा धारी। अधिक प्रीत गुर बचन विचारी॥
मन के भरम का करे उपाये। सत मारग में प्रेम बढ़ाये॥
पाप पुन्न की करे पहचाना। मन को ठाके करे करम सुजाना॥
साचा त्याग जभी चित आवे। सतगुर परताप शबद रस पावे॥
नित नित सोधे शबद अगामी। जोग का जुगता परसे सो स्वामी॥
जप तप संजम पर-उपकारा। धारे करम होवे सचयारा॥
एको नाम मन माहीं कमावे। परम परकाश शबद रस पावे॥
अन्तर बाहर पवन की धारा। बारह सोलह सम कर विचारा॥
बाहर जाए हकार सो कहिए। भीतर आए साकार सो लहिए॥
हकार साकार का मेल मिलाए। अद्‌भुत शबद का परगट पाए॥
पवन आरम्भे ले नाम का खण्डा। अकथ कथा कथ जोत परचण्डा॥
साचा शबद मन माहीं परोवे। कोट जनम की मैल को धोवे॥
दृढ़ अभ्यास नाम कमाए। शबद का निरना सो गुरमुख पाए॥
बैठ इकान्त प्रभ भगत कमावे। करे अभ्यास गृहस्ती तर जावे॥
गृहस्ती विरक्ती दोनों हैराने। जब तक सार शबद नहीं जाने॥
शबद ही पार लँघावनहारा। जो जन सोधे उतरे पारा॥

बार बार विचारया, सब जग बिख की खान।
'मंगत' शबद कमावना, जग जीवन सार निधान॥ 858

एक नाम की रखे परीत। परसे शबद परम सुखरीत॥
ज्यों ज्यों मन सतनाम कमाए। मिटे अन्धकार सत शबद लखाए॥
अच्छर जपे निरअच्छर होई। आनन्दसरूप में सुरत भगोई॥
नाभ कँवल है अचरज थाना। जाँ में वसया श्री भगवाना॥
सतगुर जुगत मिल नाम कमाए। उरध कँवल परगासत पाए॥
खुले सुखमनी जीव तृखा विनासे। परगट शबद तब अन्तर भासे॥
छिन छिन तिस में सुरत परोए। मनसा लीन मन निर्मल होए॥
अखण्ड सुरत जब नाम प्रभ चीने। काल करम की व्याध तब छीने॥
गरजे पवन खुले कपाट। परसे शबद उनमुन के घाट॥
उनमुन घाटी अजब समाजा। निराकार वहाँ रह्यो बराजा॥
जाप अजपा सुरत इकागर। ब्रह्मसरूप परसे उजागर॥
एक धुन्न सुरत परोई। तब ये काया निर्मल होई॥
जीवन मरन का निरनय पाया। उनमुन पुरष अकाल ध्याया॥
आपा तजे पछाने आप। एको शबद उनमुन व्याप॥
धन्न योगी जो जुगत विचारे। अनहद परसे पुरख आपारे॥
नित नित शबद में करे कुलेले। इच्छयाचारी सदा अडोले॥
निर्मल दिसा गुरदेव दिखलाई। अद्भुत बानी अन्तर पाई॥
गरजे मेघ बजे खड़ताल। दमके दामन अजब रवाल॥
उमढे जोत बाजे घट तूर। गुरमुख जीवे जप नाम हज़ूर॥
ग़ैब की बानी घट करी पछान। अबगत चानन देखा भगवान॥
अपने मन में रीज रिजाया। गूँगे गुड़ ज्यों नहीं सार जिताया॥

जिस जाना सो तृपत को भाखे। जुग जुग जीवे हर रस चाखे॥
विषे विकार से मन भयो अतीता। सत शबद घर दर्शन लीता॥
दरस परस से अत भयो निहाल। जप जप जीवे इक नाम किरपाल॥

अबगत शबद पहचानया, जम काल की मिटी तरास।
'मंगत' आठ पहर रीजत रह्यो, मन एके शबद निवास॥ 859

शबद को पीवे भयो गुरमुख मतवाला। अद्भुत दर्शन जोत उजयाला॥
अमरत कुआँ गगन में फूटा। गुह्य ध्यान में अमीरस लूटा॥
देव दानव करें अरदासा। अजरपुरष मिल अखण्ड सुख भासा॥
जुग जुग खोजें जिसको गुनी ज्ञानी। सो शोभा गुर पल दिखलानी॥
लोमस ध्याए मारकण्डे मन ध्यान। जुग जुग पूजे भसुण्ड निर्वान॥
मुनी सनकादिक नारद चिताए। तिस शबद की महमा वरनी ना जाये॥
चतुर्मुख ब्रह्मा नित उस्तत कीजे। नेती नेती परमान लखीजे॥
शेष सहँसमुख करे नित जाप। लखा ना जाई प्रभ का परताप॥
कपल कनाद करे गौतम ध्यान। अष्टावक्र करे जनक पछान॥
मुनी व्यास सुखदेव ध्याये। जुग जुग सिमरें पर पार नहीं पाये॥
अनमत मूढ़ा क्या करे बखान। ऊँच से ऊँची शोभा भगवान॥
दीनभाओ निवाओ सीस। पलक ना विसरो सो जगदीश॥
चार जुगाँ में भगती बहुरंग। कलजुग में सुन नाम परसंग॥
नाम जपे जाए काल से छूट। अनन भगत रस अमरत लूट॥

करे अश्वमेध होवे कल्याना। ब्रह्ममुख आहूती घट करी पहचाना॥
ज्ञेयी ज्ञाता किवाड़ को खोले। सार प्रान के तत्त को तोले॥
निरदेह पुरख आतम तत्त बूझे। जनम जनम का संकट भूझे॥
बिना सीस ओह करे अरदास। दरसे पुरष प्रान निर्वास॥
जुगत जतन पायो पूरन रीती। गुपत भेद तब कियो परीखी॥

अमरत कथा बखानी, ज्ञान ध्यान तत्त सार।
'मंगत' परसे जो गुनी, सो सतगुर बलिहार॥890

ऐसी जुगत पछाने जोई। साच जोगिन्दर कहलावे सोई॥
मूल द्वार में बन्ध लगाना। आसन सहज जुगत से लाना॥
उलट अपान प्रान में लेवे। सतगुर मेल जुगत सत सेवे॥
परम जतन नित्यानित राखे। उल्ट बुद्धी घर अमरत चाखे॥
छिन छिन पवन का सोधन कीजे। विखमी सिन्ध खुले अमीरस पीजे॥
भौरा लुगध्या शबद के माहीं। उरध कँवल परगास लखाईं॥
अष्टदल कँवल को छीना। उलट पलट पवन को दीना॥
सुरत इकागर पाताल समाई। उलट पवन घर गरजत रहाई॥
सूक्षम सुर धुन नाद गुंजारे। उदर दीप में खेल अपारे॥
आसा मनसा से भयो विरक्ता। सतगुर जुगती जोग संजुगता॥
दृढ़ विश्वास पवन को सोधा। खटचकरन से भया निरोधा॥
उलट नाद तरबैनी बोले। चौथी सुन्न कोई गुरमुख खोले॥
धन्न योगी जिस योग लखाया। झुनतकार अनहद घर पाया॥
छिन छिन नाद बोले तिरनाली। दमके दामन अजब रवाली॥
गरजे मेघ ब्रह्मण्ड को फोड़े। सतसरूप चित चरनी जोड़े॥
आलख रूप का लेख लखाया। निराकार का दर्शन पाया॥
पंच शबद धुनकार बजावे। धन्न योगी जो जुगत लखावे॥
ईड़ा पिंगला मथ कर लीजे। सुखमना माहीं पवन भरीजे॥
उल्टे नेत्तर धरे ध्यान। धन्न योगी जुगता परवान॥
पवन का मिथना खोले किवाड़ा। उल्टी नागन शबद विचारा॥
स्वास सुरत इक तार परोई। शबद कला तब परगट होई॥
शून्यंगकार नाद निर्वाना। बन्धी छूटे सुन मुकत निधाना॥
परगट शबद भरम जलाए। छाया माया सब कलह वँजाए॥
रोम रोम में रारंगकारा। उठ जोगी घर सुन पुकारा॥

शबद खोज ब्रह्मा थके, सुर नर मुनी और देव।
'मंगत' शबद पछाने सोई, ले सच जुगती गुरदेव॥ 891

पूरन पुरख सोई गुर मेरा। जो इस पद का करे नबेड़ा॥

नाम अमोलक साहब दा, करो हिरदे माईं पछान।
नित पावें सत शान्ती, सुन सतगुर का विख्यान॥
मन का वेग सब नास होए, मनसा भये लवलीन।
साचा नाम पहचान के, काल जाल भयो छीन॥
नाम सार को पींवदे, जुग जुग हरजन मीत।
भरमन सकली छाड के, घालें दृढ़ परतीत॥
नाम रस जब रसयो, परसा उपरस धाम।
कँवल निरालम ज्यों नीर में, ऐसे चित निष्काम॥
भव जल दुस्तर आपार है, सूझ बूझ नहीं पात।
'मंगत' सो निस्तर भए, जो लखे नाम की वाट॥ 9
तन रूपी ये खेत है, नाम मेघ की धार।
मुकत फल परगट भयो, सुन साचे गुर विचार॥
नाम की महमाँ जान के, हरजन भए निरधार।
छिन छिन सिमरें प्रीत से, उतरें भवनिध पार॥
औगुनकारी मन ये, नित औगुन में जाए।
आड़ा बाँधे नाम का, तब ये दूत ठहराए॥
अगन सरीखा तापता, धारे भरम ग़ुबार।
साचा नाम जब गुर दिया, तब भागे सकल विकार॥
ज्ञान ध्यान बहुता करे, पर डोले अन्तर नीत।
सच नाम साधन करे, ले जम दरवाज़ा जीत॥
कथा एको नाम की, पद पद गावें वेद।
ग्रन्थ कतेब पुकारदे, अपरम आपार अछेद॥
जब लग नाम न चीनियो, ये मन भूत का रूप।
मानुष से भयो देवता, जब घाला सत सरूप॥
स्वास स्वास सिमरन करो, एक नाम निरधार।
जीब्भा होंट ना मुख चले, हिरदे माहीं विचार॥
तन की कूण्डी कर लयो, मन सोटा ले हाथ।
घोटो औखद नाम की, पियो प्रेम के साथ॥

ग्रन्थ
श्री समता प्रकाश

05:59

Find...

विरत त्याग मन भया इकागर। पूरन पुरख घट भयो उजागर।
बोले पवन दसवें द्वार। सिमरे नाम उतरे भव पार।
ज्यों ज्यों शबद को गुरमुख पीवे। काल त्याग जुगाजुग जीवे।
शबद पुरख परचे निर्वानी। करम जाल की होवे हानी।

प्रभ अपने को प्रन से ध्याई। अन्तरगत नित प्रीत कमाई॥
महमा प्रभ की अधिक विचारी। साचे नाम की चित चढ़ी ख़ुमारी॥
उट्ठत बैठत कियो ब्यौहारा। घट घट सिमरूँ सरजनहारा॥
प्रान उपान देही का ताला। सतगुर मिले तब कियो उजाला॥
सूरज चन्दर रूप को धारी। पवन पछान होवे सुखकारी॥
पांच तत का सकल तमाशा। सकल जगत का मूल स्वाँसा॥
मिल सतगुर जिस जुगत पछानी। पवन कमाये सो ही ब्रह्मज्ञानी॥
जनम जनम की मलन विनासी। प्रान पुरख संग कियो बिलासी॥
पवन सखा संग साक सुहेला। पवन ने रचया सकला मेला॥
दृढ़ विश्वास ये जुगत पछान। सतगुर पूरे करें बखान॥
अन्तर नाम बाहर जप नाम। सम कर राख पावें बिसराम॥
परम परकाश पवन की धार। गुरमुख परचे होये सचयार॥
इरध उरध पवन को थामे। सतगुर जुगत जपे सतनामे॥
बिना मूल के फुली फुलवाड़ी। लीन समावे जो करे रखवारी॥

अन्तरगत जिस चीनया, सत निरंजन देव।
'मंगत' सो ही सिद्ध भया, पूरे गुर की सेव॥1022

सुरती बाँध पवन में धार। साचे नाम का करो वापार॥
पवन को पीवे नाम परगासे। जुगती योग सतनाम बिलासे॥
भरम ग्रन्थी अन्तर से टूटी। जुगत योग जो नाम रस लूटी॥
बारम्बार मन नाम कमाई। पवन धार संग करे टकराई॥
विरती त्याग मनसा भई लीन। शबद समाध अन्तर में चीन॥
उरध कँवल भया परगास। पीवे पवन होवे निरवास॥
स्वाती सीप निहों ज्यों धारी। चातक वरखा नीर ज्यों प्रीत विचारी॥
चन्द चकोर ज्यों प्रेम लवलीना। एह बिध साजन सतनाम जपीना॥
एक पलक ना विसरन पाये। चौसठ घड़ी मन माहीं ध्याये॥
चंचल विरती मन की नासे। सतनाम जो गुनी उपासे॥
कर्ता हर्ता ठाकर जानी। आज्ञा पल पल तिसकी पछानी॥

अन्तर रमया सरब तूँ स्वामी। तेरा भेद ना मिले अनामी॥
बिन पद परसे अगम का थाओं। बिना नैन देखे रूप अगाऊँ॥
अपरमपार कथा बिस्मादी। कोट मध्धे कोई विरला साधी॥

जीवत की आसा तजें, परसें अगमपुर देश।
'मंगत' तीखन बाट है, निर्मल सुनो संदेश॥1033

नाम की रसना जिस चित पाई। सो परसे प्रभ रूप ज्ञाई॥
उट्ठत नाम बैठत सत नाऊँ। अन्तर बाहिर नाम ध्याऊँ॥
दृढ़ निश्चय चित चरनी पाया। शबद सार तब अन्तर ध्याया॥
खुले कपाट अगमपुर जाई। अजर पुरष का दर्शन पाई॥
घुंगट नाद बैजन्तर बाजे। कम्पे काया प्रभ आप निवाजे॥
झिलमिल जोत परगट होई। आवागवन की दुबधा खोई॥
अगम देस का सुन परवाना। अजर पुरष परसें निर्वाना॥
जगत प्रीती मन से त्यागो। सतगुर पूरे की सेवा लागो॥
सत सिखया की रसना चाखो। नाम निरंजन कीरत भाखो॥
करम वासना वखेपत छोड़ो। निर्मल प्रीत चित चरनी जोड़ो॥
सुरती बाँध पवन घर राखो। निर्मल नाम की रसना चाखो॥
प्रेम कुठाली में मनुआँ गालो। आगम का मारग एह बिध घालो॥
सोवत जागत इक नाम निहारो। तब पूरन पुरख के चरन पधारो॥
पिंगल मनुआँ नित निरत कमाई। साचे ठाकर की रसना पाई॥
गुरमुख हो के मारग विचार। तब उतरे भव सिन्धू पार॥
निर्मल खोज करो नित नीत। सत साधू संग करो परीत॥
मन की क्रीड़ा करो निरोध। प्रभ अपने को हिरदे सोध॥
नाम सिमर जग सार को पायो। बौहड़ ना भरम चक्कर में आयो॥
सत परकाश जोत निर्वानी। नित नित सेव करो मुनि ज्ञानी॥

एह बिध भगती धारिये, रहे अन्तर नहीं रेख।
'मंगत' तत्त पछानया, जल थल पूरन एक॥1034

अन्तर जुगत मनुआँ नित राखी। प्रान उपान को सम कर चाखी॥
इरध उरध में सुरता जोड़ी। परगट शबद तत्त सार निचोड़ी॥
बिना फूल फल बृख को आया। आलख शबद घर माहीं ध्याया॥
गगन की खेती नित संचारी। निर्वान सरूप फुली फुलवाड़ी॥
ताँ में सुरती रहे समाए। काल करम सब भरम चुकाए॥
बिमल नाद घनघोर करीना। गुरमुख जीवन जग में लीना॥
रहे अकान्त शबद को पीये। निज सरूप में जीवन जीये॥
सहज सुन्न का घाट पछाता। अनहद नाद रमत सुख पाता॥
निर्मल ध्यान वहाँ सुरत परोई। तब ये काया निर्मल होई॥
अमरत नीर में कियो अश्नाना। अमर भयो जन मुकत समाना॥
घर में साचा कंत मिलाई। शबद पुरख के चरन समाई॥

अगम पंथ में नित परबीना। बानी अगोचर नित नित चीना॥
अभेद रूप ठाकर घर पाया। सिमर सिमर के मंगल गाया॥
स्वपन समान रचना जग भई। सत परकाश जोत घर लई॥
घर आओ निज अपने मीत। परमानन्द घट बसे पुनीत॥
झिलमिलकारी सुरत उठ धाई। भरम बुरज को सहज उड़ाई॥
चढ़ी आकास पाया परगासा। जनम मरन का बन्धन नासा॥
सुकृत कीरत विरले जन पाई। घर विच साचा कंत मिलाई॥

राम रतन को पाये के, मन तन भयो परसन्न।
'मंगत' अन्तरगत माहीं, प्रभ पारस पायो धन॥ 1046

पारस परस निर्भयपद पाया। राम रतन सन्तन दिखलाया॥
जंगल बेले फिरूँ बियाबाना। भाँतक भाँत सुने विख्याना॥
रंग रंग के पुन्न दान करीने। जतन अनेक चित अन्तर कीने॥
बिन सत साधू के मेल मिलाये। राम रतन नहीं हिरदे आये॥
पूरब जनम का करम सत जागा। सत साधू पायो वडभागा॥
निर्मल जुगती सतनाम दखाई। ताँ को परस रतन प्रभ पाई॥
मन मनोरथ पूरन होए। शबद पुरख में लीन समोए॥
अन्तर शबद करे परगास। ज्ञान दृष्ट से कीजे वास॥
सुरत अडोल जब अन्तर आई। पूरन पुरख शबद अर्थाई॥
खट चक्रन का मारग छेदा। ऊँची दृष्ट मन को बेधा॥
पवन का झाड़ू घट अन्तर दीना। शुद्ध सरूप शबद तब चीना॥
भाँतक भाँत घर खेल विचारी। आपे खेले पुरख मुरारी॥
खुली बंकनी शबद पछाना। अनहद नाद पुरख निर्वाना॥
सहज योग जुगत घर पाई। आलख शबद पाया सुखदाई॥
धन्न साधू जिस मारग दिखलाया। पूरन पुरख ठाकर घर पाया॥
अबगत नाद बजावे तूरा। गुरमुख परचे विरला सूरा॥
ईड़ा पिंगला सुखमन धार। त्रिकुटी मन्दर खोल किवाड़॥
परगट शबद नित ही परगासे। सतगुर मेल करो अरदासे॥

करम मैल प्रभ नाम से जाई। जो धोवे सो गुनी अधिकाई॥
सुरती बाँध नाम के संग। मारग मुकत सुनो परसंग॥
ईड़ा पिंगला सुखमन नाड़ी। बहती पवन करो विचारी॥
अन्तर बाहर की गत जान। विचरत पवन करो पहचान॥
नाम को जाप पवन को बेध। नाम ध्यान हरे सब छेद॥
अन्तर बाहर जुगत कमाओ। बारह सोलह सम कर गाओ॥
सोलह चन्दर बारह सूर। सिमर नाम पावें हज़ूर॥
सम कर पवन नाम कमाई। मनमुख मनुआँ अन्तर आई॥
पवन बिन्ध भया परगासा। शबद अखण्ड में लयो निवासा॥
आलख शबद आकाश उठ धाया। सुन्न कन्दरा में डेरा लाया॥
गुरमुख सुरती चढ़ी आकास। प्रभ के चरनी लयो निवास॥
अनहद नाद बाजे घट तूरा। होई चमकार सत चरन हज़ूरा॥
खिमा दया सील चित आई। सत ठाकर घर परगट ध्याई॥
एक दृष्टी सुन्न ध्यान लगाया। जगत का ठाकर नज़री आया॥
दरस पायो मन भयो निहाल। काल करम काटा जम जाल॥

अन्धकार विनासया, दिव्य भयो परकाश।
'मंगत' काया कोठरी में, पायो दरस अबनाश॥ 1163

अबनाशी का दर्शन पाई। तब ये मन गयो लीन समाई॥
मन लीन भयो सुख भया आपार। रंचक दु:ख की रही नहीं सार॥
द्वन्द त्याग निरद्वन्द समाई। करम त्याग निहकरमत पाई॥
काल त्याग निर्भय समाया। साखी पुरष का लेख लखाया॥
चंचल त्याग पाया संतोख। बन्धन नास पाया तत्त मोख॥
वैर त्याग खिमा चित पाई। सरब जीयाँ संग साँझ बनाई॥
मोह त्याग पायो बैरागा। घर में परसयो शबद अनुरागा॥
उदे अस्त का भरम मिटाई। दिव्य परकाश अखण्ड लखाई॥
जनम मरन का चक्कर त्यागा। निश्चल ध्यान साहब में जागा॥
भूख प्यास गये देह विकारा। शबद खाये मन तृपत विचारा॥

वासना त्याग भया निर्वास। सर्वज्ञ रूप पाया अबनास॥
पाप पुन्न करमगत टारी। साचे शबद की चढ़ी खुमारी॥

'मंगत' जिस जन सोझी पड़ी, तिसके चरन नित धोए॥1181

निर्मल नाम कीरत जिस गाई। गुपत भेद सोही अर्थाई॥
अन्तर की गत करी विचार। मारग सूझा पार मुरार॥
प्रान अपान पवन को जाता। एक नाम तिस में रँगराता॥
मुख होंट जीभा नहीं चाले। अखण्ड जाप अन्तर में घाले॥
धीर धीर से पवन को पीवे। नाम सिमर के नित जन जीवे॥
दिन दिन गुनी करें अभ्यास। बिनसे भरम पावे परगास॥
आहार ब्यौहार करे शुद्ध नीती। परहक खाये नहीं धरे पलीती॥
तमोगुन आहार नित करे त्याग। बुद्ध निर्मल पाये नाम अनुराग॥
अन्तर ऊँची पवन को खैंचे। ऊँची से फिर नीचा हो बैठे॥
नीचे से ऊँचा हो आई। लख तू लेखा अगम आगाही॥
मूल द्वार में सुरता गाड़ी। आवत जावत भेद लखारी॥
मन के संशे शोक विनास। मूल द्वार में कीजे वास॥
भयो इकागर नाम रस खाई। पवन पुरख का लेख लखाई॥
ज्यों ज्यों अन्तर राखे मनुआँ। शान्त आगाध परसे तनुआँ॥
अनेक विकार विगन सब नासी। साचा नाम जो गुनी उपासी॥
दृढ़ निश्चय जिस जुगत कमाई। मन पवन इक ठौर लगाई॥
नाभ कँवल से अमरत झरया। सुखमन नाली में सो भरया॥
सो अमरत उठ चढ़े आकास। गुरमुख विरले कियो बिलास॥
चढ़े आकास करे टंकोर। नाद ध्यान पावे जन सूर॥

अन्तर जुगत कमाया, प्रभ का नाम अगाध।
'मंगत' कंवल परगासया, नाद पाया बिसमाद॥1182

अन्तर जुगत जब नाम कमाई। तीन भवन की सोझी पाई॥
सुखमन नाड़ी करे हलोल। अनहद नाद की सुनी कलोल॥
शबद गुंजार करे अत भारी। तिरवैनी अत लेख विचारी॥
चंचल मनुआँ सहजें घर आया। नाद पुरख को परगट ध्याया॥
कर्ता पुरख भयो परगासा। हरजन कीनी चरन अरदासा॥

शबद नीर से दुर्मत धोई। पल पल सुरती नाम परोई॥
ज्यों ज्यों हंग विकार विनासी। निश्चल होवे मन सुखरासी॥
निश्चल मनुआँ सत ठौर पहचानी। अबगत नाद की कथे कहानी॥
नाद को खावे नाद को पीवे। नाद पुरख में जीवन जीवे॥
सुन्न कपाली आसन धारी। बिमल शबद का लेख विचारी॥
रोम रोम मे ठाँड उपजाई। तपन विनास शान्त घर पाई॥
भरम अन्धकार जीव का नासी। चौदस चन्दर कला परगासी॥
दरस पाये मन भयो निहाल। बन्धन नासे गुर भये दयाल॥
मारग अगम का अन्तर जाता। आलख पुरख का लेख पछाता॥
कल्पना नास मन शून समाई। नाद ध्यान परम सुख पाई॥
अचरज कथा अन्तरगत जानी। अलेख अभेद अन्तर पहचानी॥
अजर पुरष घर अन्तर पाई। सरब न्यारा नित वरताई॥
नित परकाश परम कल्यान। पाया ठाकर सहज ध्यान॥
बिख ममता भ्रम मूल चुकाया। अनहद नाद परमपद पाया॥

साचे नाम की कीरती, मन तन आई समाये।
'मंगत' भयो निहाल तब, जब शबद भेद अर्थाये॥ 1183

तीन भवन में सुरत समाई। सत ठाकर घर भेंटे आई॥
तीन भवन है सार मुकामा। अबगत नाद जाँ करे बिसरामा॥
सुरत पवन जब एका होई। तीन भवन तब लेख लखोई॥
अखण्ड नाद बिमल परगासी। अबगत जोत चानन घर भासी॥
परगट नाद करे घनघोर। तृपत भयो जन गुरमुख सूर॥

द्वैत दृष्ट वासना नासी। नाम रूप की काटी फांसी॥
अबगत शबद में लीन समाई। पूरन भाग जो ये गत पाई॥
आनन्द पाया संसार में, नास्यो दु:ख द्वन्द।
'मंगत' अन्तर गाया, सत शबद जोत अखण्ड॥ 1194
दुर्मत जाल अत कठन कराल। सत सरूप नहीं मिले सुखाल॥
करम की ममता घना चित रोग। बिना जतन नहीं होवे वंजोग॥
अनंक जतन जो भी नर धारे। दुस्तर जाल कठन उतरस पारे॥
अधिक भयानक धारयो कलेशा। निश्चे नहीं आवे रूप जगदीशा॥
एक पलक नहीं धीरज पावे। करम की ममता चक्कर फरावे॥
करम फल भोग की आसा धारी। अनंक मनोरथ नित विचारी॥
संसा रूप ये ही संसार। दुर्गम घाटी नहीं पारावार॥
सत सन्देश सुनो गुनी मीता। पावें निर्मल शान्त सुखरीता॥
दृढ़ पुरषारथ हिरदे राखो। करम वासना मन से काटो॥
भरम ज़ंजीर तोड़ो दिन रात। एक नाम साहब अन्तर राट॥
बारम्बार मन को समझाई। सत ठाकर के चरन समाई॥
सरजनहार की रख चरनी चेता। दुर्मत जाल की मिटे विखेपा॥
मन अपने को पवन संग जोड़ो। आवागमन का संशय तोड़ो॥
उलट पलट पवन को कीजो। साचा नाम निरन्तर पीजो॥
अधिक बिरह राखो प्रभ चरने। सरजनहार की रहो नित सरने॥
दासा भाओ ग़रीबी राख। मान त्याग निर्भय पद चाख॥
अनंक विगन तेरे नर जायें। निर्मान भाओ की साखी जो गायें॥
रूच रूच चरनी राखें प्रीत। अन्तरगत गावें नित गीत॥
अपने मन की करे सुथराई। सत परतीत प्रभ शोभा गाई॥
मोह ममता को त्याग के, प्रभ चरनी चित राख।
'मंगत' मिले तब शान्ती, जब नाम अमीरस चाख॥ 1195
मन का भरमन होये विनासा। प्रभ के चरन में करें निवासा॥

अन्तरगत सत कीरत गायें। उट्ठत बैठत नाम
स्वारथ बुद्ध नासे अन्धकार। पद परसें तब निर्म
सो परमेश्वर पतत उद्धारी। पल पल तिसकी सरन
बिन प्रभ दूजे नहीं कभूँ सलाह्यो। प्रभ की शकत सब में वरतायो॥
सरब शकत का सो दातारी। निर्मल चित नित सेव विचारी॥

प्रभ के रूप सँग मेल मिलाई। दुर्मत जाल माया बिनसाई॥
सुरती गई शबद के घाट। आलख पुरख की परसी वाट॥
रसना रस सब करी त्याग। शबद की रसना में मन लाग॥
आपा पर की तृखा निवारी। सर्वज्ञ रूप की कथा विचारी॥
आकाश पाताल की भरमन त्यागी। स्वास सुरत एके रंग लागी॥
इन्द्री विकार से भयो न्यारा। घर में पायो शबद आपारा॥
पूज पूज के निर्मल होई। मनमुखता सकली जन खोई॥
सरब स्वामी घर परगट पाया। वासना त्याग निर्वास समाया॥
नाम रूप मिथ्या गयो भरमा। अखण्ड नाम पायो सत धरमा॥
अमरत धार शबद भई जारी। पी पी के मन भयो मतवारी॥
द्वैत भावना सकली नास। सम सरूप जोत परगास॥
जाँ देखाँ सो ही दिखाई। रोम रोम में तार लखाई॥
बजे मृदंग नफ़ीरी राग। गुरमुख साचे पायो सोहाग॥
भेदी मिलया भेद लखाया। तत्त्व निरंजन अन्तर पाया॥
बिन भेदी जन भयो दीवाना। प्रभ को खोजे मढ़ी मसाना॥
बिन भेदी बिरथा डहकाये। पार पुरख का लेख नहीं पाये॥
वस्त कहीं कहीं उठ धावे। बिन भेदी नहीं सोझी पावे॥
सतगुर भेदी मिले किरपाधारी। अन्तर में सत रूप विचारी॥
रूप पछान के दुर्मत हरी। अपने पाप की सोझी पड़ी॥

अपना आप पछानया, जो सत निर्मल रूप।
'मंगत' एको पाया, गयो दुर्मत बिख कूप॥ 1217

साखी पुरष आतम तत्त सूझा। सकल विकार का निरनय बूझा॥
पाँच तत गुन तीन का खेला। माया भरम ने रचया मेला॥
तत्त्व विकार करम प्रगटाये। करम का भुगता आप बन जाये॥
कर्ता भाओ अभिमान को धारी। सुतन्तर रूप की होवे ख़वारी॥
जुग जुग भोग करम गरसाई। कर्ता भाओ में दु:ख सुख पाई।॥
परचण्ड माया नहीं मिटे विकारा। अपना रूप निज दियो विसारा॥
छाया पीछे उठ के लागा। मूढ़मती ये जीव अभागा॥
दर्पन में ज्यों प्रतिबिम्ब लखाई। अपना भिन्न सरूप दिखलाई॥
दर्पन नास नहीं दूजा भासे। एह बिध रचया जगत तमाशे॥
कर्ता भाव दर्पन को धारी। रंग रंग देखे खे[illegible]॥
अपनी कलपना भिन्न कर देखे। तृष्ना करम भो[illegible]॥
कर्ता भाओ दर्पन भयो नासा। बन्धी छूट गई [illegible]॥
केवल रूप रह्या अबनाशी। चक्कर मिटा सब करम की फाँसी॥
उठके गुनियाँ भरम को छोड़। साखी रूप अन्तर चित जोड़॥

सत जुगती जो साधन कीजे। निष्काम भाओ से ध्यान धरीजे ॥
दुर्मत जाल भरम बिख नासी। परगट पायें शबद अबनासी ॥
बाहर की नित भरमन छोड़ी। सत ठाकर चित अन्तर जोड़ी ॥
इरध उरध माहीं नाम पुकारी। पल पल आज्ञा तिसकी विचारी ॥
कर्ता भुगता आप स्वामी। सिमर सिमर के भयो निष्कामी ॥
निष्काम विरत जब अन्तर पाई। परम शबद की सोझी आई ॥
द्वन्द त्याग निर्द्वन्द समाई। जाप अजपा सतनाम कमाई ॥
नित नित जापे पुरख जगदीशा। परगट पावें शबद सुखरीशा ॥
अन्तर जुगत ध्यान लगाई। शबद निर्वान का भेद लखाई ॥
आकार दृष्ट की भरमन नासी। निराकार दृष्टि अन्तर परगासी ॥
अखण्ड नाद जोती निर्वानी। अन्तर घाट में करी पहचानी ॥
बुद्ध निर्मल मन पिंगल होई। शबद पछान के लीन समोई ॥
तीन ताप बिख ममता नासी। खेम कुशल समता परगासी ॥

सतगुर सीख पहचान के, अन्तर जुगत कमाये।
'मंगत' भरमन त्याग के, निज घर आन समाये॥ 1230

अन्तर नाम जुगत से ध्याये। मोह ममता का जाल मिटाये ॥
एक बिरह प्रभ चरन समाई। सत विश्वास का भेद लखाई ॥
पूरन पुरख चेतन सुखरासी। नाम सिमर तत्त सार अबनासी ॥
प्रभ अपने की करी अरदास। काल कराल की मिटे त्रास ॥
औगन अधिक जीया नित धारी। नाम जपत सब मिटे ख़वारी ॥
नित अन्धकार में मनुआँ डोले। पाप विरत में नित नित खोले ॥
भरम ग़ुबार में दु:ख बहु पाई। राग द्वेष में नित तपताई ॥
सुकृत सीख सतनाम बिचारी। निश्चल चित नित सेवा धारी ॥
ताप बिनास घर ठान्ड समाई। साचा नाम साहब का गाई ॥
नाम ध्यान में नित समाया। शबद अगोचर अन्तर पाया ॥
छिन छिन मन को अन्तर राखी। दीनदयाल की गावे साखी ॥
मोह विकार गयो अन्धकारा। सत शबद पाया निरंकारा ॥

नित ही शबद की कीरत गाई। नित ही तिसके चरन समाई ॥
अन्तरमुख की सूझ पहचानी। पारब्रह्म घट में दरसानी ॥
पूरन पुरख आनन्द सरूपा। परगट पायो शबद अनूपा ॥
सुरती खेले शबद के संग। दुर्मत जाल भयो सब भंग ॥
कलह कलेश सब भरमन नासी। साचा शबद पायो अबनासी ॥
पूरन सेवा सतनाम कमाई। उट्ठत बैठत सत निश्चय पाई ॥
प्रेम खुमारी में मन ग़लताना। निर्मल नाम पायो निर्वाना ॥

अन्तरगत समाया, नित नाम पदारथ खाये।
'मंगत' निश्चल ध्यान में, नाद पुरख दरसाये॥ 1231

काया कोठी अजब है साजा। जिसमें साहब आप बराजा ॥
चौधां लोक की रचना रचाई। सकल ब्रह्मण्ड तिसमें लख पाई ॥
साखी पुरष भये परगासी। शबद सरूप जोत अबनासी ॥
जिस काया की खोजन कीनी। मौज जनम की तिस ने लीनी ॥
साखी शबद की सेव कमाई। माया जाल सकल भसमाई ॥
शबद ही भोजन पल पल खाई। शबद का नीर पान कराई ॥
शबद का आस भरोसा धारी। साचे शबद का होवे पुजारी ॥
मन चित प्रीत से शबद कमाई। साखी पुरख घर माहीं लखाई ॥
नित नित पूजे प्रेम को पाये। रुच रुच प्रभ के चरन समाये ॥

सुरती अन्तर में रसी, शबद सुनी टंकोर।
'मंगत' निज घर आ बसे, बिनसी काल करम की दौड़॥ 1245

अबगत पुरष की सेव कमाओ। निर्भय धाम में जाये समाओ॥
बाहरमुख मनुआँ नित दु:ख पाई। जुगा जुगन्तर रहे भरमाई॥
तृष्ना भोग अगन लिपटाया। धीर ना पावे भरम भुलाया॥
अत से अत ही पाप कमावे। ज्ञान बिना नहीं धीरज पावे॥
सतगुर सीख जिस अन्तर विचारी। बाहरमुख की सब भरमन टारी॥
मन मुख मूढ़मती को त्यागा। गुरमुख सुमति में उठ के जागा॥
गुरमुख मनुआँ अन्तर आई। अपने घट में लेख लखाई॥
तजी चतराई नित थकत समाई। करम जाल से तृपत हो जाई॥
निहकरम सरूप शबद निर्वानी। करे किलकार सुनो परम ज्ञानी॥
इक चित हो के ध्यान कमाओ। लोक लाज सकली विसराओ॥
ईड़ा पिंगला सम कर राखो। सुखमन खोज आकास को भाखो॥
शबद गुंजार करे अत भारी। बजे मृदंग नफीर आपारी॥
मन निर्वानी शबद को पीवे। निज सरूप में जीवन जीवे॥
काल त्रास सकल मिट जाई। निहचल चित जो ध्यान कमाई॥
ज्ञान इन्द्री को अन्तर राखी। ऊँचे शिखर की खोजे घाटी।
प्रान उपान की माल परोई। जाप जपे बुद्ध निर्मल होई॥
दुर्मत त्याग चढ़ी सत धाम। आलख पुरख का मिला पयाम॥
शबद सुरत एको चित धारी। मगन भयो गये छूट संसारी॥

अपने रूप संग एका होई। सतगुर सेव सत सूझ लखोई॥

अगम मारग को परसया, जीवत सीस उतार।
'मंगत' निर्भय होये तब, जब सुनी शबद गुंजार॥ 1246

ऐसा लेख जो लख पाई। पद निर्वान भेद अर्थाई॥
पुरख अगोचर घर विच आया। रूप वरन नहीं आकार दिखाया॥
अपने आप में आप पसारी। करे कुलेल पुरख बनवारी॥
ऊँचे शिखर पर बेल बेलाई। फूल पात बहुरंग लगाई॥
ध्यान करें तब तृपत समायें। देख अचम्भा तूँ घर मायें॥
बिना सीस के चालें मीता। मारग अगम कठन परतीता॥
पुरख अगोचर घट में सूझें। तिस साहब का निरना बूझें॥
कहाँ से आया कहाँ रहे समाई। कौन देस की लिखत लखाई॥
कौन बचन वोह मुख से उचारी। खोज करो पद निर्मल सारी॥
पूरन पूर आप समाया। नहीं आवे नहीं वोह जाया॥
अपने आप कियो बिस्तार। बीज से दीना बरिच्छ उगाड़॥
देस अनाम अगोचर बानी। अनहद नाद पुरख निर्वानी॥
अपने रूप में आप समाई। अपनी कीरत आपे गाई॥
अपने देस का लेख लखाई। जो जन बूझे धाम पहुँचाई॥
अबगत कथा करो विचार। पद निर्वान कथो तत्त सार॥
पूरन पुरख चरन बलिहारी। जिस घर की सत सूझ विचारी॥
पाई सूझ मिटा अन्धकारा। अपने आप का लखा पसारा॥
सदा निरालम रहे पुनीता। सरब अतीत पुरख सुखरीता॥
आप पछान से भेद मिटाया। दुर्मत रोग विनासी छाया॥

अन्तर शबद परगासया, द्वैत भरम सब नास।
'मंगत' पद निर्वान में, निश्चल लीना बास॥ 1247

तेरी गति अगम्य व निस्सीम है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। तेरी गति का आदि, अंत व मध्य कुछ भी नहीं है। तू व तेरा नाम ही निरधार = सनातन है ॥16॥

तुम बिन अवर न दूसरा, क्या मुख सूँ करिए बात।
ज्यूँ गूंगा सपना लहै, सिमर सिमर पछतात ॥17॥

तेरे अलावा दूसरा कोई तत्त्व ही नहीं है। मुख से तेरे बारे में उसी प्रकार इदमित्थं कुछ भी कह पाना शक्य नहीं, जिस प्रकार स्वप्न में गूंगा कुछ प्राप्त करे और जागने पर उसका स्मरण तो करे किन्तु कह कुछ नहीं सके, कहने के लिए पश्चाताप ही करता रह जाए ॥17॥

कथनी कथै अनेक विधि, जोगी जती संन्यास।
रोहल रहणी रहति बिन, पड़ी काल की फाँस ॥18॥

योगी, यती, संन्यासी अनेक तरह से कथन तो करते हैं किन्तु कथनानुसार आचरण व रहनी के अभाव में ऐसे कथन करने वालों पर काल की चोट पड़ती है ॥18॥

रहति हमारा देव है, अर रहति हमारा ग्यान।
रोहल रहणी रहति में, फूल्यो बिरख विग्यान ॥19॥

रहति = सदाचारी-जीवन ही हमारा देव है, वही हमारा ज्ञान है। रहनी रूप रहति में विज्ञान = विशेष ज्ञान = आत्मसाक्षात्कार रूपी वृक्षोदय होता है ॥19॥

वृख विग्यान जब फूलियो, अर वाणी फूटी वास।
ऊँच नीच घट एक ब्रह्म, सो हूँ पद अविनास ॥20॥

जब विज्ञानी रूपी वृक्ष का उदय जगत में होता है और उसमें सुवास रूपी वाणी का प्रस्फुटन होता है; तब-ऊँच-नीच सभी प्राणियों में एक ही ब्रह्म व्याप्त होता है। वही अविनाशी ब्रह्म मैं हूँ ॥20॥

ओऽहं सोऽहं भी थका, अजपा जाप प्रकास।
अंतर धुनि लगि आतमा, निहचै भयो विसास ॥21॥

ओऽहं व सोऽहं दोनों थक गये। अजपा-जाप का प्रकाश हो गया। आत्मा में अंदर ही ध्वनि लग गई। निश्चित ही विश्वास हो गया कि मैं ही ब्रह्म हूँ। (ब्रह्माकर-वृत्ति होने पर अहमाकार-वृत्ति (ओऽहं)व अन्याकारवृत्ति (सोऽहं) दोनों विलीन हो गईं और 'अहं-ब्रह्मास्मि' नामक चिंतन अपने आप होने लग गया। ब्रह्माकार-वृत्ति की ध्वनि अंतर में अनवरत होने लगी है। ऐसा होने से यह निश्चित् विश्वास हो गया कि मैं ही ब्रह्म हूँ, 'अहम्-ब्रह्मास्मि') ॥21॥

रूपी अमृत-तत्त्व को तौला। शैया पर प्रियतम के साथ अखंडानन्द सुख पाया और प्रियतम ने अपना अन्तर=सब कुछ मेरे सामने खोल कर रख दिया ॥3॥ आत्मा का अणभै औलखिया=अपरोक्षानुभव किया। समस्त भ्रम नष्ट हो गये। उन्मनी-अवस्था= निःमनावस्था=परमात्मा से एकान्तिकी-प्रीति लग गई व भगवन्नाम-निधि को प्राप्त किया ॥4॥ दिल रूपी दरियाव में खोज की जिसमें हरि रूपी हीरे की प्राप्ति हुई। रोहल कहता है- हरि रूपी हीरा अमूल्य हीरा है; इसको प्राप्त करके गाँठ में बाँध लो ॥5॥125॥

साखी चित्त महेस कूँ, जाइ कियो परणाम।
करि किरपा मूँ पै कहौ, जींउ अमर विसराम ॥126॥

साक्षी और चित्त ने जाकर महेश को प्रणाम किया। जिस प्रकार अमरता में अखंड विश्राम हो सके, कृपा करके वह मुझसे कहो ॥126॥

महादेव-वाच

महादेव तब बोलिया, सुनिहो साखी चित्त।
अमर पद तब पाइए, जब जीवत मरना नित्त ॥127॥

तब महादेव ने कहा- हे साक्षी व चित्त! सुनो। अमर-पद तब मिलेगा, जब जीते-जी नित्य-प्रति मरना आ जायेगा ॥127॥

चित्त-वाच

किस विधि जीवत मरन है, करि किरपा कह मोहि।
तुम जैसा कोइ देवता, और न दूसर कोहि ॥128॥

चित्त ने कहा- जीते-जी मरना किस विधि से संभव है, कृपा करके मुझसे कहो। आप जैसा देवता और कोइ दूसरा नहीं है ॥128॥

महादेव-वाच

अमर पंथ हम कहत हूँ, सुन तू साखी चित्त।
ओऽहं सोऽहं समझ ले, पीछै नित्त अनित्त ॥129॥

पाठांतर : आनँद नित्त

महादेव ने कहा- मैं अमर-पंथ का वर्णन करता हूँ, हे साक्षी व चित्त! तुम सुनो। सर्व प्रथम ओऽहं व सोऽहं को समझ-लो, तत्पश्चात् नित्य व अनित्य को॥ 129॥

चित्त-वाच

ओऽहं सोऽहं तब लगै, जब लगि जिंउ घटि माहिं।
देह पड़ी पवना थका, पीछै सिमरूँ काहिं ॥130॥

चित्त ने कहा- जब तक शरीर में प्राण है, तब तक ही ओऽहं व सोऽहं संभव है। जब देह नष्ट हो जाती है, प्राण निकल जाते हैं, तब किससे किसका स्मरण करूँ ॥130॥

महादेव-वाच

जितनी हमरी पहुँच थी, सकल कही अब तोहि।
अमर सदा प्रभु आप है, जे तुम पूछौ मोहि ॥131॥

महादेव ने कहा- मेरी जितनी जानकारी थी, वह सारी की सारी मैंने कह दी है। यदि तुम मेरे से पूछते हो तो मैं बताना चाहूँगा कि अमर तो एक सनातन परमप्रभु-परमात्मा स्वयं ही है ॥131॥

साखी-वाच

इहाँ सूँ इक गुन सीख ले, सिव सकती वीचार।
जनम मरण का भेद यह, कह साखी निज सार ॥132॥

साक्षी ने परम सार-स्वरूप कहा- यहाँ से शिव व शक्ति के ऐक्य के विचार का एक गुण सीख ले। जन्म-मरण का रहस्य यही है ॥132॥

चित-वाच

तब चित कह्यो महेस कूँ, सिव सकती वीचार।
करि किरपा मूँ पै कहौ, जाते उतरौं पार ॥133॥

तब चित्त ने महेश से कहा- आप कृपा करके शिव-शक्ति का तत्त्व रूप विचार मुझसे कहो जिससे कि मैं भव-सागर से पार उतर जाऊँ ॥133॥

महादेव-वाच

तब सिव कहियो चित्त कूँ, ये सक्ती बनी अनेक।
सोही कर ले आरसी, जा महिं दरसै एक ॥134॥

तब महादेव ने कहा चित्त से कहा- यह शक्ति ही अनेक रूपा बनती है। उसी शक्तिरूपी दर्पण को हाथ में ले। जिसमें एक अद्वैत परब्रह्म-परमात्मा का दर्शन होगा ॥134॥

विचार अनुभव में टुबकी मारै। अपना कारज आप सँवारै ॥7॥

दोहा : *मिल्या बिछुड़िया तो कहूँ, जे कारज कारण होइ।*
साहू एकौ रम रह्या, दूसर नाहीं कोइ ॥8॥

चौपई : *ज्यूँ एका अंडौ घट्ट अपारा। घट फूट्याँ वह अंडौ न्यारा ॥*
ज्यूँ रवि एका धूप अनेका। त्यूँ हूँ चेतन रूप विवेका ॥9॥
कहाँ हम जोगी कहाँ हम भोगी। कहाँ हम वैद्य कहाँ हम रोगी ॥
कहाँ हम पंडित कहाँ हम तुरका। कहाँ हम स्याना कहाँ हम मुरखा ॥
ज्यूँ वन एका पान अनेका। त्यूँ हूँ चेतन रूप विवेका ॥10॥

प्रश्न : *एक अनेक सु कहिए काह। जैसे तरँग सागर बिन नाँह ॥*
चेतन रूप सो कहै अकेला। कौन सु विछुड़्या कौन सु भेला ॥11॥

उत्तर : *कोइ न जानै मेरी बात। सो जानै जाकुँ लागी धात ॥*
ग्यान कुंढे वह चोट चलाई। हूँ मैं गले मूँ काटी फाही ॥12॥

दोहा : *नाम रूप सभ तरँग जल, क्यूँ कर उतरूँ पार।*
सतगुरु पूरा काढ ले, पकड़ उतारौ पार ॥13॥

सवैया

आप विचार पड़ौ अब पार तू, जान गँवार नहीं यह हासी।
एक अनेक धर्‍या बहु भेष तू, आपहि पेख यही घर वासी ॥
जहाँ रात न दिंन मिल्यो नहिं भिंन, कह्यो अब गंन वही घर वासी।
साहू साह रम्यो घट मूँ अब, ज्युँ रोमहि रोम में जोत प्रकासी ॥14॥

चौपई

नाम लेवे वह तीरथ जोवै। ज्यूँ खँड कह्याँ मुख मीठा होवै ॥
नाम रूप सभ आतम देखी। प्रगट्या सुर्य उनौ नहिं पेखी ॥15॥
नाम लियाँ वह क्या सुख होवै। जब लग अपना आप न जोवै ॥
नाम लेवै बहुता ज्यूँ सौहा। मोह माया का पकड़्या खोहा ॥16॥
सोऽहं छोड फिरै वह भटके। ज्यूँह सूवा नलनी मूँ लटकै ॥
आप आप कूँ आपै फांधा। साहू वाँ कूँ कौन सो बांधा ॥17॥
आप विचार्‍या आपा टूटा। मोह माया का पिंजडा फूटा ॥
साहु भया वह साँसा भागा। आप था फिर आप कूँ लागा ॥18॥

प्रश्न

चौपई :

तुम हो सतगुरु दीनानाथ। सरण पड़े पर राखौ हाथ ॥
जुग जुग भूला चरनै लाओ। जनम जनम के पाप मिटाओ ॥49॥

उत्तर :

मारग देख कहीं मैं भूला। अपनी करणी आपै डोला ॥
ज्यूँ सिंघ कूप में छाया भासै। आपै बूडै आपै भासै ॥50॥
चेत अचेत दूजा नहिं कोई। दूर निकट है सागी सोई ॥
परथम सूर उलू नहि देखै। जन्म का अंधा क्योंकर पेखै ॥51॥
ज्यूँ काच मंदिर पड़्यो सुवान। आप न चीनै अचरज मान ॥
भिन भिन देख उहाँ बस मरै। अपनी करणी आपै भरै ॥52॥
ज्यूँ गज फाटक सासट वासी। तोड़ै दंत उहाँ सभ नासी ॥
त्यूँ अज्ञानि आप सूँ भोला। दर दर दौड़ै फिरता डोला ॥53॥

दोहा :

आप न चीनै आप मँह, मिरग कथूरी वास।
दरियाखान अचरज मनहि, भिन भिन सूंघै घास ॥54॥

प्रश्न

चौपई :

तुम दाता गुरु दीन दयाल। अपने आप करौ प्रतिपाल ॥
जे तुम कहौ करूँ मैं जोग। जनम जनम मिट जावै रोग ॥55॥

जोग का अंग

उत्तर :

अव्वल एही जोग पछान। मूल तखत दृढ़ आसन जान ॥
धर के पवन चढो आकास। ऊहाँ हरिजन कीया वास ॥56॥
लिंग लहर ब्रह्मा का वास। उलटी बूंद भया परकास ॥
अमर पियाला जो नर पीवै। काल न व्यापै जुग जुग जीवै ॥57॥
नाभि कमल दम धमण धमावै। खाली भरै भर्या उलटावै ॥
उचरै वाणी सबद प्रकास। वा घट हंसै कीया वास ॥58॥
दिल दरिया भरिया भरपूर। दे डुबकी निज निरख्या नूर ॥
सोऽहं सबद उहाँ धुन लागी। हउमैं संसा दुरमति भागी ॥59॥
सुन चेला इक मेरी बात। कंठ कंठ सुमरन कर हाथ ॥
अकड़िया करनी करौ कमाई। सोऽहं सबद मिलै रघुराई ॥60॥
निकट खोज पाया घर पूरा। उहाँ निरंजन दीसै नूरा ॥
अधर अमी बरसै नित गगना। पी पी मस्त भया मन मगना ॥61॥

विरह

रहत फकीरी को कठिन काम है, काहे को कहो दरवेश, भँवरा मन ॥थल॥
अपना आप परबोधै नाहीं, औराँ करै उपदेस, भँवरा मन ॥1॥
नाना रूप बन्यो लट धारी, काहे मुंडावौ केस, भँवरा मन ॥2॥
दह सिर रावण काल अकाली, पार न पायो सीस, भँवरा मन ॥3॥
दरियाखान बिना गुरु कोइ न सुधरिया, बिन खँड ढूढो देस, भँवरा मन ॥4॥20॥

पहाड़ी

तेरे चरण कमल पर वारी, मैं दासी तू साहब मेरा ॥थल॥
कभी शोर कभी मुसकावौ जी, कभी हजूरौ हाल बतावौ जी।
मैं तो बारूँ बार बलिहारी ॥1॥
कभी घूंघट में वन आवो जी, कभी थुमक थुमक पाँव पावौ जी।
कभी जलवो हुस्न हजारी ॥2॥
ए ता बोध उलट इंसानी जी, कर जोड़ आया जिस्मानी जी।
तेरी अकल कला कल न्यारी ॥3॥
गुलामअली गुरु यूँ समझाया, दरियाखान ए पद तब ही पाया।
ऐ ता दम दम की होशियारी ॥4॥21॥

आसा

सोऽहं सुमिरन कर ले वंदा, भव सागर मूँ तरना है।
ऐसा सुमिरन कर ले वंदा, हरि भज पार उतारना है ॥थल॥
दिल दरियाह पवन का कूहा, लिव लेजूँ दिल धरना है।
सबद गुराँ का उर ला हथ कर, बेड़ी पार उतरना है ॥1॥
अजपाजाप जपौ मन माहीं, सासो सास सुमरना है।
पाँचै मार पचीस मनावौ, लीजो साहब सरना है ॥2॥
अड़सठ तीरथ मन में न्हाओ, गंगा काशी जमुना है।
सोऽहं सबद गुराँ का मानौं, हरि हरि सुमरौ हरना है ॥3॥
ज्ञान ध्यान की सुरति लगावौ, आपा को जो करना है।
दरियाखान दुतिया भस्म भई जब, इश्क आग में जरना है ॥4॥22॥

कल्याण

दम दम नाल सच्चे साहब, डरिये राम नाम कहिये ॥थल॥

साधौ मेरे मन का भँवर उदासी ॥थल॥
जाग्रत सोवत स्वप्न सुखोपति, लागी प्रेम पियासी ॥1॥
जो देखूँ सो थिर न रहत है, नाम बिना सभ नासी ॥2॥
सतगुरु मिलिया संसा भागा, तन में तीरथ कासी ॥3॥
गुलामअली गुरु पूर पाया, आय मिल्यो अविनासी ॥4॥
दरिया सतगुरु मूँ समझाया, सुमरौ सास उसासी ॥5॥27॥

पहाड़ी

मेरी हरि सूँ लागी प्रीति, और बात मैंनूँ कुछ न सुहावै ॥थल॥
नींद कराँ तो सपनै आवै, जागाँ तो अँखियाँ माँह समावै।
दृष्टि न देखूँ मुष्टि न पकड़ूँ, ऐसा मोहन मीत ॥1॥
ऐसी रचना राम रचाई, देखत भूल रहे सभ कोई।
ए बाजी किसी अंत न आई, हारी लेवत जीत ॥2॥
दिन अर रात न बिसरै मोही, अंग अंग में सुमरूँ तोही।
तुम नहिं छोड़ौ हम किमि छाड़ू, ऐसी आवत चीत ॥3॥
दरिया प्रीति लगी नहिं छूटै, गुरु कृपा बहु बंधन टूटै ॥
जैसा था फिर तैसा समाया, भांगी भरम की भीत ॥4॥28

साँसौ साँस साहिब तेरे संग है, भूल भटक मत वंदा री ॥थल॥
अपने आप कूँ जानैं नाहीं, दर दर दौड़े भटकै जाई।
दौड़ पड़ै अँध कूप के माहीं, सो मन अंध निरंधारी ॥1॥
गाफिल गोता दम दम खावै, आप भूला औरों भरमावै।

आतम छोड पथर कूँ ध्यावै, उस वारो खंधारी ॥2॥
तीरथ व्रत में कुछ नहिं पाया, गिर्‌या डार अर मूल गँवाया।
सतगुरु सैन सूँ मन नहिं लाया, राम भजन बिन गंदा री ॥3॥
सबद नगारा रुणझुण बाजै, अनहद घोर गगन धुन गाजै।
भिन भिन सुन्दर सुणै अवाजी, बादल में बरसंदा री ॥4॥
दरिया राम नाम धुन लागी, कुबुधि भरमना भाठी।
गुलामअली गुरु साहब सागी, काट दिया जम फंदा री ॥5॥39॥

ओ तो पूरव जनम को वासी अविनासी,
हंसला रे तुम खोजो काया नगरी में ॥थल॥
सतगुरु सरणै लियो स धारा, मानख जनम न हारौ।
ए तो देखत ही जग जासी ॥1॥
जो देख्या सो थिर न रहा है, मात पिता सुत भाई।
ओ तो नाम बिना सभ नासी ॥2॥
ना ओ जप तप जाग र जोती, ना ओ पंडित ना ओ पोथी।
ओ तो नहीं गंगा नहीं कासी ॥3॥
मैं मेरी नहिं मुक्ति न तेरी, ना कुछ तू नहिं कुछ तेरी।
ए तो उलट गले मँह फाँसी ॥4॥
विमुख बात अर बिन पग पैंडा, कोइक सूरा जावै।
ए तो प्रेम नहीं को हाँसी ॥5॥
दरिया ए दिल दरिया सूभर में, क्योंकर फिरौ उदासी।
तू पी ले साँसौसाँसी ॥6॥30॥

सोऽहं सबद सतगुरु के बल से, घोड़ा अगम दौड़ाऊंगा ॥थल॥
सील का संज संतोष पलाणा, खासी टोट चलाऊंगा ॥1॥
अरध उरध मैदान सजाऊँ, हउमैं गोए उठाऊँगा ॥2॥
सुरति निरति का झंडा हथ करि, सुन मँह धजा ठराऊँगा ॥3॥
धरणि गगन बिच हटकत नाहीं, सीस अकास उडाऊँगा ॥4॥
दरिया प्रेम कला सूँ जाइकै, निर्भय नगर बसाऊंगा ॥5॥3॥

भूला मन भजन करौ तुम किस का।
जोई ठहरावौ सोई तुम हो, ध्यान धरौ तुम जिस का ॥थल॥
जिह्वा रोकौ पवन चढ़ावौ, ध्यान दुवारै दिस का।

'स' ससा सिफत सुबहान की, मुख सूँ कही न जाय।
ए अकल कला को खेल है, न सिर हाथ न पाँय ॥1॥
'म' मंमा मारग प्रेम का, बिन मारग चलनाह।

औघट विषमी बाट है, सूरा पहुँचै कोह ॥2॥
'र' ररा राम के नाम सूँ, जिनके लागी प्रीत।
दरिया इस संसार मूँ, हारी लेवै जीत ॥3॥
'ग' गगा ज्ञान की निरति सूँ, दिल दर्पण में देख।
हउमैं रंचक ना रहै, मन ममता की रेख ॥4॥
'ह' हहा हरि का नाम बिन, जन्म अकारथ जाय।
गुरु पारस के चरण सूँ, अपनी लिव कूँ लाय ॥5॥
'क' कक्का कारज तब सरै, जब सतगुरु लागै संग।
काम क्रोध अहंकार को, कबहुँ न लागै डंग ॥6॥
'भ' भभा भगती नाम की, मुक्ती है ता माहिं।
भवसागर की सीर मूँ, पकड़ उतारै बाँहि ॥7॥
'झ' झझा जो जो जनमिया, दम के आधर टेक।
टूटी पिंजर गिर पड़ी, माटी कूड़ा वेख ॥8॥
'ड' डडा डोरी प्रीति की, सतगुरु साहिब हाथ।
जब चाहै तब खींच ले, मेरे बस नहिं बात ॥9॥
'ल' लला लागी प्रेम की, करक कलेजे आय।
तुझ बिन मेरा को नहीं, कौन मिटावै घाव ॥10॥
'च' चचा चकवै रैन के, बिछुड़ मिलै परभात।
मेरे पीया बस नहीं, कैसे बोलूँ बात ॥11॥
'द' ददा धुन धुन है तहाँ, साधौ जिनके नाम।

तुर्कों के बहत्तर पंथ झूठे हैं जिन्होंने अलग-अलग रास्ते निर्मित कर रखे हैं। असली वचनों के बिना, बीच में ही टूट गये और काल ने पकड़कर जड़ सहित खा लिया ॥49॥

अणअच्छर ही सबद हमारा, अनासुरति की डोर लगावै।
असल नकल की करै पारखा, छिन में पूग नगर उस जावै ॥50॥

हमारा शब्द=वचन अन-अक्षर (अक्षरातीत) है। उस अक्षरातीत शब्द में यदि अनन्य सुरति=व्यभिचार-रहित चित्तवृत्ति को लगावे तो असली व नकली की परीक्षा हो जाये तथा एक क्षण में ही उस नगर=हमारे नगर ये पहुँच जाये ॥50॥

और सबद सभ रड़वा जैसा, पच पच रटि मरि जाई।
अण अच्छर तो सार सबद है, दोइ अच्छर है बाई ॥51॥

अन-अक्षर ही सार शब्द है, इसके अलावा और सब शब्द निरर्थक हैं (अन्य शब्द रड़वा=रटने जैसे हैं)। उनका रटन करके पच-पच कर मर जाते हैं। अन-अक्षर ही सार शब्द है जो दो अक्षर 'सोऽहं' है। (रोहलसाहब का गुरु मंत्र 'सोऽहं' है जो उनको उनके गुरु साँईनाथजी से मिला था। वे इसी मंत्र का उपदेश दिया करते थे, ऐसा मुझे महंत अचलरामजी ने वार्तालाप के मध्य बताया।)॥51॥

अणअच्छर तो सबद नियारा, अनासुरति के डोरी।
जो कोइ हालै नगर हमारे, मौज पकड़ ले मेरी ॥52॥

अन-अक्षर=अक्षरातीत शब्द सर्वथा विलक्षण है। उसमें अनन्य चित्तवृत्ति की लय को लगाकर जो कोई भी हमारे नगर की ओर चलता है तो वह मेरी जैसी मौज=मेरी जैसी आनन्दावस्था प्राप्त कर लेता है ॥52॥

सब कोइ लेसी नाम हमारा, और सब नाम बिगूता।
बिन सत नाम कोइ दूजा सब्द बतावै, उसकूँ मारूँ जूता ॥53॥

सभी मेरा ही नाम जपेंगे, अन्य सब नाम विनष्ट होने वाले हैं। सत्य नाम के अलावा यदि कोई दूसरा शब्द बताता है तो मैं उसको जूतों से मार मारूँगा ॥53॥

अनुभव कथै ग्यान बहु भाखै, झूठा जगत रिझावै।
बग ज्युँ ध्यान दुनिया में राखै, जे कोइ दाम चढावै ॥54॥

पाखंडियों का आचरण बताते हैं, अनुभव का कथन करते हैं, नाना तरह का ज्ञान कहते हैं और जागतिक लोगों को झूठ के द्वारा प्रसन्न करते हैं। बगुला जैसा ध्यान जगत् में बैठकर लगाते हैं, उनके सामने, जो उनकी सेवा में धन भेंट करते हैं ॥54॥

वहाँ मानसरोवर के हंस हैं जो मुझसे वियुक्त होकर इस अभ्यासी के आदेशानुसार मानव देह में अवतरित हुए हैं ॥66॥

कोइ इक साध फकीर विरागी, अविगत कूँ ले ध्यावै।
मेरा स्रूप अरूप है न्यारा, उसकी खबर न पावै ॥67॥

कोई-एक साधु, फकीर, वैरागी अविगत की साधना करता है किन्तु मेरा स्वरूप तो अरूप है, विलक्षण है, उस अरूप का बोध प्राप्त नहीं कर पाते ॥67॥

ररंकार अटल कोटि बसै औलिया, अविगत का अविनासी ओला।
जिस घर सूँ बिछुड़ के आया, उस घर का पड़ गया झोला ॥68॥

अटल किले में ररंकार अवलिया बसता है जहाँ अविगत का अविनाशी पर्दा है। जिस घर से वियुक्त होकर यहाँ आया, अब उस घर से दूरी हो गई है ॥68॥

सब्द प्रवाणा पहुँचे नाहीं, सुरति निरति थक जासी।
अगला देह सुभाव न जावै, गर्क पड़्या माहिं चौरासी ॥69॥

शब्द का परवाना वहाँ पहुँचता नहीं। सुरति व निरति भी थक जाती हैं। पिछले जन्म के स्वभाव=संस्कार नष्ट नहीं होते। चौरासी-लाख योनियों में आकंठ डूब जाता है ॥69॥

अविगत सूँ पैंडा है ओखा, उसका किस कूँ नाहिं विचारा।
जो कोइ होवै हंस हमारा, खोज कहूँ मैं सारा ॥70॥

अविगत से आगे का रास्ता दुर्गम है। उसका किसी को भी बोध नहीं है। जो भी कोई हमारा हंस=मुक्तात्मा है, उसको मैं, उसका पूरा खोज=बोध करा देता हूँ ॥70॥

अविगत की सेत सुंन सूँ, चार करोड़ सुन आगै।
बिना आवाज न आवाज होवत है, लोप जावै नर पागै ॥71॥

अविगत की श्वेत शून्य से चार करोड़ शून्य आगे, बिना आवाज, जहाँ आवाज नहीं होती है और नर के पैर (चिह्न) लुप्त हो जाते हैं ॥71॥

फिर उसके आगै चार करोड़ गूंगी सुन है, गूंगा होइ गम जानै।
अचरज खेल अचंभा परसै, ऐसा देस पिछानै ॥72॥

उसके आगे चार करोड़ मूक शून्य का देश है जिसका मर्म गूंगा होकर ही पाया जा सकता है। वहाँ आश्चर्य-मय अचंभित करने वाले खेल का दर्शन होता है; उसको ऐसा देश जानो ॥72॥

पिया के वदन पर अचानक दृष्टि परी ॥थल॥
किहिं से कहुँ इन सुख की बतियाँ, आसा सगल सरी।
ब्रह्म अग्नि की जब धूणि धुकाई, मन की ममत जरी ॥1॥
रोहल रात गई दिन पाया, लागी प्रीति खरी।
पिया के वदन पर अचानक दृष्टि परी ॥2॥5॥

जेड्यूँ=सखी। मुंहिंजो=मेरा। जीअड़ौ=मन। खरी=सच्ची। वदन=मुख। रीझना=मुग्ध होना।

सखी! मेरा मन प्रियतम के मुख पर, जिस पर मेरी दृष्टि अचानक पड़ी आसक्त हो गया है ॥थल॥ इस सुख की बातें किससे कहूँ अथवा किस प्रकार कहूँ? मेरी समस्त मनोऽभिलाषाएँ सिद्ध हो गयी हैं। जब ब्रह्माग्नि की धूनी को धधकाया, तब उस मन में बसी ममता जल-भुन कर खाक हो गयी ॥1॥ रोहल कहते हैं- अज्ञान रात्रि व्यतीत हो गयी, ज्ञान-दिवस का उदय हो गया और फिर प्रियतम से सच्ची प्रीति लग गयी। हे सखी! प्रियतम के मुख पर अचानक दृष्टि पड़ी ॥2॥5॥

मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥थल॥
ना जाणाँ कहा चेटक लाया, आप कनूचा आप मिलाया।
पाया प्रेम की डोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥1॥
सुरति निरति की धुनी लगाई, बिन जिभ्या के बात बताई।
खींस लिया दिल जोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥2॥
अनहद वाणी अखँड धुनि लागी, भया चित चेतन कुबध्या भागी।
त्रोड़ लागी तोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥3॥
पाँच सखी मिल मंगल गाया, रोहल रात गई दिन पाया।
मिलिया स्याम किसोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥4॥6॥

मेरी मोहन के प्रति प्रीति लग गयी है ॥थल॥ नहीं जानती, उसने कौनसा जादू किया है, स्वयं कनुचा (कन्हैया) ही आकर मेरे से मिला है। उसने मेरे ऊपर प्रेम की डोरी डाली है। मेरी मोहन से प्रीति लग गयी है ॥1॥ मैंने सुरति व निरति की ध्वनि लगाकर बिना जिह्वा के ही आत्मसाक्षात्कार की बातें बतायीं। जबरदस्ती करके मोहन ने मेरा मन आकर्षित कर लिया है। मेरी मोहन से प्रीति लग गयी है ॥2॥ अनहद वाणी की अखंड ध्वनि शुरू हो गयी। कुबुद्धि नष्ट हो जाने से चित्त चेतन हो गया। हे मोहन! तेरी लगन लग गयी है। मेरी मोहन के प्रति प्रीति लग गयी है ॥3॥ रोहल कहते हैं- पाँच सखियों (पंच ज्ञानेन्द्रियों) ने मिलकर मंगल गान किया। अब अज्ञान-रात्रि व्यतीत हो गयी तथा ज्ञान-दिन का उदय हो गया। मोहन व किशोरीजी मिल गये। मेरी मोहन से प्रीति लग गयी है ॥4॥6॥

घट हि में चन्द्र घट हि में सूरज, घट हि में नौ लख तारा।
कैहत रोहल सुनौ भइ साधौ, ढूंढ लधा घर सारा ॥2॥9॥

फकीरों को साहब प्यारा लगता है ॥थल॥ शरीर में ही गंगा, शरीर में ही यमुना व शरीर में ही ठाकुरद्वारा है। घट में ही ब्रह्मा तो घट में ही विष्णु है। घट में ही शिव का प्रसार–निवास है ॥1॥ शरीर में ही चन्द्रमा, शरीर में ही सूर्य, और शरीर में ही नौ लाख तारे हैं। रोहल कहता है- हे साधु भाई! सुनो, सारे घर=शरीर को ढूंढकर मैंने इसमें ही परमात्मा को लधा=पा लिया है ॥2॥9॥

ऐसा कोइ हंसा काया गढ जीतै, देस हमारे आवै ॥थल॥
कर्मजाल के माहिं अलूधा, किमि कर फंद कटावै।
पूरे गुरु के चरण कमल पर, अपना सीस नमावै ॥1॥
सत सब्द सत नाम का बेड़ा ले, प्रेम की फौज चढावै।
सुरति निरति का झंडा रोपै, डेरा सो अगम डोरावै ॥2॥
अर्ध उर्ध महिं करत लड़ाई, बावन जोध हटावै।
पाँच पचीस का डेरा लूटै, आगे मँजिल उठावै ॥3॥
मन कूँ मार सभ देखत लोपै, अनिल का खेल समावै।
धाम अदीठ का बाँध मकाना, निरगुण का गुण गावै ॥4॥
हद घर छोड बेहद घर चलिया, फिर पाछा नहिं आवै।
चौथे पद सूँ पद्द अगोचर, पूरा होवै तो पावै ॥5॥
रोहल नाम अनाम अनामी, निज निहनाम कहावै।
अचरज अपरम कह्यो न जावै, गैबी गैब समावै ॥6॥10॥

कर्मों के जाल में फँसा, कैसे भी करके, फंदे को काटकर कोई जीवात्मा, काया रूपी गढ़ को जीतकर हंस बनकर हमारे देश में आता है और पूर्ण गुरु के चरण-कमलों पर अपना मस्तक नमाता है ॥टेक1॥ वह सत्य रूपी उपदेश व सत्य रूपी ही भगवन्नाम का जलपोत बनाकर प्रेम रूपी फौज को उसमें बैठाता है। सुरति व निरति के झंडे को उस जलपोत पर लगता है और अगम-स्थान रूपी डेरे की ओर उसको चलाता है ॥2॥ अर्ध व उर्ध (प्राण व अपान दोनों को मिलाना) दोनों ओर लड़ाई करके बावन योद्धाओं को रणक्षेत्र से हटाता है। पाँच तत्त्व व पचीस प्रकृतियों के डेरे को लूट लेता है और आगे की मंजिल को पाने को उठ खड़ा होता है ॥3॥ सभी के देखते-देखते मन को मार देता है। अनिल=वायु=प्राणों के खेल (प्राण व अपान को एक करने के खेल) में समाता है। अदृष्टधाम का मकान बनाकर निर्गुण परमात्मा का गुणगान करता है ॥4॥ ससीम घर=देह, संसार को छोड़कर

आवै न जावै मरै न जनमें, उतपति परलय नाहिं।
संत साहब का करत विलासा, इन असथानाँ माहिं ॥4॥
आकार हि बुदबुदा ज्यूँ जल के माहीं, त्यूँ इन घर अकल दरियाह।
आप हि उपजै आप हि विनसै, कैत यूँ रोहल साह ॥5॥38॥

साहिब का कोई ही ऐसा साधु होता है जो उन्मनी सहज समाधि में खेलता, निमग्न रहता है ॥थल॥ सत्य-शब्द की डोरी पकड़कर निशि-दिन उसी की ध्वनि में लगता है। पाँच व पचीस का भर हटाकर आशा व तृष्णा को त्याग देता है ॥1॥ ऊपर-नीचे का (प्राण व अपान को एक करके) निपटारा करके दोनों को एक प्राण के रूप में रखो। जब काया का अस्तित्त्व अलग हो जाता है, उसके उपरान्त ही निर्वाण की स्थिति बनती है ॥2॥ पिंड व ब्रह्मांड रूपी अंडे के फूटने पर ही अमरलोक-धाम की प्राप्ति होती है। वह अडिग, अविचल देश कहा जाता है। वहीं हंस विश्राम पाता है ॥3॥ उस अडिग, अविचल देश में न आता, न जाता है। न मरता, न जन्मता है। वहाँ उत्पत्ति व प्रलय भी नहीं है। संत, साहिब का विलास करता है, इन स्थानों में ॥4॥ जैसे जल में जल का बुदबुदा आकारवान होता है, वैसे ही इनके घर में (अडिग, अविचल के घर में) अकल (न कलने वाला) दरियाव है। आप स्वयं ही उपजता व आप स्वयं ही विनशता है, ऐसा रोहलशाह कहता है ॥5॥38॥

साधौ नगर हमारा न्यारा।
और लोक सब ऊरा रह गया, परसै कोइ हंस प्यारा ॥थल॥
आदि पुरुष सिव विष्णू ब्रह्मा, इन चारों का विसतारा।
चौदह लोक इकीसों ब्रह्मँड, ये ही भेद पसारा ॥1॥
धर्मराइ है सभ का राजा, ले जीव नरक में डारा।
अखै वृछ मूँ अवतार उपना, वैकुँठ माहीं करत गुजारा ॥2॥
इछा सरूपी आदी माया, ओ भी चलत करत चौधारा।
बडे बडे औ सुर नर मुनिजन, अंतै छल छल मार्‌या ॥3॥
तेतीस करोड़ देव स्वर्ग में बैठा, नखत्र नौ लख तारा।
कलंक लगाया ले गौतम चांद कूँ, सूरवीर गिरनारा ॥4॥
सहस ऊपर पाँच नाम ठहराया, तीन अंड माहिं दोइ भारा।
अजर अजोनी चन्द्र सत सुकृत ध्यावै, यूँ नहिं उतरै पारा ॥5॥
सत्रह खंड पर चार धाम है, जिस पर जम का द्वारा।
एक निरंजन चार सिकारी, बाजै काल नगारा ॥6॥
इस पद अतीत नहिं मानै परवाना, किसी का न चलै सारा।
ररंकार अवगत पर उलट्या, हंस वाँ का संघारा ॥7॥

प्यारे सब्द की डोर लगाइ, चढ़ मकड़ी तार सूँ।
अनासुरत वृति धार, अलिप संसार सूँ ॥4॥
प्यारे करि सतगुरु को संग, पियाजी सूँ मिल रहौ।
औ सुख आनंद विलास, किसी कूँ मत कहौ ॥5॥
प्यारे सदा रहौ गलतान, मंगल गाविए।
रोहल साहब की धाम, हंसा पाविए ॥6॥50॥

हे प्यारे! आज पूर्णमासी है। कंथन=प्रियतम के साथ सम्बन्ध जोड़। हर्ष सहित निज भाव रख। अंत में अचरंग है ॥1॥ प्यारे! सोलह शृंगार सजाकर सत्संग में जा, भ्रम के पड़दे को तोड़; कुल की लज्जा को गँवाकर ॥2॥ प्यारे! यह काया दो दिन की है, थोड़ा-बहुत सुकृत (पुण्य) कर। निज नाम के अमृत का प्याला पी ॥3॥ प्यारे! शब्द की डोर (लय) लगाकर उस पर उसी प्रकार आरूढ़ हो जैसे मकड़ी लार से तार बनाकर बार-बार जाला पूरने को आती-जाती है और उसी में बन्द हो जाती है। अनन्य-वृत्ति परमात्म-नाम में लगाकर संसार से दूर हो जा ॥4॥ प्यारे! सद्‌गुरु की संगति करके प्रियतम से मिलकर रह। प्रियतम से मिलने का आनंद-विलास किसी से भी मत कह ॥5॥ प्यारे! सदैव प्रियतम में निमग्न रह और मंगल-गान कर। रोहल कहते हैं, साहिब की धाम हंसों को मिलती है ॥6॥50॥

प्यारे करौ आज आनंद उछाव, तिथि पूनम वार है।
प्यारे रिलमिल करौ सनेह, सतसंगत सार है ॥1॥
प्यारे वंदन कर होइ अधीन, गुरु के चरनौं रहौ।
राख निरंतर ध्यान, सत नाम अह निसि कहौ ॥2॥
प्यारे सुद्ध सुरत मिलाइ, कर दीदार सरूप का।
असंख ससि सूर उजवाल, अखंड अनूप का ॥3॥
प्यारे अखंड अनूप है आप, दरसन पर आनियो।
हंसा करै कलोल, वचन मेरा मानियो ॥4॥
प्यारे उहाँ गयाँ नहिं आवै, देह पाछै धराइ कै।
रोहल अमर पुरुष के धाम, पूगा हंसा जाइकै ॥5॥51॥

प्यारे! आज आनंद का उत्सव करो। आज पूनम तिथि है। प्यारे! हिल-मिलकर स्नेह करो, सार रूप सत्संगति है ॥1॥ प्यारे! शरणागत होकर वन्दना करो और गुरु के चरणों की सान्निध्य में रहो। निरंतर ध्यान करो। अहर्निशि सत्य-नाम का स्मरण करो ॥2॥ प्यारे! शुद्ध सुरति को प्रियतम से मिलाकर उसके स्वरूप का दीदार कर। उसका प्रकाश असंख्यों चन्द्रमा, सूर्य के अनुपम अखंड प्रकाश के समान है ॥3॥ प्यारे! प्रियतम अखंड व अनुपम है, दर्शन प्राप्त कर ताकि तेरी आत्मा आनंद-केलि करे, मेरा यह वचन मान ले ॥4॥ प्यारे!

भूला क्यों फिरौ वनवास।
सबद की करौ सुमरना, जपौ सासौ सास ॥थल॥
कइ कहता धरणि पर है, कइ ढूंढत आकास।

सोध लियो घट भीतर, है तुम्हारे पास ॥1॥
कइ कै हंसा मक्का जावन, कइ न्हावन गंगा पास।
सिर साँटे साँई मिलै, पथर नदी का दास ॥2॥
तेरा साहिब तुझ महीं, तुम तजौ औराँ की आस।
सिंह भूखा जे मरै, फिर ना खावै घास ॥3॥
गुरु तो रोहल हम कूँ मिलिया, काटिया जम फास।
दिन रैण हम कूँ येही है, तेरे चरणों का विश्वास ॥4॥
साहु स्वामी गुरु मेरा होया, दासन को मैं दास।
जन गुलाम अली सरन तेरी, आवागमन निवास ॥5॥1॥

सतगुराँ के सबद मैंनूँ, जादू रो कैसो जगायो ॥थल॥
गणेशजी के देस सूँ कोइ, अटल आसण आयो।
ब्रह्माजी देखौ सृष्टि को, कोइ ऐसो रंग रचायो ॥1॥
विष्णुजी के दास का कोइ, नाभी थाँव बतायो।
देस में महेस देख्या, दिल द्वारै ध्यायो ॥2॥
कंठ में अखंड देख्यो, सरसती को सायो।
गंगा जमना सुषमना, निज नीर तीरथ न्हायो ॥3॥
त्रिवेणी के सीर पर, मैंने अनहद नाद बजायो।
दामिनी ताँ सीस चमकी, दसवें द्वार दरसायो ॥4॥
गुरु तो रोहल हम कूँ, ऐसो ब्रह्म भेद बतायो।
सुन माहीं मेरी धुन लागी, बिन जिभ्या गुन गायो ॥5॥
शाहू शाह गुरु हेत सूँ, मैनूँ प्यालौ प्रेम पिलायो।
गुलामअली प्रेमरस को, पी मद छक छायो ॥9॥2॥

घट में गंगा घट में जमना, घट में तीरथ न्हाया है ॥3॥
काया नगर में जोति जलत है, दरसन दुर्लभ पाया है ॥4॥
रोहलसाहब किरपा कीनी, तब यह भेद बताया है ॥5॥
गुलामअली गुरु शाहू साँई, चरणनि सीस नवाया है ॥6॥16॥
राम नाम लिव लावणा, और दिसा नहिं जावणा ॥थल॥
सतगुरु हम कूँ भेद बताया, तब आपै आप कूँ ध्याया।
सहजे सहज समावणा, राम नाम लिव लावणा ॥1॥
जब आपै आप में ताली लाई, तब एकाएक में रह्यो समाई।
प्रीति उसी कूँ पावणा, राम नाम लिव लावणा ॥2॥
ना को मूआ ना को जीया, ना को गया ना को आया।
मन का मैल मिटावणा, राम नाम लिव लावणा ॥3॥
एकौ एक रह्यो जब होकै, गुलामअली गुरु शाहू के।
चरणनि सीस नवावणा, राम नाम लिव लावणा ॥4॥17॥

साधौ मैं उसी देस का वासी, जहाँ आवागमण न चौरासी ॥थल॥
तन की तीरथ परगट पाया, सिमरौं सास उसासी।
गंग जमन का भरम मिटाया, क्या वृंदावन कासी ॥1॥
यहाँ चन्द्र न सूर नदी पग बाटी, जोति में जोति प्रकासी।
हद बेहद दोनों ही नाहीं, आप में आप उदासी ॥2॥
ये संसारा झूठ पसारा, देख्या सगल सो नासी।
आपै आप कूँ ताळी लागी, नहिं को धरणि अकासी ॥3॥18॥

रेखता

दो दिना का मेला, मेला मेला सोई मेला ॥थल॥
जोई जाया रहण न पाया, चलणा एक अकेला ॥1॥
रैन गई जब उड चलिया है, पीछै करत बसेला ॥2॥
तू जो करता मेरा मेरा, छोड र चल्या सवेला ॥3॥
जान जगत सब झूठी बाजी, बजीगर का खेला ॥4॥
गुलामअली है एकौ एक, सोइ गुरू सोइ चेला ॥5॥19॥

नैनन लागो मेरो आज तुम सूँ, छोडाँ तो अब छूटै नाहिं ॥थल॥
ऐसा खजाना जो हम कूँ मिलिया, खर्चां तो अब खूटै नाहिं ॥1॥
जल नहिं डूबै न अग्नि जलावै, पाधर पड़्यो कोइ लूटै नाहिं ॥2॥
प्रेम बिना बहु जतनाँ करहै, ममता मटकी फूटै नाहिं ॥3॥

शब्द ब्रह्म एकै जब भयऊ। जीव आत्मा कहाँ तब गयऊ।।
हे सतगुरु कहि ब्रह्म मिलावहु। आतम जीव सहित समुझावहु।।

साख़ी

सुरति मिलाओ निरति में, जीव सीव को मेल।
दोबिधा भाव मिटाइए, एक अलख को खेल।।

चौपाई

जब गुरु संज्ञा युक्ति बतावै। सहजै सुरति निरति को पावै।।
जैसे सागर बुन्द समाना। सागर भयउ अकार बिलाना।।
तैसहिं शब्द समुद्र कहावै। जीव बुन्द को अन्त न पावै।।
शब्द ब्रह्म जब आतम माहीं। नाम समुन्द्र दुतिय कोउ नाहीं।।
'भीखा' संसय मन कै व्याधी। ब्रह्म रूप निज लाव समाधी।।
दूजा कपट छोड़ि चतुराई। आपै आप निरंजन पाई।।

साख़ी

भीखा दूसर है नहीं, केवल एकै नाम।
दूसर माया मूढ़ है, मन उनमेख निकाम।।

एक पवन के थकि गए, सकल क्रिया थकि जाय।
तब लग मन धावन रहै, जब लगु पवन समाय।।

चौपाई

'भीखा' यही सुरति मन जानो। सत्य एक दूसर मति मानो।।
हे प्रभु जी यक करते ढिठाई। कहत बात जिव बहुत डेराई।।
योग मता नहिं मुनि ठहरावैं। यामें भर्म सन्देह बतावैं।।
साच कहैं कि मिथ्या जानी। सहित बिचार कहिए निज बानी।।
सहज समाज सुगम ठहरावैं। शब्द स्वरूप आत्मा बतावैं।।
शुध स्वरूप सो केहि बिधि जानी। सहज समाधि कैसे पहिचानी।।

एक पवन के थकि गए, सकल क्रिया थकि जाय।
तब लग मन धावन रहै, जब लगु पवन समाय।।

चौपाई

'भीखा' यही सुरति मन जानो। सत्य एक दूसर मति मानो।।
हे प्रभु जी यक करते ढिठाई। कहत बात जिव बहुत डेराई।।

चौपाई

सोहं नाम बोलता ओई। आपै आप दुजो नहिं कोई।।
ताकी बार पार कहुँ नाहीं। सो जानै जो सत्गुरु पाहीं।।
सुन्य अकास बोलता ओई। स्वासा अर्ध उर्ध सम होई।।
ताको भेद कोई कोई जानै। जो सतसँग गुरु पहिचानै।।
सोहं सुन्य निरन्तर एका। हरिदम सोहं-सोहं एका।।
गंग जमुन को धारा येही। चन्द्र अरु सूर्य बने घर जेही।।
अर्ध उर्ध निसुबासर बहई। मध्य सरोस्वति संगम लहई।।
इंगला पिंगला सुषमनि सोई। एकै पवन दूजो नहिं कोई।।

साख़ी

भीखा पान अपान मिलि, लागो सुन्य समाधि।
सकल कृपा को अन्त यह, समुझहु महा अगाधि।।

दूजो और उपाय नहिं, आपुहिं आपको ध्यान।
देखहु आपा आप में, सो यहि बिधि गुरुज्ञान।।

चौपाई

हे प्रभुजी मैं तुम्हारी सरना। मता अगूढ़ समुझ नहिं परना।।
पान अपान कहाँ ते आए। कौन बिधि घट आनि समाए।।
ताकर आदि अन्त कहि दीजै। मोहिं पापी को आपन कीजै।।

21:39

अथ रांम नांम सिवरन विचार*

आदि एक ररंकार कुं, सिवरयां सिध न होय ।
जनहरीया ममंकार मिल, यु पंछी पर दोय ॥ १ ॥
उडि पंछी असमांन कुं, पुंहच न सधै कोय ।
जनहरीया ममंकार मुष, रह्या अधसलै होय ॥ २ ॥
ररंकार रहता पुरस, कीया कराया नांहि ।
हरीया सहजां होत है, रग रग रसनां मांहि ॥ ३ ॥
ररंकार पछिम दिसा, उलटि चढै असमांन ।
हरीया नामी पूरब दिस, ममा थकि रह्या प्रांन ॥ ४ ॥
हरीया रसनां नाभ लग, ममंकार की दौर ।
रोम रोम ररंकार हुय, ममंकार नही ठौर ॥ ५ ॥
ममंकार माया मिलै, औ तौ ईथिर रूप ।
जनहरीया ररंकार मिल, अणभै अटल[1] अरूप ॥ ६ ॥
ररौ ममौ दोय मंत्र है, या सेती लिव लाय ।
हरीया जब तब सिवरतां, लेसी पार लंघाय ॥ ७ ॥
अैसैं छाया विरष सुं, हरीया रही लपटि ।
जैसैं माया ब्रह्म सुं, कैसैं जाय विछटि ॥ ८ ॥
रांम रांम रटता रहै, आठुं पौहर अभंग ।
हरीया कबहक सहज मैं, एक न दूजै संग ॥ ९ ॥†

---

* (क, ख, ग) में यह ग्रन्थ नहीं है, एवं 'घ' प्रतिमें इसका नाम "ररै ममै समरण" है ।

(६) १. (घ) अकल ।

† (घ) में १०–११–१२–१३ क्रमशः साषियाँ नहीं हैं ।

ऐसी स्थिति होनेके पश्चात् ओऊँ=हंसः और सोऊँ=सोहं-इन दोनोंके "हंसः सोहं सोहं हंसः" इस अजपा[1] नाम गायत्रीके जपका ज्ञान प्राप्त होनेसे परब्रह्म परमात्माके दर्शनकी प्राप्ति होती है वह हुई ॥१०॥

---

१ अजपाके जपसे परब्रह्म परसता है—

ओऊं सोऊं जाप अजप्पा, घटमें कीया संप असंपा।

(श्रीहरि० वाक्यम्)

ओऊं सोऊं अर्थात् हंसः सोहं अजपा जप है। इसने घटमें असंप (जीव ब्रह्मका भेद) का संप (अभेद) कर दिया—ठीक वाच्यार्थ सफल कर दिया।

उलटा अजपा जाप जपाया। हद को जीत वेहदमें आया॥

(श्रीराम० वाक्यम्)

नासापथसमाकृष्टः पवनः फुफ्फुसं गतः।
शोधयेच्छोणितं दुष्टं तेन जीवन्ति जन्तवः॥ १॥
सोहंशब्देन जीवानां श्वासोच्छ्वासौ निरन्तरम्।
स्यातां वा हंसशब्देनोच्छ्वासश्वासौ विपर्य्ययात्॥ २॥
इत्ययं द्व्यक्षरो मन्त्रो जीवजप्योऽजपा मता।
जपारम्भो हि जननं मरणं तत्समापनम्॥ ३॥

इसी अजपा मन्त्रको अजपा गायत्री कहते हैं।

एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम्॥ ४॥
विना जपेन देवेशि जपो भवति मन्त्रिणः।
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी॥ ५॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

अजपा नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।
षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः॥ १॥
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं हंसः सोहं क्रमेण वै।

(कुलार्णव)

जातः स इति वै शब्दमुच्चार्यारभते जपम्।
महाप्रयाणसमये हमुच्चार्य समापयेत्॥ १॥

(दक्षिणामूर्तिसंहिता)

गायत्री, हंसविद्या, आत्ममन्त्र एवं प्राणयज्ञ आदि कहा गया है। रुद्रयामल में इस जप का विधान इस प्रकार है—

प्रणवाज्जायते हंसो हंसः सोऽहं परो भवेत्।
सोऽहं ज्ञानं महाज्ञानं योगिनामपि दुर्लभम्।।
निरन्तरं भावयेद् यः स एव परमो भवेत्।
हं पुमान् सः स्वरूपेण चन्द्रेण प्रकृतिस्तु सः।।
एतद्धंसं विजानीयात् सूर्यमण्डलभेदकम्।
विपरीतक्रमे सैव सोऽहं ज्ञानं यदा भवेत्।।
तदैव सूर्यगः सिद्धो वासुदेवप्रपूजितः।
हकारार्णं सकारार्णं लोपयित्वा ततः परम्।
सन्धिं कुर्यात् ततः पश्चात् प्रणवोऽसौ महामनुः।।

स्कन्दपुराण की वैष्णवसंहिता के पाँच अध्यायों में प्रणव-साधना का अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और उसमें—१. प्रणवकवच २. प्रणवहृदय ३. प्रणव-पुरश्चर्या ४. प्रणवाष्टोत्तरशतनाम ५. प्रणवगायत्री ६. प्रणवमालामन्त्र ७. प्रणवस्तोत्रराज ८. प्रणवगीता ९. प्रणवसहस्रनाम आदि की भी पुष्कल विवेचना की गई है।

श्रीधर स्वामी की दृष्टि—गीता के (४.२६) श्लोक 'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे' की व्याख्या करते हुये श्रीधरस्वामी ने पूरक-रेचक में अवस्थित हंसमन्त्र और अनुलोम-प्रतिलोम द्वारा उसके सोऽहं रूप में परिणति की अच्छी व्याख्या की है।

उत्तरगीताकार भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि—अर्जुन के द्वारा प्रश्न करने पर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को उत्तर देते हुये हंसात्मक आत्ममन्त्र के विषय में अपनी दृष्टि इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

आत्ममन्त्रस्य हंसस्य परस्परसमन्वयात्।
योगेन गतकामानां भावना ब्रह्म चक्षते।।
शरीरिणामजस्यान्तं हंसत्वं पारदर्शनम्।
हंसो हंसाक्षरं चैव कूटस्थं यत्तदक्षरम्।।
तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जह्यान्मरणजन्मनी।।
काकीमुखककारान्त उकारश्चेतनाकृतिः।
अकारस्य च लुप्तस्य कोऽर्थः सम्प्रतिपद्यते।।
गच्छंस्तिष्ठन् सदाकालं वायुस्वीकरणं परम्।
सर्वकालप्रयोगेण सहस्रायुर्भवेन्नरः।
यावत्पश्येत् खगाकारं तदाकारं विचिन्तयेत्।।
खमध्ये कुरु चात्मानमात्ममध्ये च खं कुरु।
आत्मानं खमयं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।

साधा अमरददास के शब्दों में

बिन सतगुर मन न लहै कोटिक करौ उपाय ।

निश दिन मन भटकत फिरै और कछू न दांव ॥१

किन्तु जब साधक सद्गुरु की शिक्षा में मन लगाकर प्रत्येक श्वास पर 'सत-अविगत' का स्मरण करता हुआ मन की सुरति को उसी में लगा देता है, तब मन के करोड़ों विकार नष्ट हो जाते हैं-

गुरु की सीख लगा मन लीना । स्वासा सै सत सुमरन कीना ।२

सत सुमरन से सुरत समोवै । कोट विकार इस मन के खोवै ।।३

साधा करन जी 'रिज रिंज रोग कटा इस मन का तो वैसी बताई गुरु वैदी'[4] के द्वारा गुरु वैद से मन के विकार रूपी रोग के नष्ट होने की बात कह कर मन से परित्राण पाने का ही प्रतिपादन करते हैं । साधा अमरददास जी 'सहज भाव से करौ अवेषा । मन से मारौ भरम अंदेसा ।।'[5] के द्वारा मन से भ्रम और संदेह को मारने की बात कहकर मन से परित्राण पाने का ही उपाय निर्दिष्ट करते हैं । साधा मोतीलाल मन को विषय-वासनाओं से हटाकर उज्ज्वल करने से मोक्षोपलब्धि की बात कहकर मन से परित्राण पाने का उपाय बतलाते हैं-

जिन मन को उज्जल कीना । जब मुक्त पदारथ लीना ।।६

साधा तेजराम 'सत शब्द का फिरा मसकला माईं मैल कटा इस मन का ।'[7] के द्वारा सत अविगत की भक्ति से मन के विकार रूपी मैल के कटने की बात कहकर मन से परित्राण पाने के उपाय का प्रतिपादन करते हैं ।

उपर्युक्त पंक्तियों में साधों की मन सम्बन्धी धारणा प्रतिपादित की गयी है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका मन-वर्णन उपनिषद्, गीता, एवं निर्गुण काव्य से बड़ा साम्य रखता है । वस्तुत: साधों का मन-वर्णन परम्परा गत मन-वर्णन के अनुकूल ही है ।

१-ध्यान बानी-छं० सं० २२७

२-वही, २२८

३-वही, २३०

४-निरवानग्यान, बानी सं० ६११

५-~~मन्त्र~~- ध्यान बानी, छं० सं०२०६

६-~~सं०२४८~~ 'ग्यानसागर', छं० सं० ३४८

७-निरबान ग्यान, बानी सं० ५७१

करने की क्रिया को पूरक, उदरस्थ वायु को यथा-

प्राणायाम के तीन अंग पूरक कुम्भक और रेचक हैं । वायु के नासिका द्वारा उदरस्थ/ शक्ति रोकने की प्रक्रिया कुम्भक कहलाता है तथा भरा हुआ अशुद्ध वायु को नासिका द्वारा शनैः शनैः बाहर निकालने की क्रिया को रेचक की संज्ञा दी जाती है ।[1] कुम्भक के आठ अंग माने गये हैं । उनके नाम क्रमशः सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतकार, शीतली, भस्त्रिका, मूर्च्छा, भ्रामरी और प्लाविनी है ।[2] सन्त सुन्दरदास ने भी इन सबका उल्लेख किया है ।[3] संत कबीर ने प्राणायाम का वर्णन किया है ।[4] डा० रामकुमार वर्मा ने वायु-साधना से सम्बन्धित संत कबीर के कई सुन्दर उदाहरण उद्धृत किये हैं ।[5]

यह बात हम पहले कह चुके हैं कि साधु लोग शास्त्रीय पंडित नहीं हैं । अतः उनकी रचनाओं में प्राणायाम का शास्त्रीय विवेचन के अन्वेषकों को निश्चय ही निराश होना पड़ेगा । उन्होंने तो केवल मन व पवन साधन का उल्लेख कर प्राणायाम का संकेत मात्र किया है । साधु अनरददास जी कहते हैं-

मनपवने बिन सुरतन लागै । निश दिन मन ममता संग भागै ।

-ध्यानवानी, छं० सं० १०२

सुखमन और पवन बिचार के सुखमन रहे समाय ।

स्वांसी सुमरन रच रहे तब गुर दरस दिखाय ।।वही, छं० २१२

साधु भमानीदासके शब्दों में —

बिन मन साधे जोग न पावै । चाहै जिसी व्याधि उपजावै ।

-नौ निद्धी, सं० १ छं० २

१-दर्शनोपनिषद्, ६।१ व योगचिन्तामणि उपनिषद्-६५ से ६७

२-योगकुण्डल्युपनिषद् १।१९-२५, १।२६ व २६, १।३०-३१, १/३३व३६ तथा हठयोग प्रदीपिका २।४३, २।६०, २।६७, २।४५ ।

३-डा० त्रिलोकीनारायण जी दीक्षित, 'सुन्दरदर्शन' पृ० ३८

४-कबीर ग्रं० पृ० १५७

५-कबीर का रहस्यवाद-१९३१, संस्करण पृ०

अवगत अगम अपार धानी सत । तामे सुरत बसावो रे ।
त्रिकुटी मध्ये निरत सुधकर । सार शब्द तहां जोवो रे ।परमाती, छं०७ से।

प्रत्याहार का चौथा साधन 'प्रणवजप' है । यह जप संख्या मे एक लाख बीस हजार होने पर ही प्रत्याहार की सिद्धि होती है । साधों ने अपना साधना में जप को तो बहुत अधिक महत्व दिया है, किन्तु उसका संख्या के उल्लेखीकरण के सम्बन्ध में सभी साध समान रूप से मौन हैं । उन्होंने प्रणव जाप के स्थान पर 'अजपाजाप' को ही विशेष महत्व दिया है । इस अजपाजाप का वर्णन हम जप शीर्षक के अन्तर्गत पाठ कर चुके हैं । इनके अतिरिक्त अन्य साधनों का उल्लेख स्पष्ट रूप से साधों की कृतियों में नहीं मिलता है । यह बात दूसरी है कि बहुत खोज करने पर एकआध उदाहरण मिल जाये, किन्तु सामान्य रूप से उनका अभाव है ।

प्रत्याहार की सिद्धि का पाँचवाँ साधन मनोवृत्ति को श्वासोच्छ्वास के लय स्थान पर स्थिर करना है । साधों का 'शब्दसुरति-योग' प्रत्याहार के इसी साधना पर आधारित है । श्वासोच्छ्वास के उद्भव का स्थान सहस्रार माना जाता है । इस सहस्रार में ही मनोवृत्ति को स्थिर करना पड़ता है । शब्द सुरति-योग में भी सुरति को सहस्रारस्थ शब्द में लीन करना पड़ता है । उस दशा में शब्द-सुरति योग को हम प्रत्याहार सिद्धि का एक साधन मानते हैं । बहुत से साधों ने सुरति को मनोवृत्ति के रूप में वर्णन किया है । साध अनरददास के शब्दों में-

ऐसी विधिया धार है काम करै उपचार ।
सुरत सुहंग चढ़ चलै चित मन करै विचार ।।साध अनरददास,
ध्यानबाना, छं०१२

साध भूपनारायण "परमहंस कोई शब्द सनेही ऊपर सुरत चढ़ावो हो"[1] के द्वारा उपर्युक्त कथन का ही समर्थन करते हैं ।

1-परमाती, 1।1

साधों की कृतियों में हमें वायु साधना के विविध स्वरूपों का दर्शन नहीं होता है। उन्होंने उसका शास्त्रीय निरूपण नहीं किया है, किन्तु फिर भी कतिपय साधों की रचनाओं में हमें उसके संकेत मिले हैं। यहां पर कुछेक साधों की कृतियों से उद्धरण प्रस्तुत करेंगे। साध अमरददास कहते हैं-

सुषमन और पवन विचार के सुषमन रहे समाय।
स्वांसा सुमरन रच रहे जब गुर दरस दिखाय।।ध्यानबानी-छं०सं०३१२

साध मोतीलाल स्वांसा पकड़ कर नाम से सुरति लगाने की बात कहते हैं-

स्वांसा पकड़े नाम से सुरती रहे समाय। बैठे लेटे डोलते कभी बिसर नहीं जाय।
-ज्ञानसागर, छं०सं०१६२

साध भूपनारायण कामी पवन बंधान के विषय में कथन है-

पदम आसन करौ पवन बंधान करौ। शब्द झनकार त्रिकुटि माही।।रेखता५।२ सं०
निरत और सुरत पवन को बांधले। शब्द प्रकाश का आगम मेला।वही, ६।५

साधों की रचनाओं में हठयोग की नाड़ी-साधना का भी विस्तृत उल्लेख नहीं उपलब्ध है। न तो उन्होंने नाड़ियों की संख्या पर ही विचार किया है और न उनका शास्त्रीय विवेचन ही प्रस्तुत किया है। कतिपय साधों ने इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की वर्णना संकेत रूप में की है। सद्गुरु उदादास जी साधों को उपदेश देते हुये कहते हैं कि 'यदि तुम पिंड के भीतर अविनाशी 'सत-अविगत' का दर्शन करना चाहते हो तो जगत् की चाल का परित्याग कर दो। इस पिंड के भीतर गंगा, मथुरा, काशी, चन्द्र और सूर्य हैं। सद्गुरु जी ने 'हठयोग प्रदीपिका' के आधार पर इड़ा नाड़ी को गंगा तथा सूर्य से पिंगला को तथा चन्द्र और काशी से दोनों के मिलन का संकेत किया है-

देखा चाहे पिंड का ख्याल। चाले नहीं जगत की चाल।।
पिंड भीतर गंगा मथुरा काशी। पिंड भीतर चांद सूरज अविनासी।।
-नौ निधी-छं०सं० २१ व २२

साधों की हठयोग साधना में हठयौगिक मुद्राओं का कहीं पर भी सिद्धान्त रूप में कथन नहीं किया गया है। हां, ध्यान और धारणा विषयक दो एक मुद्राओं का कतिपय साधों ने संकेत भर किया है। योग के ग्रन्थों में ध्यान सम्बन्धी अनेक

मुद्राओं का उल्लेख है, किन्तु उनमें से प्रमुख ६-मुद्राओं -अगोचरी, भूचरी, चाचरी, खेचरी,

किरपासिन्ध तूँ ही किरपालू। सरनागत का तूँ रखवालू॥
अपनी दात करो प्रभराया। साची सेव चित रहे समाया॥
पूरन पुरख तूँ ही जगदीश। सरब जीयाँ का तूँ ही ईश॥
राख लें जन सरनी आया। भगतवत्सल तूँ नाम धराया॥
अपनी महमा दियो सुख सार। तुध दरबार भरे भण्डार॥
रंचक दीजो प्रभ चरनी प्रीत। निर्मल चित से गाऊँ गीत॥
साची बिरह जब अन्तर आई। मारग मुकत का भेद लखाई॥

निर्मल चित जब होया, जग से भया उदास।
'मंगत' अन्तर चित माहीं, प्रभ नाम की लागी प्यास॥1298

निर्मल प्रीत पाई सत सेव। पूरन करमी मिले गुरुदेव॥
साचे गुर ने भेद समझाया। सत मारग अन्तर दिखलाया॥
प्रभ सिमरन की सार लखाई। मूरख जीव तब शान्त पाई॥
अधिक विश्वास पाया प्रभ चरनी। साध की सीख भयो निर्मल करमी॥
मन अन्तर इक नाम कमाई। सतगुर सीख में प्रीत लगाई॥
जग जीवन देखा दिन चार। चित में उपजा पर-उपकार॥
पर-उपकार साबन ले धोई। अत मलीन बुद्ध निर्मल होई॥
स्वारथ सुख मिटे अन्धकारा। परमारथ पद निर्मल धारा॥
तुच्छ जीवन पर भयो निरासा। प्रभ चरनी पाया विश्वासा॥
साचा सरजनहार पछानी। साची सेव हिरदे में जानी॥
मन में साची करे कमाई। साचा नाम सिमरे सुखदाई॥
सरब जीयाँ संग हेत कमाई। पर की सेव हिरदे में पाई॥
परदु:ख हरना कार पछानी। निमख निमख शोभा प्रभ गानी॥
कारन कर्ता तूँ परमेश्वर। सरब जीयाँ का तूँ रखीश्वर॥
बारम्बार करूँ परनाम। प्रभ दाते दीजो बिसराम॥
माया भरम संकट अत जाई। साची प्रीत चरन चित पाई॥
इक तूँ ही तूँ मन समाये। दूजा विसरे भरम अधिकाये॥
तेरे नाम की रहे प्यास। पूरन पुरख तूँ ही अबनास॥

ग्रन्थ
श्री समता प्रकाश

साची कीरत बाँछू देव। पद पंकज की निर्मल सेव॥

प्रेम भगत हिरदे आई, दूर भये सन्ताप।
'मंगत' निर्मल प्रीत से, नाम साहब का जाप॥1299

निर्मल चित इक नाम समाई। साध की सीख मिली वडयाई॥
परम पुरष हिरदे में ध्याया। जनम जनम का ताप मिटाया॥
कारन कर्ता सो ही स्वामी। तिस के चरन लयो बिसरामी॥

सत शबद पावे सत सार। तिस गुर चरनी जाऊँ बलिहार॥
भय भरम नहीं चित को लेपा। काल करम नहीं धारे विखेपा॥
संशय शोक नहीं चित में कोई। साचा नाम इक भाओ परोई॥
सुरती अन्तर राखी धार। पल पल सिमरे नाम मुरार॥
कर्ता भाओ तजे अभिमान। दृढ़ निश्चय प्रभ सरन पछान॥
सब कुछ आज्ञा प्रभ की जानी। समता भाओ में धीर समानी॥
निश्चल बुद्ध इकागर विरता। धन्न गुर साचा शबद सँजुगता॥

जिस घट में चानन भयो, संशे शोक विनास।
'मंगत' सतगुर सो मिलें, होवे भरम का नास॥1325

एक शबद की कथा विचारी। अन्तर कीरत साची धारी॥
मन अपने का भरमन छोड़ी। सत परतीत शबद चित जोड़ी॥
पल पल आज्ञा प्रभ की मनाई। सच्चदानन्द को नित ध्याई॥
गरब त्याग ग़रीबी पाई। सरजनहार सरब दिखलाई॥
सरब जीयाँ की धूड़ रमावे। साची सेवा नित कमावे॥
अखण्ड जाप अन्तर चित जापी। प्रान पवन में सुरता थापी॥

इरध उरध का नाका जोड़ी। भरम गुबार की दुर्मत को छोड़ी॥
नित ही नाम मंगल को पाई। तिस गुर भेंट परम सुखदाई॥
ब्रह्मज्ञानी तत्त का वेता। मोह माया का नहीं चित लेपा॥
आनन्द सरूप प्रभ नाम ध्याई। अन्तरगत नित रहे समाई॥
खोल कपाट गगन में चढ़या। सत ठाकर की सरनी पड़या॥
अनहद नाद की विजे बजाई। अबगत जोती घट दरसाई॥
नित मख़मूर प्रेम के रंग। प्रभ साचे का गाये परसंग॥
निर्मल चित दृढ़ विश्वासी। साखी शबद की करे उपासी॥
भेद पाखण्ड सकल चित त्यागी। एक शबद का भया अनुरागी॥
सुन्न गुफ़ा में डेरा कीना। सत सरूप साखी को चीना॥
जरा मरन का भय निवारी। अजर पुरष संग प्रीत विचारी॥
सुपन समान जग खेल दिखलाई। परगट साहब अन्तर दरसाई॥
अनन प्रीत चित चरन चितारी। तिस गुर चरन जाऊँ बलिहारी॥

रहनी वाले गुर मिलें, पाइये नाद विचार।
'मंगत' बिपता सब मिटे, तिस गुर के उपकार॥1326

ऐसे सतगुर मेल मिलाये। सत धरम निश्चय दिखलाये॥
पाप कुपथ से जीव छुड़ाया। एक शबद का राह दिखलाया॥
पार स्वामी जो प्रभ देवा। पाइये भेद सतगुर की सेवा॥
सतगुर सेव में जीवन धार। सतगुर चरन जाओ बलिहार॥
अधिक प्रीती गुर चरनी माहीं। सतगुर दरसे पार गुसाईं॥
सतगुर रूप साहब का जानी। सतगुर बचन हिरदे पहचानी॥
पल पल आज्ञा मन मनाई। सतगुर बचन में प्रीत लगाई॥
आठ पहर सतगुर को सेवे। तिन की सिखया पल पल लेवे॥
तन मन वार गुर सेव कमाये। पाप विनास शबद गत पाये॥
गुर के वचन में धारे विश्वासा। जग में राखे गुर की आसा॥
चौसठ घड़ी गुर होवे सहाई। एह बिध प्रीत चरन की जो पाई॥
निर्मल कहनी गुर का विचार। निर्मल रहनी गुर का आधार॥

परउपकार भोजन गुर खाई। तिस गुर भेंट पाई प्रभताई॥
जुगत मुकत सब सार लखावे। प्रभ दाते की प्रीत बढ़ावे॥
अन्तर जुगुत की सार दिखाई। साचे नाम की सार समझाई॥
सकल भरम से जीव छुड़ाई। एक साहब की परतीत लखाई॥

मन पवन की जुगती तोले। विरत त्याग मन भया अडोले॥
विज्ञान सरूप पाया परसाद। साचा नाम निरन्तर साध॥
जनम जनम की मलन विनासी। सतगुर सीख सतनाम उपासी॥
तृष्ना त्याग भया निष्कामी। पायो दरबार साचा प्रभ स्वामी॥
नित नित उस्तत चित से गाऊँ। पल पल तिसका ध्यान कमाऊँ॥
अखण्ड सुरत नित जाप जपाये। नाम की रसना पल पल खाये॥
उलटा शबद आकास गुंजारी। मारग अगम का भेद लखारी॥
सुरती चढ़ी आकाश में आये। साचे शबद का धाम लखाये॥
निर्भय नाद अन्तर नित बोले। तीन भवन का ताला खोले॥
ताँ में सुरत करे निगरानी। झिलमिल जोत दरसे निर्वानी॥
दरस पाये मन तृपत समाई। दुर्मत रोग व्याध गँवाई॥
पूरन भाग सतगुर मिलाये। अगम निगम का भेद लखाये॥
पाया भेद आया विश्वासा। प्रभ की चरनी लयो निवासा॥
संकट धारी मूरख जीया। नाम सिमर के भया तृपतीया॥
नित नित सुरती नाम उचारी। आवत जावत पवन विचारी॥

मन सिमरे सतनाम को, नाम पवन समाये।
'मंगत' साची साधना, बिन गुर भेद नहीं पाये॥ 1357

सतगुर साचा मेल मिलाया। घर में साहब निर्मल पाया॥
अपरम महमा गुर की मीता। गुर की दात भयो सुखरीता॥
तपन विनास ठाँड वरताई। सतगुर सीख पाई वडयाई॥
मिथ्या जगत का भरम भुलाया। करम रोग में आवे जाया॥
साचे नाम की जुगत लखाई। नाम ध्यान सब रोग मिटाई॥
सतगुर वैद मिला सुखकारी। जिसने मन की तपन निवारी॥
प्रभ अपने की चरनी आया। सतगुर सीख मारग सत पाया॥
अन्तर नाम ध्यान में लागा। गुर परसाद सोता जन जागा॥
इरध उरध में सुरती धारी। तीन भवन में सुन झुनकारी॥

बिमल नाद घर परगट होई। पल पल तिसमें सुरत परोई॥
मधुर मधुर बानी नित बोले। अकथ कथा अन्तर चित तोले॥
तीन ताप से पुरख न्यारा। शबद पछाना प्रभ निरधारा॥
नित ही सुरती शबद समाई। करम रोग की मिटी दुहाई॥
अखण्ड नाद बोले तिरनाली। तपन विनास पाई खुशहाली॥
साची जुगती योग कमाई। मारग सच जो गुर दिखलाई॥
कठन तपस्या की भरमन छोड़ी। सहज जुगत चित नाम में जोड़ी॥
छिन छिन नाम कमावे जीया। तृष्ना भरम से भयो तृपतीया॥
जाप जपे सब ताप निवारी। सतगुर साचे भये किरपा धारी॥
भरम त्याग सतनाम चखाया। अन्तर सिमर परम सुख पाया॥

अन्तर नाम ध्याया, मन चित प्रीत लगाये।
'मंगत' निज घर जा बसे, नहीं बौहड़ गवन को पाये॥ 1358

नित ही साचा नाम ध्याओ। सुकृत सीख सुनो सुखराओ॥
नाम जपत सब बिपता काटे। संशे शोक मिटे सन्तापे॥
भाओ भगत रसना घर पाई। मान मध की मिटी दुहाई॥
सत ठाकर की सेव कमाई। झूट जगत की सार लखाई॥
भरम भुलाया मूरख जीया। नाम विसार संकट नित लीया॥
इच्छया करम अगन अत भारी। पल पल जीव ये पाये ख़वारी॥
जल जल पड़े भोग के संगा। शान्त त्याग भरम चित रंगा॥
तीन गुनों में नित नित भरमाई। भाँतक भाँत करम कमाई॥
करम फल इच्छया में गरसाया। द्वन्द विकार में नित भरमाया॥
राग द्वेष में लीन समाई। छिन ठाण्डा छिन ताप तपाई॥
निश्चल होवे नहीं रंचक इक मीता। नाम विसार परम दु:ख लीता॥
सम्पत पाये नहीं भयो धीरा। सीख नहीं माने मन बे-पीरा॥

प्रभ दाते की दात पछानो , मन तन सेव कमाओ ।
पल पल तिसकी आज्ञा ध्यायो , निर्भय धाम लखाओ ॥
मनुआँ राखो शबद के माहीं , घट में पवन को पीयो ।
उलट दृष्ट आकाश पहछानो , धार शबद लख लीयो ॥
धारा माहीं ध्यान लगाओ , सतखण्ड वासा पाओ ।
निर्मल प्रीत से नाम कमाओ , भव दुस्तर तर जाओ ॥
बन्धन काट करम दु:खदाई , प्रभ की प्रीत विचारो ।
उलटे मारग सुरती गाढ़ो , साचा शबद निहारो ॥
शबद में अपना तन मन वारो , तब पाओ बिसरामा ।
निर्भय धाम निरन्तर खोजो , अमर पुरष निष्कामा ॥
गरभ जून की फाँसी काटी , सत ठाकर घर ध्याई ।
मोह माया अन्धकार विनासा , जीव शान्त पद पाई ॥
मारग मुकत में जीवन पाया , अखण्ड शबद निर्वानी ।
ताँ में सुरती लीन समाई , चित अकथ कथा बखानी ॥
गुनी ज्ञानी साध तपीशर , खोज खोज कर हारे ।
माया दुस्तर नित भरमावे , बिन शबद ना उतरें पारे ॥

साचा शबद पहचान निरंतर , जो सुन्न के घाट समाया ।
'मंगत' जिस जन सेव पछानी , बौहड़ गरभ नहीं पाया ॥1386
नाम सिमर सत सीख विचारो , मन के हरो विखाद ।
अनंक बिगन को हरनेहारा , प्रभ नाम अगम आगाध ॥
मन की तृखा विनास होवे , निज घर में ले बिसराम ।
नाम की औखद जिस जन खाई , पाया निर्मल धाम ॥
एक नाम की प्रीत विचारो , पाओ एक नाम भरवासा ।
एक नाम में जो मरजीवे , परसे पद अबनासा ॥
नाम पदारथ अत सुखदाई , मन के रोग मिटाये ।
दीनदयाल घर परगट हो के , निर्भय शान्त लखाये ॥
इस संसार में रास अधिक है , एक नाम भगवन्त ।
गुरमुख विरले पाई परापत , भरम किये भसमन्त ॥
साचा ठाकर सेव करो नित , जो मन के ताप निवारी ।
प्रभ सिमरन बिन पायें नहीं थाओं , नित आवागवन विचारी ॥
समाँ विचारो जीवन का मीता , नित खोज मारग कल्याना ।
मिल सत्संग सतनाम विचारो , निर्भय पद निर्वाना ॥
अबनाशी की खोज करो नित , मिथ्या भरम को त्यागो ।
भाओ भगत प्रभ सेव कमाओ , सतगुर चरनी लागो ॥
तेरा जीवन निर्मल होवे , अनन भगत रस खाई ।
बाहरमुख की भरमन नासे , निज घर आन समाई ॥
अन्तरयामी सरब भरपूरा , सत शबद अबनाशी ।
अन्तरमुख हो सेव कमावे , तब जीवन बन्ध खुलासी ॥
मन को अन्तर नेहचल कीजे , सतनाम की रसना खाये ।
निर्गुन सर्गुन दोनों बाँधे , तत्त शबद घर पाये ॥
दो पर्बत में सुरती राखे , उलट पलट गत सोधे ।
तत्त निरंजन परगट पाये , निज मन को इयों बोधे ॥
सुरती खेल खेले अचम्भा , मन पवन इक कीजे ।

जीवत मिरतक सार पछाने , भेद अगम का लीजे ॥
पद निर्वान शबद को पीवे , काल करम होये नासा ।
सुन्न समाध अमीरस खाये , देखे अजब तमाशा ॥
साचा घर अन्तर में पाया , भ्रम दुर्मत लीन समाई ।

① गुरासा सैण आपरी भारी
नाभि कमल पर सुरति लगायी करि सोलह सिणगारी
ईड़ा पींगला दोनों मिलगी झालर रे झनकारी
सुखमण नारि सरोदे आयी पुँगी पुरुष दरबारी
संत स्वामी मंगलगिरी जी महाराज

② आसन पदम थिर लगाया,
मूल कमल का छेदा खटका
बंकनाल उलटे साधाया,
रस्ता कहीं न अटका
संत शीतलनाथ जी महाराज

③ नाभ कमल में स्वासन स्वासा उलटे पवन चढ़ाया
उलटि पवन कमल में ~~पैढ़ी~~ पलटी बंकनाल समाया
उनमनि नारि ध्यान लगावे सुखमण कूँची लगाया
संत पन्नानाथ जीमहाराज

④ धरण गगन बीच पवन पकड़कर, सोहंग साधना माई
संत नवल साहेब जी महाराज

⑤ मन को करले स्थर पदम आसन पक्का
इड़ा पिंगला सुखमना तेरा रस्ता अपने का
संत कबीर साहेब